



अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण  
कानून अनुसंधान केन्द्र

# बौद्धिक सम्पदा संरक्षण और टिकाऊ विकास

प्रकाशित द्वारा  
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

फिलिप कलैट

यह शोध पत्र पी.डी.एफ. फॉर्मेट में आई.ई.एल.आर.सी. वेबसाइट से इस पते पर डाउनलोड कर सकते हैं

<http://www.ielrc.org/content/b0801.pdf>

## विषय-सूची

अवधारणात्मक पृष्ठभूमि	1
१ बौद्धिक सम्पदा संरक्षण और टिकाऊ विकास की अवधारणा	1
अ. सम्पदा अधिकारों के रूप में बौद्धिक सम्पदा अधिकार	1
ब. पेटेंट	2
स. मूर्त और अमूर्त सम्पत्तियों पर नियंत्रण	3
द. टिकाऊ विकास और बौद्धिक सम्पदा अधिकार	4
२ अंतर्राष्ट्रीय-राष्ट्रीय स्तर पर बौद्धिक सम्पदा संरक्षण	7
अ. अंतर्राष्ट्रीय सांस्थानिक और कानूनी ढाँचा	7
ब. पेटेंट	9
स. भारत में पेटेंट कानून	11
द. अनिवार्य लाइसेंसिंग : दक्षिण अफ्रीका का अनुभव और डब्ल्यूटीओ जनरल काँसिल का फैसला	12
३ टिकाऊ विकास कानून और बौद्धिक सम्पदा अधिकार	13
अ. जैवविविधता	13
ब. कृषि	15
संबंधित मुद्दे	17
४ विभेदकारी बरताव से एकपक्षीय उपायों की ओर	17
अ. विभेदकारी बरताव और बौद्धिक सम्पदा का टिकाऊ संरक्षण	17
ब. एकपक्षीय उपाय और द्विपक्षीय संधियाँ	19
स. संधियों के बीच रिश्ते	20
५ पहुँच और लाभ में साझेदारी का सवाल	21
अ. जेनेटिक संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान तक पहुँच	21
ब. लाभों में साझेदारी	23
स. पहुँच और लाभों में साझेदारी के कानून	24
द. पहुँच, लाभों का बँटवारा और बौद्धिक सम्पदा अधिकार	26
खेती-बाड़ी	26
६ जेनेटिक इंजीनियरिंग, खाद्य सुरक्षा और बौद्धिक सम्पदा अधिकार	26
अ. प्लांट वेराइटी मैनेजमेंट	27
ब. खाद्य सुरक्षा और बौद्धिक सम्पदा संरक्षण	28
स. विकासशील देशों में कृषि संबंधित ज्ञान : साझेदारी से निजी क्षेत्र में विनियोग तक	29
७ जीवन रूपों के पेटेंट, प्लांट ब्रीडरों और किसानों के अधिकार	31
अ. जीवन रूपों के पेटेंट और कृषि का क्षेत्र	31
ब. प्लांट ब्रीडर अधिकार	32
स. किसानों के अधिकार	33
८ सुइ जेनरिस वनस्पति किस्मों का संरक्षण	35
अ. सुई जेनरिस संरक्षण	35
ब. मौजूदा कानूनी ढाँचे के परे	36
स. वनस्पति-किस्मों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय कानूनी ढाँचा	38
द. किसानों के अधिकार	39

पारंपरिक ज्ञान	40
९ पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण	40
अ. संदर्भ	40
ब. पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के लिए मौजूदा अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्थाएँ और प्रस्तावित पहलकदमियाँ	41
स. बौद्धिक सम्पदा संरक्षण का पारंपरिक ज्ञान पर असर	42
द. पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण कैसे करें	43
१० पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के लिए कुछ और विकल्प	44
अ. मौजूदा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को पारंपरिक ज्ञानधारकों के अनुकूल बनाने का सवाल	44
ब. पारंपरिक ज्ञान के लिए सुइ जेनरिस संरक्षण की गुंजाइशें	47
स. व्यापक परिप्रेक्ष्य में पारंपरिक ज्ञान संरक्षण	49
पर्यावरण और मानवाधिकार	49
११ जैव सुरक्षा और जवाबदेही	49
अ. जैव प्रौद्योगिकी और जैव सुरक्षा	49
ब. जवाबदेही और जैव सुरक्षा	50
स. जवाबदेही और बौद्धिक सम्पदा संरक्षण	52
द. जैव सुरक्षा, बौद्धिक सम्पदा अधिकार और टिकाऊ विकास	53
१२ मानवाधिकारों का प्रश्न	53
अ. बौद्धिक सम्पदा संरक्षण और मानवाधिकार	53
ब. मानवाधिकार के रूप में बौद्धिक सम्पदा संरक्षण	55
निष्कर्ष	56

## अवधारणात्मक पृष्ठभूमि

### १ बौद्धिक सम्पदा संरक्षण और टिकाऊ विकास की अवधारणा

बौद्धिक सम्पदा संरक्षण का इतिहास उन्नीसवीं सदी में हुई कई अहम अंतर्राष्ट्रीय संधियों से शुरू होता है। बीसवीं सदी में नब्बे के दशक तक यह प्रक्रिया धीरे-धीरे चलती रही, क्योंकि इस सिलसिले में किसी अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली बनाने पर सहमति नहीं थी। अलग-अलग देश अपने-अपने हिसाब से नीतियाँ और कानून बनाते रहे। १९९४ में हुए ट्रिप्स समझौते ने यह स्थिति बदली। इसके कारण न केवल ज्यादातर विकासशील देशों द्वारा अपनी-अपनी भू-क्षेत्रीयता को आधार बनाते हुए बौद्धिक सम्पदा का संरक्षण मजबूत किया गया, बल्कि विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के सदस्य देशों के लिए भी लाजमी हो गया कि वे भी बौद्धिक सम्पदा के न्यूनतम संरक्षण की गारंटी करें। इसका एक कारण यह भी था कि विकसित देशों की निर्भरता ज्ञान आधारित उद्योगों पर बढ़ती जा रही थी और जैव इंजीनियरिंग उद्योग भी तेजी से अपने कदम बढ़ा रहा था।

#### अ. सम्पदा अधिकारों के रूप में बौद्धिक सम्पदा अधिकार

मोटे तौर पर बौद्धिक सम्पदा अधिकार निजी तौर पर सम्पदा रखने के अधिकारों के समान ही हैं। व्यक्तियों और समूहों को निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार संविधानसम्मत रूप से मिला होता है। निजी सम्पत्ति रखने के अधिकार अपने आप में अनुलंघनीय नहीं होते। राज्य उन्हें रद्द कर सकता है, उन्हें सीमित कर सकता है। राज्य मुआवजा दे कर व्यक्ति की सम्पत्ति अधिग्रहीत कर सकता है। बौद्धिक सम्पदा के मामले में सरकार आम तौर पर लाइसेंस जारी करने के अधिकार का प्रयोग करके उस अधिकार को सीमित कर सकता है। जाहिर है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकार भी अनुलंघनीय नहीं हैं। चूँकि बौद्धिक सम्पदा रखने के अधिकार को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दी गई है, और उसका जिक्र मानवाधिकार संधियों में भी है, इसलिए मानवाधिकारों के साथ उसके संबंध की दृष्टि से उस पर विचार जरूरी है।

जैसा कि हम जानते हैं कि निजी सम्पत्ति का अधिकार वस्तुओं और सूचनाओं पर कानूनी स्वामित्व के रूप में होता है। व्यक्ति या कारपोरेशन जब चाहे स्वैच्छिक रूप से इनका सौदा कर सकते हैं। इस तरह साफ हो जाता है कि निजी सम्पत्ति का अधिकार जीवन के अधिकार या भोजन के अधिकार जैसा नहीं है जिसका सौदा नहीं किया जा सकता। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को जैसे ही पेटेंट में बदला जाता है, वैसे ही एक निश्चित अवधि के लिए उसका सौदा होने पर रोक लग जाती है। पेटेंट की अवधि खत्म होते ही बौद्धिक सम्पदा अधिकार सार्वजनिक दायरे में आ जाता है जहाँ उसका उपभोग करने की सभी को छूट होती है। यानी फिर उसका सौदा नहीं किया जा सकता।

वास्तविक सम्पत्ति और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का एक फर्क तो यह होता है कि एक का इस्तेमाल सीमित मात्रा में और निश्चित जगहों पर ही हो सकता है, पर बौद्धिकता या ज्ञान का असीमित मात्रा में अनगिनत जगहों पर किया जा सकता है। मसलन, एक मकान के दो लोग मालिक नहीं हो सकते, पर दवा का एक फारमूला कई लोग एक दूसरे को बाधित किए बिना इस्तेमाल कर सकते हैं। बौद्धिक सम्पदा अधिकार की एक बुनियादी खास बात यह होती है कि वह ऐसी सम्पत्ति की रक्षा करता है जिसे हड़पने और फिर से उत्पादित करने के लिए उस सम्पत्ति के जन्मदाता को उससे वंचित नहीं करना पड़ता। बौद्धिक सम्पदा अधिकार के पीछे एक नैतिक तर्क यह है कि इसके जरिए आविष्कार करने वाले को अपने प्रयासों का फल मिलता है। इसके माध्यम से एक विशेष संसाधन का मूल्य निर्धारित होता है। बौद्धिक सम्पदा के जरिए एक अधिक सक्षम पद्धति सामने आती है जिससे और सम्पत्ति पैदा होती है जिसकी लागत आविष्कार की लागत से कहीं कम होती है। बौद्धिक सम्पदा का हस्तांतरण उसे ऐसे लोगों के हाथों में पहुँचा सकता है जो उसका महत्त्व ज्यादा समझ सकते हैं। यानी बौद्धिक सम्पदा अधिकार बौद्धिक सम्पदा के कुछ भागों को बाजार के दायरे में पहुँचाने का रास्ता खोलते हैं।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को लेकर काफी आलोचना होती रही है। इसलिए इनका मौजूदा स्वरूप इनके न्यायसंगत होने के आग्रह और इनकी आलोचनाओं के बीच समझौते से बना है। समझा जाता है कि अगर पेटेंट न होते तो बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का ढाँचा भी न खड़ा हो पाता, क्योंकि पेटेंटों के जरिए ही नए उत्पाद बाजार में आते हैं, उनका व्यावसायीकरण होता है, और उससे होने वाले मुनाफे से और अधिक अनुसंधान को प्रोत्साहन मिलता है। चूँकि अभी तक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति पर सभी का मुक्त और साझा अधिकार रहा है, इसलिए इस परंपरा का सम्मान करने के लिए आविष्कार करने वाले को अपने अधिकार पर एक सीमित अवधि के लिए ही अधिकार मिलता है। अवधि समाप्त होने के बाद हर किसी को उसके उपभोग का अधिकार हो जाएगा। दूसरे, एक तर्क यह भी है उस अवधि में भी आविष्कार का ब्योरा हर किसी को उपलब्ध होना चाहिए ताकि प्रौद्योगिक प्रगति में पूरा समाज बिना किसी बाधा के साझेदारी कर सके। इस लिहाज से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि पेटेंट संरक्षण के अधिकार ज्ञान को गोपनीय रखने से रोकते हैं और आविष्कारक उस पर अपना कब्जा बनाए नहीं रख सकता।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का दायरा समझने के लिए जरूरी है कि हम वैज्ञानिक सिद्धांतों और प्रौद्योगिकीय आविष्कारों के बीच का फर्क समझ लें। वैज्ञानिक सिद्धांत १९७० के पेटेंट एक्ट के तहत नहीं आते, क्योंकि माना जाता है कि न तो उनका सीधा औद्योगिक इस्तेमाल हो सकता है, और न ही उन्हें सार्वजनिक दायरे से निकाल कर किन्हीं पार्षदियों के तहत लाना उचित है क्योंकि उनके बिना प्रौद्योगिकीय विकास पर बुरा असर पड़ेगा। इसी तरह प्रकृति संबंधी खोजों और मानवीय आविष्कारों के बीच फर्क समझना भी जरूरी है। मसलन, अगर कोई कुदरत में से ऐसा कोई पौधा खोज निकालता है जिससे ज्यादा पैदावार मिल सकती है तो उसका पेटेंट नहीं किया जाता। लेकिन, अगर कोई नई रासायनिक दवा खोज लेता है तो उसका पेटेंट हो सकता है। बीसवीं सदी के मध्य में वनस्पतियों का पेटेंट करने का प्रस्ताव पहली बार आने पर उसके बारे में जम कर बहस हुई थी। दो नजरियों से इसका विरोध हुआ। पहला, वनस्पतियाँ कुदरत का हिस्सा हैं और उन्हें सार्वजनिक दायरे में ही रखा जाना चाहिए। दूसरा, अगर इनका भी पेटेंट किया जाने लगा तो मौजूदा पेटेंट प्रणाली का ही अवमूल्यन हो जाएगा और बहुत कम प्रयासों के जरिए किए जाने वाली खोजें भी पेटेंट की जाने लगेंगी। बाद में इन दोनों स्थितियों में एक समझौता निकाला गया और वनस्पति ब्रीडर अधिकारों का सूत्रीकरण हुआ जिनके तहत मिलने वाला संरक्षा अपेक्षाकृत कमतर होता है और उसके विभिन्न स्तर होते हैं।

जो भी हो, १९८० तक प्रकृति की रचनाओं को पेटेंट नहीं किया जाता था। लेकिन, इसके बाद चक्रबर्ती से संबंधित अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के फैसले ने इस हालात में नाटकीय तब्दीली कर दी। इसमें कहा गया था कि जीवित ऑर्गेनिज्म को पेटेंट करने के तर्क को पहली नजर में ही खारिज नहीं किया जा सकता। इसी के नतीजे के रूप में आज सबसे महत्वपूर्ण और तेज गति से होने वाला विकास यह है कि हम जीवन रूपों को पेटेंट करने की तरफ बढ़ रहे हैं। अब माइक्रो-ऑर्गेनिज्म से लेकर कुछ न्यायिक दायरों में वनस्पतियों और पशु जगत में भी पेटेंट होने लगे हैं और डब्ल्यूटीओ देशों पर ट्रिप्स समझौते के तहत ये प्रावधान लागू होते हैं।

जीवन रूपों को पेटेंट करने पर होने वाली बहस वनस्पति रूपों को पेटेंट करने वाली बहस से भी तीखी है। लेकिन, दोनों बहसों की दिशा तकरीबन एक सी ही लगती है। जैव इंजीनियरिंग उद्योग के बड़े खिलाड़ी चाहते हैं कि पेटेंटों का दायरा और बढ़े। लेकिन, इसका विरोध नैतिक, पर्यावरणीय और सामाजिक तर्कों के आधार पर किया जा रहा है। साथ में यह भी कहा जा रहा है कि इस तरीके से तो बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की स्थापना का वह बुनियादी लक्ष्य ही गड़बड़ा जाएगा जिसके तहत इसके जरिए अनुसंधान और औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने की कल्पना की गई थी। अगर माइक्रो-ऑर्गेनिज्म जैसी चीजें पेटेंट कर ली जाएंगी तो छोटी अनुसंधान कंपनियाँ अपनी रिसर्च कैसे करेंगी।

कुल मिला कर स्थिति यह है कि तमाम बहस के बावजूद पेटेंट की जा सकने वाली चीजों और क्षेत्रों की संख्या बढ़ती जा रही है। जिंसीकरण की प्रवृत्ति का विरोध भी हो रहा है, पर साथ में बाजार की दुनिया सार्वजनिक दायरे के लिए ज्ञान, खोज और आविष्कार के कम से कम क्षेत्र छोड़ रही है।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के विकास को दो चरणों में बाँट कर देखा जा सकता है। पहला चरण उन्नीसवीं सदी के मध्य से शुरू हो कर ट्रिप्स समझौते तक जाता है। इस दौरान ज्यादातर देश बौद्धिक सम्पदा अधिकार संबंधी कानूनों को अपनी जरूरतों के मुताबिक बनाने की कोशिश करते हैं। दूसरा चरण औपचारिक रूप से १९९५ के बाद से शुरू होता है जब अधिकार संरक्षण का न्यूनतम स्तर आरोपित किया जाता है। ट्रिप्स के बावजूद इस संधि के सदस्य देशों को यह अधिकार तो रहता है कि वे स्वतंत्र रूप से अपने बौद्धिक सम्पदा अधिकार अंगीकार करें, पर ऐसा करते समय उन्हें न्यूनतम मानकों की सीमा के भीतर ही रहना होता है। ट्रिप्स समझौता आज भी मुख्य है, पर एक पेटेंट कानून संधि करने पर भी विचार हो रहा है। दूसरे, एक नया क्रम-विकास यह है कि द्वि-पक्षीय संधियों के कारण बौद्धिक सम्पदा संरक्षण का उच्चतर मानक लागू होते जा रहे हैं जिनके कारण ऐसे देशों और क्षेत्रों के लिए न्यूनतम मानकों का कोई मतलब नहीं रह गया है।

## ब. पेटेंट

हालाँकि पेटेंट बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का केवल एक आयाम है, पर इस किताब के लिहाज से उनकी अहमियत बहुत ज्यादा है। कई सदियों से सरकारें पेटेंट के लाइसेंस देती रही हैं। किसी जमाने में अनुपलब्ध जिंसी के आयात के लिए शासन पेटेंट का लाइसेंस देता था, पर आजकल आविष्कारों को प्रोत्साहन देने के लिए पेटेंटों का इस्तेमाल होता है। पेटेंटों के पक्ष में एक तर्क तो यह दिया ही जा सकता है कि इनके जरिए प्रौद्योगिकीय या आर्थिक विकास में योगदान होता है। यहाँ आविष्कार को पुरस्कृत करने की बात तो ठीक है, पर इससे पेटेंटों की कोई समझ नहीं बनती। मसलन, पेटेंट की जाँच करने वाला उसकी आर्थिक प्रासंगिकता के बारे में दिलचस्प नहीं दिखाता। वह तो केवल मौजूदा कानूनों के तहत उसकी तकनीकी खूबियों को देखता है। दूसरे, आविष्कार को पुरस्कृत करने का रवैया प्रौद्योगिकी को उसकी सामाजिक उपयोगिता और टिकाऊ विकास में उसके संभावित योगदान के लिहाज से श्रेणीबद्ध करने के लिए काम का नहीं है। यही कारण है कि स्वास्थ्य के क्षेत्र में १९७० के पेटेंट एक्ट द्वारा आरोपित सीमाओं पर इस रवैये का कोई असर नहीं पड़ा। पेटेंट के जरिए ऐसे क्षेत्रों में आविष्कार की प्रवृत्तियों को होने वाले नुकसानों को रोका जा सकता है जहाँ किसी आविष्कार की नकल करने में बहुत कम लागत आती है। दूसरे, पेटेंट के जरिए आविष्कार की सूचना देने वाले उस सूचना पर अपने अधिकार से वंचित नहीं हो पाते, भले ही अनगिनत लोग उस सूचना का इस्तेमाल करते रहें।

व्यवहार में पेटेंट प्रणाली पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के तहत प्रचलित मुक्त बाजार का अपवाद है। इसलिए, यह जरूरी समझा जाता है कि कुछ ऐसी प्रति-संतुलनकारी नीतियाँ अपनाई जाएँ जिनसे समाज को प्रौद्योगिकीय विकास का लाभ मिलने में अड़चन न आए। पेटेंटधारी को अगर सीमित अवधि के लिए सुविधाएँ दी जाती हैं, तो जनता को भी उसके बारे में जानने का अधिकार रहता है। पेटेंट प्रणाली के कारण ट्रेड सीक्रेट के नाम पर नई प्रौद्योगिकियों को छिपाना अब निजी कंपनियों के लिए मुमकिन नहीं रह गया है।

जहाँ तक पेटेंट देने की शर्तों का सवाल है, इन पर व्यापक सहमति है। आविष्कार में नवीनता होनी चाहिए, स्वतः प्रकट न हो कर उसके आविष्कार में मेहनत दिखनी चाहिए और उसका औद्योगिक इस्तेमाल हो सकने की संभावनाएँ स्पष्ट होनी चाहिए। खोज और आविष्कार के बीच का फर्क यहाँ भी बहुत अहम है। अमेरिकी कांग्रेस ने १९३० में ही इसे स्पष्ट कर दिया था। इसके अनुसार कोई खनिज पूरी तरह से प्रकृति की रचना समझा जाएगा, जिसके निर्माण में कोई मानवीय योगदान नहीं है। लेकिन, कलम लगाने या कृषि की अन्य तकनीकों की मदद से किया गया किसी वनस्पति का आविष्कार प्रकृति की रचना नहीं है और प्रकृति उसका पुनरुत्पादन या उसकी आवृत्ति नहीं कर सकती। इसलिए, खनिज को पेटेंट नहीं किया जा सकता, लेकिन उस वनस्पति को किया जा सकता है क्योंकि उसमें नवीनता है, उसके पीछे मानवीय प्रयास है और उसका पैदावार बढ़ाने में उपयोग भी किया जा सकता है।

इसी तरह ज्ञान के जो रूप पहले से सार्वजनिक दायरे में मौजूद हैं, जैसे पारंपरिक ज्ञान, उनका पेटेंट देने की मनाही है। लेकिन, पेटेंटों के साथ जुड़ी हुई यह शर्त पारंपरिक ज्ञान और सार्वजनिक दायरे की परिभाषा स्पष्ट नहीं करती। आविष्कारों में पहले से मौजूद ज्ञान के रूपों का इस्तेमाल हो सकता है, जिससे उनकी नवीनता पर सवालिया निशान लग जाता है। किसी आविष्कार से पहले उस क्षेत्र में उपलब्ध संबंधित ज्ञान की लिखित घोषणा से भी यह समस्या हल नहीं होती, क्योंकि पारंपरिक समुदायों में बसने वाले ज्ञान की लिखित जानकारी अक्सर नहीं मिल पाती। फिर, किसी नई चीज की रचना के साथ आविष्कार का क्षण जुड़ा होना चाहिए। यानी, उस क्षण के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आने वाली रचना के बारे में पहले से किसी को पता नहीं होना चाहिए। देखा जाए तो आविष्कार का यह क्षण सुनिश्चित करने का कोई मोटा-मोटा नियम अभी तक नहीं बन पाया है। आविष्कार की औद्योगिक उपयोगिता और उसकी व्यावहारिकता का आग्रह एक ऐसी कसौटी है जो

अमूर्त विचारों, सिद्धांतों और सौंदर्यशास्त्रीय रचनाओं को अलग करके पेटेंट-पात्रता के दायरे से निकाल देती है। प्रस्तावित सब्सटेंटिव पेटेंट लॉ ट्रीटी में यह प्रावधान भी है कि पेटेंट-पात्रता के लिए आवेदक को आविष्कार का पूरा लिखित ब्योरा दाखिल करना होगा।

सारी शर्तें पूरी होने के बावजूद कुछ खास हालात में ट्रिप्स के तहत पेटेंट दिए जाने से इनकार किया जा सकता है। मसलन, अगर किसी आविष्कार के औद्योगिक इस्तेमाल से मानवीय, पशु और वनस्पति जगत को नुकसान पहुँच रहा है या पर्यावरण को क्षति हो रही है। ट्रिप्स से पहले कुछ जगहों पर किसी उत्पाद के विनिर्माण की प्रक्रिया और बने-बनाए उत्पाद के पेटेंट में फर्क किया जाता रहा है। औषधि निर्माण के क्षेत्र दवा बनाने की प्रक्रिया तो पेटेंट की जाती थी, पर दवा नहीं ताकि स्वास्थ्य रक्षा के लिए दवा अधिक से अधिक लोगों को उपलब्ध हो सके। अगर ऐसा न होता पिछले तीन दशकों में भारत का स्वदेशी दवा उद्योग आज की तरह विकसित न हो पाता। लेकिन, ट्रिप्स के बाद यह फर्क करना मुमकिन नहीं रह गया है। अब प्रौद्योगिकी के सभी क्षेत्रों में निर्माण की प्रक्रिया और उत्पाद, दोनों का पेटेंट किया जा रहा है।

पेटेंधारि का अधिकार होता है कि उसकी इजाजत के बिना उसके आविष्कार का इस्तेमाल करके औद्योगिक निर्माण और विपणन नहीं कर सकता। औषधि क्षेत्र और ट्रांसजेनिक ऑर्गेनिज्म के संदर्भ में देखें तो साफ हो जाता है कि यह अधिकार निशर्त नहीं है। पहली बात तो यह है कि इस अधिकार की एक समय-सीमा, ट्रिप्स के तहत मोटे तौर से बीस साल, रहती है। ज्यादातर देश विभिन्न क्षेत्रों के लिए इसी समय सीमा को मान्यता देते हैं। लेकिन, सामाजिक प्रासंगिकता के लिहाज से अलग-अलग समय-सीमाओं को भी मान्यता है। मसलन, १९७० के पेटेंट एक्ट के तहत खाद्य अथवा औषधि के लिए सात साल के लिए भी पेटेंट अधिकार दिए गए हैं। पेटेंधारि को यह फैसला करने का अधिकार होता है कि वह अपने आविष्कार का औद्योगिक दोहन खुद करेगा या दूसरे को यह इजाजत देगा। लाइसेंसधारी तय कर सकता है कि वह लाइसेंस के दायरे में आने वाले सभी देशों में औद्योगिक निर्माण करेगा या संरक्षित उत्पादों का आयात करवाएगा।

समझने की बात यह है कि ये अधिकार किसी भी तरह से परम या बिना शर्त नहीं होते। किसी देश में ऐसा कोई कानून हो सकता है जो किसी विशेष आविष्कार का औद्योगिक इस्तेमाल प्रतिबंधित करता हो। पेटेंधारि को हर देश के कानून के तहत काम करना पड़ता है। राज्य के कानून उसे मजबूर कर सकते हैं कि कुछ समय बाद वह दूसरे मैनुफेक्चरर्स को उत्पाद बनाने की इजाजत दे ताकि संबंधित बाजार की माँग पूरी हो सके। मॉडिकल पेटेंटों के मामले में यह शर्त जनस्वास्थ्य की संरक्षा के लिहाज से बहुत फायदे की साबित हुई है।

पेटेंट प्रणाली के आर्थिक फायदे लंबे अरसे से विवादास्पद रहे हैं। विकासशील देशों में ही नहीं धनी देशों में भी उनकी उपयोगिता और सामाजिक भूमिका पर बहस चलती रही है। चूँकि पेटेंट मुक्त बाजार प्रतियोगिता के अपवाद के रूप में ही अस्तित्व में आए थे, इसलिए यह सवाल पूछा जाना लाजमी है कि उनसे व्यापक समाज को क्या फायदा हो रहा है। विवाद का कारण यह है कि पेटेंटों के कारण कुछ लोगों को लाभ होता है, तो कुछ को उनके कारण नुकसान उठाना पड़ता है। बड़ी कंपनियों के लिए पेटेंट बेहत लाभकारी साबित हुए हैं, खास कर औषधि निर्माण के क्षेत्र में। पर, यह दावा विवादास्पद है कि इससे नए-नए आविष्कारों को प्रोत्साहन मिला है। पेटेंट प्रणाली का प्रयोग करने वाली छोटी कंपनियाँ नहीं मानती कि उसके कारण उन्हें नए आविष्कारों के लिए जानकारी मिलेगी। आर्थिक रूप से कमजोर देशों के लिए भी पेटेंट प्रणाली विवादास्पद रही है। कारण यह है कि कड़े पेटेंट कानून इन देशों में स्थानीय स्तर पर नए आविष्कारों को प्रोत्साहन देने में नाकाम रहे हैं। वहाँ पेटेंट कराने के आवेदन ज्यादातर विदेशियों की तरफ से ही आते हैं। स्थानीय लोगों की तरफ से आने वाले आवेदनों की संख्या कम होती है। दूसरे, यह भी विवाद का विषय है कि पेटेंटों के कारण गरीब देशों को उनकी जरूरत के मुताबिक प्रौद्योगिकी हस्तांतरण हो पाता है या नहीं। व्यावहारिक तौर से यह हस्तांतरण अभी उम्मीद से कम ही हुआ है। एक बात यह भी है कि पेटेंटिड प्रौद्योगिकी की गरीब देशों को जरूरत नहीं भी हो सकती है। ऐसे में पेटेंट प्रणाली को मजबूत करने का तर्क कमजोर हो जाता है।

## स. मूर्त और अमूर्त सम्पत्तियों पर नियंत्रण

अमूर्त सम्पत्तियों से संबंधित अधिकार का मकसद यह समझा जाता है कि इसके जरिए न केवल बहुत से लोग उन सम्पत्तियों का इस्तेमाल करेंगे, बल्कि वह सम्पत्ति अन्य लोगों के लिए भी उपलब्ध रहेगी। सार्वजनिक क्षेत्र में ज्ञान सभी के लिए उपलब्ध रहता है, पर बौद्धिक सम्पदा अधिकार सुनिश्चित करते हैं कि अमूर्त सम्पत्ति का पेटेंधारि की मर्जी से व्यापार हो सके। व्यावहारिक रूप से सार्वजनिक दायरे का आकार केवल पेटेंटों द्वारा संरक्षित दायरे से ही तय नहीं होता। पेटेंटिड ज्ञान भी अंततः सार्वजनिक दायरे में आता है, और सामुदायिक सीमाओं में बंद पारंपरिक ज्ञान भी आखिरकार सार्वजनिक दायरे का ही अंग बनता है। इस लिहाज से पारंपरिक ज्ञान का सार्वजनिक होना बौद्धिक सम्पदा अधिकारों द्वारा ज्ञान हड़पे जाने के खिलाफ प्रतिरक्षात्मक घटना की तरह देखा जाता है।

जहाँ तक मूर्त सम्पत्तियों पर नियंत्रण और साझी विरासत का सवाल है, मामला कुछ पेचीदा है। जैसे, किसी बीज का स्वामित्व और उस बीज में निहित विशिष्ट वनस्पति से संबंधित पारंपरिक ज्ञान के बीच का फर्क।

जहाँ तक भौतिक संसाधनों का सवाल है, उन पर नियंत्रण की तीन किस्में मानी जाती हैं। पहली, समस्त भौतिक संसाधनों पर राज्य की संस्था का नियंत्रण। दूसरे, ऐसे भौतिक संसाधन जिन पर राज्य नियंत्रण नहीं कर पाता, और उन्हें मानवता की साझी विरासत मान लिया जाता है। इसका मतलब यह होता है कि इन संसाधनों का उपयोग सभी के द्वारा ही किया जाना चाहिए। समुद्र की तह में मौजूद संसाधनों पर यही उसूल लागू किया जाता है। इसके लिए लॉ ऑव सी कन्वेंशन है। इनका उपयोग अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक एथॉरिटी द्वारा नियंत्रित और विनियमित होता है। इनका इस्तेमाल करने की इच्छा रखने वाले को इसके लिए एक शुल्क देना पड़ता है। इस तरह के फायदों को सभी राज्यों के बीच बराबर-बराबर बाँटा जाता है। यहाँ तक कि जो राज्य इस उपयोग में दिलचस्पी नहीं रखते, उन्हें भी इसका फायदा मिलता है। इस एथॉरिटी के पास ऐसा कोष बनाने का अधिकार भी है जो किसी दोहन के क्षेत्र में साझी विरासत के तहत खनिज सम्पदा के क्षय की भरपाई करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। चूँकि १९८२ के कन्वेंशन में निहित समुद्र तल के संसाधनों के दोहन का उसूल सभी राज्यों को मान्य नहीं था, इसलिए १९९४ में एक नया कन्वेंशन पारित किया गया। इसने दोहन के कारण हुए प्राकृतिक सम्पदा के क्षय की भरपाई करने के कानूनों में परिवर्तन किया और साझी विरासत का दोहन ठेकेदारों के लिए अधिक आकर्षक बना दिया। इस परिवर्तन का असर वनस्पति जेनेटिक संसाधनों पर भी पड़ा। ये संसाधन ज्यादातर राज्यों के नियंत्रण में थे। परिवर्तनों का नतीजा यह निकला कि राज्यों को अपने नियंत्रण में आने वाली इस विरासत

को अन्य राज्यों के साथ साझा करने पर मजबूर होना पड़ा। एक इंटरनेशनल अंडरटेकिंग रिजीम बनी जिसके दायरे में न केवल जंगलों के वनस्पति संसाधन आ गए, बल्कि कई जगहों पर प्लांट ब्रीडर अधिकारों और पेटेंटों के तहत आने वाली वनस्पतियाँ भी आ गईं। इस लिहाज से कहा जा सकता है कि पिछले बीस सालों में समुद्री संसाधनों के मुकाबले वनस्पतियों के संदर्भ में साझी विरासत के उसूल का खासा अतिक्रमण हुआ है। तीसरे, भौतिक संसाधनों पर व्यक्तियों या समुदायों और समूहों का राज्य प्रदत्त अधिकार भी होता है। ऐसी सम्पत्ति का इस्तेमाल उसके कानूनी अधिकारी या अधिकारियों के अलावा कोई और नहीं कर सकता।

जब से यूरोप में बाड़ाबंदी आंदोलन हुए हैं, तभी से उन अपर्याप्तताओं पर बहस होती रही है जिन्हें साझा सम्पत्ति संसाधनों की समस्या माना जाता रहा है। हाल ही में गैरेट हार्डिन ने तर्क दिया है कि ऐसे संसाधन नाकामी के लिए अभिशप्त हैं। हार्डिन इसे साझा सम्पत्ति की त्रासदी करार देते हैं। असलियत यह है कि इस तर्क में साझा सम्पत्ति अधिकारों की संगठित दुनिया और सबके लिए खुली दुनिया, यानी जहाँ कोई सम्पत्ति अधिकार है ही नहीं, का घालमेल हो जाता है। जैसे ही आपूर्ति माँग के मुताबिक नहीं रहती, वैसे ही यह एक मुद्दा बन जाता है। सागर में मछली मारने वाले ज्यादातर इलाके इसका प्रमाण हैं। वहाँ हर कोई मछली का शिकार कर सकता है। चूँकि यहाँ कोई नियम-कानून लागू नहीं है, इसलिए मछलियों की संख्या घटती जा रही है, पर इसका मतलब यह नहीं निकाला जा सकता कि निजी या साझा सम्पत्ति अधिकार लागू करने से यह समस्या हल हो जाएगी। जहाँ साझा सम्पत्ति अधिकार लागू हैं, वहाँ हार्डिन के विचार सही नहीं ठहरते। इस विषय में हुए बहुत से अध्ययन बताते हैं कि साझा सम्पत्ति अधिकार एक वैकल्पिक प्रणाली भर है जो सही परिस्थितियों में ही लाभकारी हो सकती है, ठीक उसी तरह जैसे निजी सम्पत्ति अधिकार गलत परिस्थितियों में विफल साबित होते हैं।

इसी तरह निजी सम्पत्ति अधिकारों पर बहुत जोर का नतीजा उन समस्याओं में निकल सकता है जिन्हें बाड़ाबंदी की त्रासदी की संज्ञा दी गई है। होता यह है कि जैसे सामुदायिक नियंत्रण से संसाधन निजी नियंत्रण में जाते हैं, उनके दोहन पर किसी किस्म की पाबंदी नहीं रहती। परंपरा प्रदत्त संयमों के अभाव में साझा संसाधनों के टिकाऊ प्रतीत होने वाले प्रबंधन के तहत भी नतीजा उनके अति-दोहन में ही निकलता है।

सवाल यह है कि क्या साझा बौद्धिक सम्पदा पर अमूर्त सम्पदाओं की बाड़ाबंदी थोपी जानी चाहिए? बहस इस मुद्दे पर होती है कि इसके आर्थिक फायदे क्या हैं? एक तर्क यह है कि व्यापार बढ़ता है, अनुकूलित करने की लागत घटती है, संचार की लागत कम होती है और ज्ञान उद्योग को अधिक मजबूत कानूनी संरक्षण की जरूरत महसूस होती है ताकि अधिकारभोगियों को और अधिक आविष्कार करने का प्रोत्साहन मिल सके। अमूर्त बौद्धिक सम्पदाओं को सार्वजनिक दायरे में रखने के पक्ष में तर्क यह दिया जाता है कि बड़ा और अनियंत्रित बाजार अधिकारभोगियों को छोटे और नियंत्रित बाजार के मुकाबले अधिक राजस्व का लाभ दे सकता है। साथ ही यह भी समझा जाता है कि मुक्त बाजार समाज के लिए कुल मिला कर अधिक हितकारी साबित हो सकता है। अमूर्त सम्पदाओं की बाड़ाबंदी से जुड़े मुद्दों का ताल्लुक सामाजिक-आर्थिक विकास, कृषि, पर्यावरण और मानवाधिकारों पर उसके प्रभाव से है।

ऐसे कई उदाहरण हैं जो बताते हैं कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के जरिए सभी परिस्थितियों और सभी क्षेत्रों में प्रगति नहीं की जा सकती। फ्री सॉफ्टवेयर फाउंडेशन द्वारा विकसित जनरल पब्लिक लाइसेंस (जीपीएल) इसका सबूत है कि बिना बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के भी कई तरह के नए रास्ते निकाले जा सकते हैं। जीपीएल के जरिए विकास और अनुसंधान में लगे हुए सभी लोग पिछले अनुसंधानों से लाभ उठा सकते हैं। जीपीएल के तहत व्यापार से हुए फायदों की साझेदारी भी जरूरी नहीं है। फ्री सॉफ्टवेयर के वितरण से सभी को फायदा हो सकता है।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का विस्तार होने से एक चिंता यह भी पैदा हुई है कि संरक्षण का उचित दायरा क्या होना चाहिए। यह भी देखा गया है कि अत्यधिक संरक्षण का नतीजा नए आविष्कारों को रोकने में निकलता है और सृजनात्मकता की हानि होती है। यह बाड़ाबंदी की त्रासदी का ही एक अन्य रूप बन जाता है। विकसित देशों में समस्या यह है कि बुनियादी और व्यावहारिक अनुसंधान संबंधी कानूनों के बीच का फर्क मिटता जा रहा है। खास तौर से अमेरिका में तो बुनियादी अनुसंधान में इस्तेमाल किए जाने वाले सिद्धांतों की पेटेंट-पात्रता भी स्वीकार की जाने लगी है। बड़ी कंपनियों को लगता है कि अत्यधिक बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का फायदा उन्हें तभी मिल सकता है जब केवल बने-बनाए उत्पादों को ही संरक्षित किया जाए, और अनुसंधान के लिए जरूरी कच्चा माल और आविष्कार बिना किसी बंदिश के उपलब्ध रहें। दूसरी तरफ अत्यधिक बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के कारण बड़ी कंपनियों को उन छोटी कंपनियों की कीमत पर काफी नाजायज किस्म का संरक्षण मिल जाता है जिन्हें इन्हीं अधिकारों के कारण अनुसंधान हेतु मूलभूत अनुसंधान सामग्री नसीब नहीं हो पाती।

## द. टिकाऊ विकास और बौद्धिक सम्पदा अधिकार

अभी तक केवल संबंधित वकील और आर्थिक विकास के लिए चिंतित अर्थशास्त्री ही बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में दिलचस्पी लेते थे। पिछले कुछ दशकों से इस सिलसिले में कुछ अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य अपनाने की जरूरत महसूस की जाने लगी है। अ-औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया के बाद यह पहली बार महसूस किया गया कि गरीब देशों के लिए विशेषकर स्वास्थ्य के क्षेत्र में कुछ विशेष प्रावधान होने चाहिए। हाल ही में जेव इंजीनियरिंग से जुड़ी समस्याओं से भी यह बात निकल कर आई है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का असर बहुत दूरगामी होता है। इनका असर सामाजिक-आर्थिक मानवाधिकारों, पर्यावरण संरक्षण और कृषि पर होता है। दरअसल टिकाऊ विकास की अवधारणा के दायरे में ये सभी असर आ जाते हैं।

मानव विकास सूचकांक देखने से साफ हो जाता है कि आर्थिक और सामाजिक विकास के मामले में दुनिया में कितनी असामनता है। भले ही एकदम ठीक-ठीक तस्वीर न मिले, पर गरीब और अमीर देशों के बीच का फर्क इस हकीकत के एक प्रमाण के रूप में देखा जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय नीतिगत हल्कों में यह उम्मीद की जाती रही है कि विकासशील देशों के लिए विशेष नीतियाँ और कानूनी ढाँचा अख्तियार करने से धीरे-धीरे यह फर्क कम होगा। लेकिन, व्यवहार में देखा गया है कि गरीब देशों की प्रगति कम या ज्यादा रही है। छोटे और बहुत कम विकसित देशों का प्रदर्शन अक्सर बेहद खराब साबित हुआ है। नब्बे के दशक में तो बीस देशों के मानव विकास सूचकांक में गिरावट आई, ५४ देशों में प्रति व्यक्ति आमदनी घट गई और २१ देश भूख से और ज्यादा पीड़ित नजर आए।



इन्हीं सब कारणों से अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने सन् २००० में सहस्राब्दी वैकासिक लक्ष्य निर्धारित किए ताकि विकासशील देशों की गरीबी खत्म की जा सके। इन वैकासिक लक्ष्यों से बौद्धिक सम्पदा अधिकारों पर काफी फर्क पड़ने वाला है। मसलन, अगर भूख से पीड़ित मानवता की संख्या आधी करनी है तो वनस्पतियों की नई किस्में विकसित करनी होंगी। खाद्यान्न के बेहतर वितरण की व्यवस्था करनी होगी। कम उपजाऊ मिट्टी वाले सीमांत के पारिस्थितिकीय क्षेत्रों पर ध्यान देना होगा और गरीबों के लिए जमीन के इस्तेमाल करने के अधिकार सुनिश्चित करने होंगे। अगर बड़ी-बड़ी बीमारियों से लड़ना है तो सबके लिए औषधियाँ मुहैया कराने की गारंटी करनी होगी और सभी देशों में स्वास्थ्य रक्षा का बंदोबस्त दुरुस्त करना होगा।

वस्तुस्थिति यह है कि कुछ सहस्राब्दी लक्ष्य दुनिया के कुछ क्षेत्रों में २००५ तक पूरे नहीं किए जा सकते। कुछ लक्ष्यों की पूर्ति में कई दशक लग जाएंगे, और कुछ देशों के रुझान इतने विपरीत हैं कि वहाँ तो लगता है कि ये लक्ष्य कभी पूरे नहीं होंगे। मसलन, सब-सहारा अफ्रीका और दक्षिण एशिया में भूख से पीड़ित आबादी की संख्या आधी करने में कई दशक खर्च हो जाने वाले हैं। अफ्रीका में तो एक डालर रोजाना से कम पर जीवित रहने वालों की संख्या बढ़ गई है।

विकास की इन चुनौतियों को निगाह में रखते हुए यह समझना जरूरी है कि पर्यावरण संरक्षण करते हुए आर्थिक विकास की गाड़ी को भी आगे बढ़ाना पड़ेगा। लोगों की बुनियादी भोजन संबंधी जरूरतें पूरी करने की कीमत पर पर्यावरण की रक्षा करने की कोई तुक नहीं है। इस संबंध में पहला दस्तावेज १९७२ की स्टाकहोम उद्घोषणा के रूप में सामने आया। इसने प्रकृति संरक्षण को आर्थिक विकास के नियोजन से जोड़ कर देखा। इसके बाद कई क्षेत्रों में कई संधियाँ हुईं और अंतर्राष्ट्रीय कानून तेजी से विकसित हुआ। टिकाऊ विकास की अवधारणा मुख्य बहस में आ गई। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने ब्रंटलैंड रपट अंगीकार की जो दरअसल पर्यावरण विकास संबंधी विश्व आयोग का दस्तावेज था। इस रपट ने टिकाऊ विकास की एक ऐसी परिभाषा मुहैया कराई जिसका दूरगामी महत्त्व था। इसके मुताबिक भविष्य की संभावनाओं को क्षति पहुँचाए बिना वर्तमान की जरूरतें पूरी करना ही टिकाऊ विकास है। रपट ने जोर दे कर कहा कि जरूरतों से उसका मतलब गरीबों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देने से है। रपट ने स्वीकार किया कि प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठन की सीमाएँ यह लाजमी कर देती हैं कि वर्तमान और भविष्य की जरूरतें पूरी करने के लिए हमें पर्यावरण से सीमित अपेक्षाएँ ही करनी चाहिए।

ब्रंटलैंड रपट ने कुल मिला कर गरीबी हटाने, समता लाने और आज और कल की पीढ़ियों की जरूरतों को ध्यान में रखने पर जोर दिया। इसके बाद टिकाऊ विकास की अवधारणा में व्यापक रुचि पैदा हुई। वह अंतर्राष्ट्रीय नीति-निर्माण के केंद्र में आ गई। पर्यावरण और विकास पर हुए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनसीईडी) के बाद तो वैकासिक नजरिए के बिना पर्यावरण प्रबंधन पर बात करना नामुमकिन हो गया। १९९२ में यूएनसीईडी द्वारा अंगीकार रिये उद्घोषणा ने २७ सूत्र पेश किए जिनसे टिकाऊ विकास के न्यूनतम उसूल सामने आए। इनमें मानवीय आवश्यकताओं की केंद्रीय भूमिका, पर्यावरण संबंधी मुद्दों में सभी नागरिकों की भागीदारी, सभी वैकासिक गतिविधियों में पर्यावरण सुरक्षा का ध्यान, राज्य के संप्रभु अधिकारों को मान्यता और एक-दूसरे से सहयोग करने का दायित्व, टिकाऊ विकास के समतामूलक आयाम, मौजूदा और आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं के बीच संतुलन, प्रौद्योगिकी का विकास और हस्तांतरण, वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित न होने पर भी केवल अंदेशों के बिना पर्यावरण संरक्षण के लिए कदम उठाना, स्थानीय समुदायों और देशज लोगों की अहमियत समझना और राज्य द्वारा टिकाऊ विकास की प्रक्रिया में इन लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना शामिल है। इससे स्पष्ट है कि रिये उद्घोषणा टिकाऊ विकास में पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक आयामों का समावेश करती है। चार भागों में बँटी इसकी कार्ययोजना (एजेंडा २१) से भी यह साफ हो जाता है।

यूएनसीईडी के बाद हुई बहस के परिणामस्वरूप टिकाऊ विकास पर विश्व शिखर सम्मेलन किया गया जिसे हम डब्ल्यूएसएसडी के नाम से जानते हैं। लेकिन जोहानीसबर्ग में अंगीकार की गई इसकी कार्ययोजना राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में यूएनसीईडी से परे नहीं जा पाई। उसने इतना जरूर किया कि राज्यों से उनकी प्रतिबद्धताएँ स्पष्ट करवा लीं कि वे स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और भूमंडलीय स्तरों पर टिकाऊ विकास के लिए परस्पर सहयोग करेंगे।

सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय आयामों को एक साथ लाने के कारण टिकाऊ विकास की अवधारणा कानून लिहाज से विभिन्न क्षेत्रों का एक आपसी सूत्र बना देती है, जो अन्यथा संभव नहीं हो पाता था। इस धारणा ने पर्यावरण संबंधी कानून की प्रकृति को धीरे-धीरे पूरी तरह बदल दिया है। तीस साल पहले के मुकाबले आज अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण कानून वाणिज्य, मानवाधिकार और बौद्धिक सम्पदा क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। इसी के कारण आज बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के सामाजिक-आर्थिक विकास, मानवाधिकार, पर्यावरणीय संरक्षण और कृषि संबंध पर विचार करना संभव है।

लेकिन, एक समस्या भी है। ब्रंटलैंड रपट द्वारा दी गई परिभाषाएँ अपने दायरे में इतनी व्यापक हैं कि टिकाऊ विकास की कोई स्पष्ट कानूनी हैसियत स्थापित नहीं होती। तरह-तरह के अनुशासनों और किस्म-किस्म के भागीदारों के कारण टिकाऊपन का कोई एक तात्पर्य नहीं रहता। ग्रीन परिप्रेक्ष्य इसके जरिए स्थापित आर्थिक प्रतिमानों को चुनौती देना चाहता है, तो अर्थशास्त्री प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के माध्यम से गरीबों की जीवन-स्थितियाँ बेहतर करने में दिलचस्पी रखते हैं। जो भी हो, यूएनसीईडी प्रदत्त न्यूनतम मानक हम पर कम से कम कुछ दायित्व तो आरोपित करता ही है। जैसे, इसके कारण हम पर फर्ज बनता है कि हम संसाधनों का इस तरह इस्तेमाल करें कि उनका क्षय न हो जाए, पर्यावरण की मौजूदा और भविष्य की पीढ़ियों के लिए संरक्षा करें और विकासशील देशों की विशेष स्थितियों का ख्याल रखें। कुछ ऐसे विवाद भी हुए हैं जिनके तहत टिकाऊ विकास की सामान्य अवधारणा कुछ सुनिश्चित सिद्धांतों की कसौटी पर कसने की चेष्टा की गई है। गैबकीवोको-नागीमारूज मुकदमे में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने टिकाऊ विकास के उसूल का हवाला देते हुए विवाद के पर्यावरणीय और वैकासिक पहलुओं को जोड़ने की जरूरत पर बल दिया था। न्यायमूर्ति वीरामंत्री ने अलग से अपनी राय दे कर कहा था कि टिकाऊ विकास को एक मानकीय मूल्य के रूप में आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय कानून का अंग बनाया जाना चाहिए।

टिकाऊ विकास कानून के दायरे में वे सभी संधियाँ और कानून आते हैं जिनका आधार विकास को सिर्फ आर्थिक विकास में सीमित करने के बजाय उसे व्यापक नजरिए से देखना है। दिक्कत यह है कि कानून के इन पहलुओं में एकता और उचित दिशा का अभाव है। कोई अंतर्राष्ट्रीय टिकाऊ विकास संगठन नहीं है। टिकाऊ विकास की अवधारणा ऐसे कानूनों को आपस में जोड़ती है जो इस विचार के सूत्रीकरण के पहले से



मौजूद हैं। यूएनसीईडी के परिणामस्वरूप कमीशन ऑन सरस्टेनेबिल डिवेलपमेंट (सीएसडी) जरूर बन गया है। इसमें एजेंडा २१ के कार्यान्वयन पर बहस तो होती है पर इसके पास संयुक्त राष्ट्र के सभी संबंधित संस्थानों की गतिविधियों के बीच समन्वय करने का कोई अधिकार नहीं है। नतीजे के तौर पर संस्थाएँ और कार्यक्रम अलग-अलग काम करते रहते हैं। इसके उलट डब्ल्यूटीओ के तहत सक्रिय व्यापार संबंधी संस्थाओं के बीच बेहतर तालमेल दिखाई पड़ता है।

टिकाऊ विकास के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य के नियंत्रण का है। उपनिवेशवाद के पंजे से आजाद होने के बाद विभिन्न राज्य अपने-अपने भू-क्षेत्र में आने वाले कुदरती संसाधनों का आर्थिक विकास के मकसद से दोहन करने के लिए स्वतंत्र हैं। इन नव-स्वाधीन राज्यों के पास विदेशियों के प्रवेश को विनियमित करने और अपनी मर्जी के मुताबिक नीतियाँ बनाने का अधिकार भी है। इस तरह राष्ट्रीय संप्रभुता का उसूल किसी भी अंतर्राष्ट्रीय कानून का निरपवाद अंग है। लेकिन, राज्यों को यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि उनकी गतिविधियाँ दूसरे राज्यों अथवा उनके न्याय-क्षेत्र के बाहर पड़ने वाले इलाकों के पर्यावरण की क्षति का कारण न बनें। दूसरे, राज्यों ने जैव विविधता संधि को अंगीकार करके मान लिया है कि जैविक संसाधन उनकी संप्रभुता से परे जा कर सारी मानवता का सरोकार होते हैं।

उपनिवेशवाद की पराजय से पहले और कुछ देशों में तो हाल तक माना जाता था कि बौद्धिक सम्पदा अधिकार सामाजिक रूप से तटस्थ होते हैं और उन पर अन्य क्षेत्रों से अलग विचार किया जा सकता है। विकासशील देशों में भी आर्थिक विकास के आग्रह को सर्वोपरि मानते हुए शुरू में यही रवैया अपनाया गया।

आज राष्ट्रीय स्तर पर पहला सवाल यह उठता है कि क्या बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रदान करने से आर्थिक और प्रौद्योगिक प्रगति होगी? इस प्रश्न का कोई भी एकमत उत्तर संभव नहीं है। पेटेंटों का फायदेमंद प्रभाव साबित करने वाले अध्ययन बहुत कम हैं। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों पर एक आपत्ति तो यह की जाती है कि ज्ञान के क्षेत्र में ताजे विकास को पेटेंट कर देने से ज्ञान का वह भंडार दरकिनार हो जाता है जिसे आधार बना कर वह ताजा विकास हुआ है। इससे लाभों के मामले में असंतुलन पैदा होता है। आर्थिक नजरिए से पेटेंट प्रणाली को फायदेमंद साबित करने वाले तथ्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं।

इस संबंध में दूसरा सवाल विकासशील देशों को होने वाले प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से जुड़ा है। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की भूमिका इस बारे में कई दशकों से विवादास्पद रही है। इसका एक आंशिक कारण यह है कि कई धनी देशों का विकास बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की गैरमौजूदगी में ही हुआ है। स्विट्जरलैंड और ताइवान जैसे एकदम परस्पर भिन्न देशों को इसके उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। स्विट्जरलैंड ने तो विकास का अच्छा खासा रास्ता तय करने के बाद काफी दबाव के बाद ही बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रणाली अपनायी। १९७६ में पेटेंट अपनाने से पहले दुनिया भर में स्विस दवा उद्योग का दबदबा बन चुका था। ताइवान तो अस्सी के दशक से पहले तक उलट इंजीनियरिंग के दम पर विदेशी प्रौद्योगिकी स्थानीय तौर पर जड़ब करने में लगा हुआ था।

विकासशील देश अक्सर पेटेंट प्रणाली के खिलाफ शिकायत करते रहते हैं कि यह उनके आर्थिक हितों के खिलाफ है। साठ के दशक में ब्राजील ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में प्रस्ताव रखा था कि वह विकासशील देशों से अपनी जरूरतों के हिसाब से पेटेंट कानून में तरमीम करने की अपील करे। महासभा ने १९६१ में प्रस्ताव पास तो किया पर उसकी शब्दावली कुछ कमजोर किस्म की थी।

ट्रिप्स के खिलाफ भी इसी तरह की शिकायत है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने अफसोस जताया है कि यह संधि पेटेंट और कापीराइट कानूनों को कड़ाई से लागू करती है जिससे प्रौद्योगिकी विकसित करने और बेचने वालों को फायदा होता है न कि समाज को नई प्रौद्योगिकी के उदारतापूर्वक विकास का लाभ पहुँचता है। विश्व बैंक ने भी यही सरोकार व्यक्त किए हैं। बैंक की मान्यता है कि इस समझौते से किसी देश को तब तक फायदा नहीं पहुँच सकता जब तक वह मध्यम आय के स्तर पर नहीं पहुँच जाता। इस तर्क से हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि आर्थिक विकास के शुरुआती स्तर पर बौद्धिक सम्पदा अधिकार अंगीकार न करना लाभप्रद हो सकता है।

पेटेंट प्रणाली विकसित देशों के बीच प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिहाज से तो फायदेमंद साबित हुई है, पर विकासशील देशों के बारे में यही बात नहीं कही जा सकती। पहले भी ऐसा होता रहा है, और आज भी यही स्थिति है। १९२० से १९७० के बीच में अमीर देशों के पेटेंटों में हिस्सा केवल नब्बे से घट कर अस्सी फीसदी हो पाया था। १९७० तक केवल छः फीसदी पेटेंट ही विकासशील देशों को मिले थे, जिनमें से अस्सी फीसदी का स्वामित्व विदेशियों के पास था। विकासशील देशों द्वारा दिए गए पेटेंटों में से नब्बे फीसदी का विदेशियों ने उन देशों में प्रौद्योगिकीय इस्तेमाल नहीं किया। जाहिर है कि पेटेंटों का प्रयोग प्रौद्योगिकी के प्रसार के बजाय उसे रोकने के लिए किया गया। १९७४ में अंकटाड द्वारा किया गया एक अध्ययन भी यही बताता है। निष्कर्ष के तौर पर इस अध्ययन में पेटेंट प्रणाली में सुधार की अपील की गई थी ताकि विकासशील देशों को भी इसका लाभ मिल सके। आज भी स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं है। १९९९ में प्रति दस लाख लोगों पर धनी देशों में २७३, मध्यम दर्जे के विकसित देशों में ७, ब्राजील में ३, चीन में २ और भारत में १ पेटेंट लाइसेंस दिया गया है। यह इसके बावजूद है कि ब्राजील, चीन और भारत बड़े-बड़े विकासशील देश हैं और उनमें बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का लाभ उठाने की क्षमता है।

भारत जैसे देशों में तो सरकारों ने महसूस कर लिया है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकार अंगीकार करने के बावजूद कुछ विशेष उपाय अपनाने होंगे ताकि नव-स्वाधीन देशों के हितों को नुकसान न पहुँच सके। दूसरे, अब टिकाऊ विकास की अवधारणा की रोशनी में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को देखा जाने लगा है। इस तरह से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकार पर्यावरणीय संरक्षण, आर्थिक विकास और सामाजिक विकास में उचित भूमिका निभा रहे हैं या नहीं। तीसरे, ट्रिप्स समझौते के कारण हुए बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीयकरण की तेज प्रक्रिया ने विकासशील देशों को इन अधिकारों के प्रति जागरूक किया है। यह भी लगने लगा है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकार विकासशील देशों की टिकाऊ प्रगति पर असर डाल रहे हैं। चौथे, ट्रिप्स द्वारा आरोपित न्यूनतम मानकों के कारण अलग-अलग देशों की अलग-अलग जरूरतों का सवाल उभार दिया है। इसके कारण बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से संबंधित विमर्श में एक नया आयाम पैदा हो गया है जिसके विश्लेषण की जरूरत से कोई इनकार नहीं कर सकता।

## २ अंतर्राष्ट्रीय-राष्ट्रीय स्तर पर बौद्धिक सम्पदा संरक्षण

प्रौद्योगिक और आर्थिक विकास सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के संबंध में विस्तृत कानूनी बंदोबस्त किया गया है। आज भी ज्यादातर संबंधित कानूनी ढाँचे राष्ट्रीय स्तर पर ही हैं, और सिद्धांततः राज्यों को अधिकार है कि वे जिस तरह चाहें अपनी जरूरतों के लिहाज से इन कानूनों में फेर-बदल करें। लेकिन, पहले ट्रिप्स समझौते के बाद और फिर हाल में ही अंगीकार की गई डब्ल्यूआईपीओ और द्विपक्षीय संधियों के बाद से राज्यों की यह क्षमता काफी सीमित हो गई है।

### अ. अंतर्राष्ट्रीय सांस्थानिक और कानूनी ढाँचा

संयुक्त राज्य प्रणाली में विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन (डब्ल्यूआईपीओ) की स्थापना १९६७ में की गई थी। उससे पहले मुख्य अंतर्राष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा संधियों में से कई अंगीकार की जा चुकी थीं। १९६७ से पहले पेरिस और बर्न कन्वेंशन के कार्यान्वयन की प्रशासनिक जिम्मेदारी यूनाइटेड इंटरनेशनल ब्यूरो फॉर दि प्रोटेक्शन ऑव दि इंटेलेक्चुअल प्रापर्टी उठाता था। डब्ल्यूआईपीओ की रचना के बाद संयुक्त राष्ट्र ने उसे अपनी संबंधित विशेषज्ञ एजेंसी की तरह अपना लिया।

यह एजेंसी सारी दुनिया में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का संरक्षण सुगम बनाती है और संबंधित संधियाँ करने के लिए प्रोत्साहन देती हुई राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले विधिनिर्माण की सुसंगति सुनिश्चित करती है। वह कई संधियों का प्रशासनिक बंदोबस्त करती है और खास तौर से विकासशील राष्ट्रों को कानूनी और तकनीकी मदद देती है। डब्ल्यूआईपीओ एक तरफ तो अन्य विवादों से अलग रहते हुए केवल बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के क्षेत्र में ही सृजनात्मकता को बढ़ावा देने में दिलचस्पी रखता है, दूसरी तरफ संयुक्त राष्ट्र से अपने ताल्लुकातों के तहत वह विकासशील देशों के लिए औद्योगिक सम्पत्ति से संबंधित प्रौद्योगिकी हस्तांतरण सुगम बनाने की कोशिश भी करता है। इसके लिए उसे संबंधित संयुक्त राष्ट्र संस्थाओं से सहयोग करना पड़ता है। चूँकि विकासशील देश इस एजेंसी की इस भूमिका से संतुष्ट नहीं हैं, इसलिए उन्होंने डब्ल्यूआईपीओ में एक वैकैसिक एजेंडे का समावेश करने का प्रस्ताव किया है। आने वाले सालों में इस विषय पर बहस होनी है।

इस समय डब्ल्यूआईपीओ पेटेंट, कॉपीराइट, भौगोलिक सूचक और ट्रेडमार्क जैसी बौद्धिक सम्पदा अधिकार संबंधी कम से कम बीस क्षेत्रों का प्रशासनिक कामकाज देख रहा है। पेटेंट कारपोरेशन ट्रीटी (पीसीटी) जैसी प्रक्रियात्मक संधियाँ भी इसमें शामिल हैं जिनका काम आविष्कारों को पेटेंट कराने के लिए दी जाने वाली अर्जियों का जाँच-पड़ताल से जुड़ा है।

वैसे तो बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के मामले में आजकल ट्रिप्स समझौता सबसे ज्यादा दृश्यमान है, पर इसने भी डब्ल्यूआईपीओ को प्रतिस्थापित नहीं किया है। वरन् इस समझौते ने इस एजेंसी के ढाँचे में कुछ परतें ही जोड़ी हैं, जिसके कारण आज भी बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का प्रशासन मुख्यतः इसी के हाथ में है। इसके अलावा यह एजेंसी पारंपरिक ज्ञान संरक्षण के मामले में भी मुख्य पहलकदमी ले रही है।

डब्ल्यूटीओ ने डब्ल्यूआईपीओ के साथ एक संधि करके बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के क्षेत्र में अपनी भूमिका को औपचारिक स्वरूप प्रदान कर दिया है। अब ये दोनों संगठन कानूनों और विनियमनों को अधिसूचित करने के मामले में परस्पर सहयोग करते हैं और विकासशील देशों को तरह-तरह की सहायता मुहैया कराते हैं।

औद्योगिक सम्पत्ति संरक्षण के लिए किए गए पेरिस कन्वेंशन में कई बार संशोधन किया जा चुका है और उसके मुख्य प्रावधान ट्रिप्स समझौते के अंग भी हैं। उन्नीसवीं सदी में जब यह देखा गया कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मेलों में प्रदर्शित आविष्कारों को नकल किए जाने से बचाना तकरीबन असंभव है, तो उस जरूरत के गर्भ से पेरिस कन्वेंशन का जन्म हुआ था। यह राष्ट्रीय सिद्धांत पर काम करता है और प्राथमिकता के अधिकार और पेटेंट की स्वतंत्रता को बुलंद करता है। इसके मुताबिक हर देश अपने और सदस्य देशों के नागरिकों को समान संरक्षण मुहैया कराएगा, अपने यहाँ पेटेंट की अर्जी लगाने के बाद किसी को भी दूसरे देशों में वही अर्जी एक साल के भीतर-भीतर लगाने की प्राथमिकता का अधिकार देगा और एक ही आविष्कार के लिए अलग-अलग देशों में दिए गए पेटेंट के लाइसेंस एक-दूसरे से स्वतंत्र होंगे। इस तरह विभिन्न देशों को अपने-अपने कानूनों के मुताबिक पेटेंट देने या न देने का मौका मिलता है। पेरिस कन्वेंशन सभी तरह के आविष्कारों की रक्षा नहीं करता। वह सदस्य देशों पर पेटेंट देने की बाध्यता नहीं थोपता, बल्कि उनसे सभी के साथ समान व्यवहार करने के लिए कहता है। कोई देश अगर न चाहे तो कन्वेंशन के संशोधित संस्करण से बाहर भी रह सकता है। अधिकारों के दुरुपयोग की स्थिति में पेरिस कन्वेंशन में १९२५ से पहले केवल पेटेंट अधिकारों को जब्त करने का प्रावधान था, पर बाद में अनिवार्य लाइसेंसिंग का प्रावधान शामिल किया गया। अधिकारों का खारिज किया जाना अभी भी होता है, पर केवल अंतिम दण्ड के रूप में।

ट्रिप्स समझौते के बाद भी डब्ल्यूआईपीओ ने कई नई पहलकदमियाँ ली हैं। मसलन, सन् २००० में पेटेंट आवेदनों की प्रक्रियात्मक जरूरतों को एकसार करने के लिए ट्रीटी की गई। इसके बाद से डब्ल्यूआईपीओ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पेटेंट कानून एकसार बनाने के लिए एक बड़ी संधि के सूत्रीकरण की फिराक में है। इसके पीछे तर्क यह है कि पेटेंट हासिल करने की बढ़ी हुई लागत कम की जा सकती है, बशर्ते आविष्कार से पहले के ज्ञान की परिभाषा, उसकी नवीनता, आविष्कार के क्षण और उसकी औद्योगिक व्यावहारिकता की कसौटियाँ एकसार बना दी जाएँ। इसके लिए पेटेंट कानून बनाने वाली स्थायी समिति काम कर रही है, पर इस प्रयास का काफी विरोध होने का अंदेशा है।

डब्ल्यूआईपीओ के स्तर पर सन् २००० में बौद्धिक सम्पदा, जैव संसाधनों, पारंपरिक ज्ञान और लोकगाथाओं पर अंतर-सरकारी समिति बनाने का कदम भी उठाया गया है। चूँकि ट्रिप्स समझौते के तहत बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और संस्कृति की पारंपरिक अभिव्यक्तियों के बीच आवश्यक संवाद नहीं हो पा रहा था इसलिए इस तरह के मंच की जरूरत पड़ी। अब तक सात बार बैठक करके पारंपरिक ज्ञान के लिए सुई जेनरिस संरक्षण समेत कुछ ठोस प्रस्ताव रखने में कामयाब इस कमेटी का जोर जैव संसाधनों के इस्तेमाल और उनसे होने वाले फायदों के बँटवारे, पारंपरिक ज्ञान और लोकगाथाओं के संरक्षण पर है।

सत्तर के दशक के उत्तरार्ध में व्यापारिक क्षेत्र ने सरकारों पर दबाव डाला कि वे संरक्षित बौद्धिक सम्पदा की गैरकानूनी बिक्री रोकने के उपाय करें। इसके लिए पेरिस कन्वेंशन में और ज्यादा सुधार करने की माँग की गई। लेकिन, विकसित और विकासशील देशों के रवैए में काफी फर्क होने के कारण पेरिस और बर्न कन्वेंशन में कोई संशोधन नहीं किया जा सका। अमीर देश इस बात से निराश थे कि न तो राष्ट्रीय स्तर पर नियमों के पालन की कोई विस्तृत व्यवस्था का प्रावधान किया जा रहा है और न ही विवाद की स्थिति में सभी से अपना फैसला मनवा लेने वाला पंचाट बनाया जा रहा है। जबकि, गरीब देश १९७४ के अंकटाड समझौते के तहत रियायतें माँग रहे थे। अंकटाड ने बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रणाली की आलोचना की थी।

व्यापार वार्ता के उरुग्वे चक्र की शुरुआत से बौद्धिक सम्पदा अधिकार सुदृढ़ करने का नई पहलकदमियाँ ली गईं। अमेरिकी की कारपोरेट लॉबियों ने अपना दबाव डाला। इस वार्ता के एजेंडे में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का मसला शामिल करने के मामले में सारी दुनिया के बड़े पूँजीपतियों ने दिलचस्पी दिखाई। वार्ता चक्र के पहले हिस्से में मुख्य मुद्दा यह रहा कि ब्राजील और भारत जैसे बड़े विकासशील देशों द्वारा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों पर चर्चा करने के लिए मंच बदलने के विरोध से कैसे निबटा जाए। विकासशील देश नहीं चाहते थे कि यह वार्ता डब्ल्यूआईपीओ से हट कर गैट के तहत हो। १९९३ में भारत पूरी तरह से विरोध करते-करते समर्थन की स्थिति में आ गया। पहले भारत का तर्क यह था कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से कोई खास ताल्लुक नहीं है और न ही अमीर देशों के पेटेंट कानून गरीब देशों पर थोपे जाने चाहिए। लेकिन, १९९१ के आर्थिक संकट और नरसिंहराव सरकार की नई आर्थिक नीतियों के चलते भारत का रवैया नरम पड़ गया। कुल मिला कर ट्रिप्स समझौते के लिए होने वाली वार्ता का मकसद अमीर देशों के बीच सहमति तलाश करना था। उसी के हिसाब से गरीब देशों को रियायतें दिए जाने का फैसला होना था। ताकतवर देशों द्वारा अपनी सहमति कमजोर देशों पर थोपने की इस कोशिश को सारी दुनिया में गैर-लोकतांत्रिक कह कर आड़े हाथों लिया जाना स्वाभाविक ही था।

गैट के डायरेक्टर जनरल ने जो मसविदा तैयार किया, वह अमेरिका के पक्ष में होने के कारण कामयाब साबित हुआ। शराबें बनाने के मामले में यूरोपीय भौगोलिकता को संरक्षण दिया गया। जापान ने कॉपीराइट की रॉयल्टी लेने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा। विकासशील देशों को अपना मुख्य प्रतिरोध छोड़ना पड़ा और उन्हें वनस्पति और पशु जगत को पेटेंट-पात्रता से बाहर रखने जैसी कुछ मामूली रियायतें ही मिलीं। सबसे ज्यादा फायदा ग्लोबल पूँजीवाद को हुआ। विकासशील देशों ने ट्रिप्स समझौते पर दस्तखत इसलिए कर दिए कि उसे व्यापक उरुग्वे चक्र का हिस्सा बना दिया गया था जिसमें ऐसे कई समझौते शामिल थे जिनसे उन्हें फायदा हो सकता था। भले ही कुछ देश ट्रिप्स समझौते के फलितार्थों को ठीक से न समझ पाए हों, पर उन्होंने उसे उरुग्वे चक्र में शामिल मल्टीफाइबर एग्रीमेंट और खेती से संबंधित समझौते के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देख कर स्वीकार कर लिया।

जैसा कि हम जानते हैं कि उरुग्वे चक्र के अंतिम दौर का नतीजा १९९५ के गैट को विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के बदलने में निकला। ट्रिप्स जैसी और सेवा क्षेत्र में व्यापार संबंधी संधियाँ अब गैट के बजाय डब्ल्यूटीओ के हाथ में आ गईं। इसके अलावा भी गैट का हर काम विश्व व्यापार संगठन ही करने लगा। पर, बौद्धिक सम्पदा के क्षेत्र में डब्ल्यूटीओ की भूमिका सीमित ही रही, क्योंकि दैनंदिन धरातल पर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की देख-रेख और प्रशासन की जिम्मेदारी डब्ल्यूआईपीओ के पास ही रहने दी गई। दूसरे, ट्रिप्स बौद्धिक सम्पदा अधिकार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने के बजाय राष्ट्रीय स्तर पर न्यूनतम मानकों का कार्यान्वयन करने का समझौता था। डब्ल्यूटीओ की भूमिका में केवल एक नई बात थी कि उसके पास अपने तहत होने वाले सभी समझौतों और संधियों से संबंधित विवादों पर फैसला देने की शक्तियाँ थीं और उसके फैसलों को मानना हर सदस्य देश के लिए लाजमी था। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के मामले में ये शक्तियाँ डब्ल्यूआईपीओ के पास नहीं थीं।

डब्ल्यूटीओ को विवाद निपटान संस्था किसी भी विवाद से तीन चरणों में निबटती है। पहले विवाद में शामिल पक्षों के बीच विचार-विमर्श का दौर चलाया जाता है। अगर फिर भी मामला नहीं सुलझता तो शिकायती पक्ष एक पैनल बनाने के लिए कहता है जो मामले की संबंधित कानूनों को रोशनी में जाँच करके निपटान संस्था की मदद करता है। पैनल की जाँच रपट पहले संबंधित पक्षों में वितरित की जाती है। पक्षों को अधिकार होता है कि वे सात वरिष्ठ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी वकीलों को मिला कर गठित किए गए एक स्थायी अपीलेट पैनल के सामने याचिका दायर कर सकते हैं। ये याचिकाएँ पैनल की रपट में उठाए गए कानूनी मुद्दों तक ही सीमित होती हैं। बाद में अपीलेट पैनल अपनी रपट निपटान संस्था के सामने पेश करता है जिसे अंगीकार कर लिया जाता है बशर्ते उसके खिलाफ सहमति न हो। इस विवाद निपटान बंदोबस्त की खास बात यह है कि उसका फैसला मानने या न मानने का आग्रह सदस्य देश की सदिच्छा पर नहीं छोड़ा जाता। न मानने पर सदस्य देश को मुआवजा देना पड़ सकता है, और उसे दी जाने वाली रियायतों में कटौती हो सकती है। इन्हीं सब कारणों से विवाद निपटान संस्था के फैसले अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी माने जा रहे हैं। बड़े देश इस बंदोबस्त का काफी इस्तेमाल करते हैं, पर छोटे व्यापारी देश नहीं। मसलन, सब-सहारा अफ्रीका के देशों ने तो इसका इस्तेमाल एक बार भी नहीं किया है। आज तक जितने भी विवाद हुए हैं उनमें अमेरिका वादी, प्रतिवादी या तीसरे पक्ष के रूप में सभी में शामिल रहा है।

इस प्रकार ट्रिप्स समझौता बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के क्षेत्र में एक ऐसा न्यूनतम मुश्तरक कार्यक्रम है जिसके प्रावधान बड़े विकसित देशों की सहमति पर आधारित हैं, न कि विकसित और विकासशील देशों के बीच हुए किसी समझौते पर। ट्रिप्स ट्रेडमार्क, भौगोलिक सूचकों, औद्योगिक डिजाइनों, पेटेंटों, इंटीग्रेटेड सर्किटों की टोपोग्राफी और अधोषित सूचनाओं के बारे में न्यूनतम मानक लागू करता है। ये सारे मानक अमीर देशों में पहले से ही लागू हैं। समस्या विकासशील देशों के बारे में है जहाँ वनस्पतियों के क्षेत्र में किसी तरह का संरक्षण लागू है ही नहीं। भारत ने तो पेटेंट-पात्रता पर कुछ विशेष पाबंदियाँ लगा रखी हैं जिन्हें हटाए बिना यहाँ ट्रिप्स लागू हो ही नहीं सकता। यानी कानून मौजूद है, पर उस पर अमल नहीं हो रहा है। कुल मिला कर स्थिति यह है कि ट्रिप्स समझौते को लागू करने के लिए विकासशील देशों को काफी समायोजन करना पड़ेगा, और बहुत कम विकसित देशों के लिए तो इस समायोजन की मात्रा बहुत अधिक होगी।

ट्रिप्स समझौता अपने न्यूनतम मानकों के साथ-साथ पेरिस कन्वेंशन के मानक भी शामिल करता है। पहले बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की विभिन्न श्रेणियाँ अलग-अलग रहती थीं, पर ट्रिप्स के तहत वे एक साथ कर दी गई हैं। डब्ल्यूटीओ की विवाद निपटान व्यवस्था का अंग होने के साथ-साथ इसमें प्रावधानों के किसी भी उल्लंघन पर दीवानी स्तर की कानूनी प्रक्रिया चलाने की व्यवस्था भी है। इसके तहत फर्जी ट्रेडमार्क के

तहत बनाई गई और कॉपीराइट का उल्लंघन करके बनाई गई चीजों का आयात रोकने का प्रावधान है, और व्यापारिक पैमाने पर होने वाली पायरेसी के खिलाफ फौजदारी मुकद्दमे दायर करने की व्यवस्था भी है।

ट्रिप्स समझौते की भूमिका स्पष्ट करती है कि उसका मकसद अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विकृतियाँ खत्म करते हुए बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को पर्याप्त संरक्षण देना है। वह वैकासिक और प्रौद्योगिकीय उद्देश्यों की पूर्ति करते हुए बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को निजी सम्पदा अधिकारों की तरह देखता है।

समझौते के पहले हिस्से से साफ हो जाता है कि वह न्यूनतम मानकों का कार्यान्वयन करते हुए राष्ट्रीय स्तर पर बौद्धिक सम्पदा अधिकार संबंधी कानूनों को एकसार तो करता है, पर उन्हें पूरी तरह एकरूप नहीं बनाता। मसलन, उसका अनुच्छेद ३३ पेटेंट की अवधि बीस साल करने का मानक तो पेश करता है, पर साथ में देशों को अधिकार भी बना रहता है कि वे चाहें तो यह सीमा बढ़ा सकते हैं। ट्रिप्स में पेरिस और बर्न कन्वेंशन के अहम हिस्से आपस में जुड़ भी गए हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं निकाला जा सकता कि अंतर्राष्ट्रीय रूप से मान्यताप्राप्त न्यूनतम मानक इनकारपॉरेटिड संधियों से परे नहीं जा सकते। इसके अलावा ट्रिप्स समझौता किसी भी देश को सर्वाधिक प्राथमिकता वाले देश घोषित करने की अवधारणा भी पेश करता है जिसके कारण इसका सूत्र गैट प्रदत्त (१९४७ से ही) इस अवधारणा से जुड़ जाता है। ट्रिप्स के मुताबिक द्विपक्षीय स्तर पर किसी देश को दिए गए फायदे के हकदार सभी सदस्य देश होने चाहिए। पर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के मामले में इस उदार लगने वाले प्रावधान का लाभ गरीब देशों को बहुत कम मिल पाता है। उनके पास अमीर देशों द्वारा आपस में दिए गए फायदों का लाभ उठाने की क्षमता ही नहीं होती।

समझौते के पहले हिस्से में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के समाहार के प्रश्न से भी निपटने की कोशिश की गई है। इसमें मुख्यतः दो मुद्दे शामिल हैं। पहला, अगर किसी देश में पेटेंट किया हुआ उत्पाद बाजार में लाया जाता है तो क्या वह उन सभी देशों पर लागू होगा जहाँ-जहाँ वह पेटेंट किया गया है या सिर्फ उसी देश में? मेडिकल पेटेंटों के मामले में यह उलझन काफी आती है। अगर अधिकारों का समाहार केवल उसी देश में माना जाए तो कंपनियों को दूसरे बाजारों में वहाँ के हालात के मुताबिक दामों पर उस उत्पाद को बेचने की सुविधा होगी। लेकिन अलग-अलग बाजारों के लिए अलग-अलग दामों का यह उसूल दो समस्याएँ हल नहीं करता। मसलन, हो सकता है कि गरीब देशों के मरीज दवा की कम से कम लागत के आधार पर निर्धारित दाम चुकाने की हैसियत भी न रखते हों। हो सकता है कि वे दवा की एक खुराक तो खरीद सकते हों, पर लंबी अवधि का दवा का सेवन करने लायक आर्थिक शक्ति उनके पास न हो। दूसरे, दवा निर्माता कंपनियाँ केवल विकासशील देशों में पैदा होने वाली बीमारियों के लिए दवा बनाने के प्रति उत्साहित नहीं भी हो सकती हैं, क्योंकि वहाँ के मरीज पर्याप्त कीमत नहीं अदा कर सकते। यह उसूल ट्रिप्स के अनुच्छेद ६ के मुताबिक समांतर आयात के खिलाफ तो जाता है, पर यह प्रावधान मुख्यतः विकासशील देशों के लिए गुंजाइशें प्रदान करता है जबकि अलग-अलग दामों का उसूल बौद्धिक सम्पदा अधिकार धारकों के लिए सुविधाजनक है।

एक उलझन जेनेटिकली परिवर्तित बीजों के बारे में भी है कि पेटेंटधारक का दावा केवल उसी बीज पर है या वह उसके आधार पर भविष्य में विकसित होने वाले बीजों पर भी दावा कर सकता है, भले ही पेटेंटधारक का उनमें कोई योगदान न हो। अनुच्छेद ६ के बावजूद यह अस्पष्टता जारी है। दोहा चक्र ने विभिन्न देशों को पेटेंट अधिकारों के समाहार के बारे में अपने-अपने कानून बनाने की इजाजत देता है।

ट्रिप्स समझौते का अनुच्छेद ७ निजी बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के धारकों और समाज के व्यापक हितों के बीच संतुलन कायम करने का प्रावधान करता है। अनुच्छेद ८ उन उपायों के बारे में है जो विभिन्न देश ट्रिप्स का प्रावधानों को लागू करने के लिए अपना सकते हैं। हालाँकि इस तरह की हिदायतों की व्यावहारिकता बहुत कम देखी गई है, पर भारत जैसे देशों ने मान लिया है कि इनके जरिए ट्रिप्स के अन्य प्रावधानों का इस्तेमाल बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के संरक्षण के लिए किया जा सकता है।

## ब. पेटेंट

पेटेंट देने के मामले में वैसे तो ट्रिप्स समझौता पेरिस कन्वेंशन के नक्शे-कदम पर ही चलता है, पर उसके कुछ नए पहलू भी हैं। जैसे, वह प्रौद्योगिकी के सभी क्षेत्रों में प्रक्रियाओं और उत्पादों में बिना फर्क किए पेटेंट देने का प्रावधान करता है। अब कोई देश न तो प्रौद्योगिकियों में भेद कर सकता है, न ही उत्पादों और प्रक्रियाओं में। राष्ट्रों को मानवों और पशुओं के लिए इस्तेमाल की जाने वाली निदानात्मक, उपचारात्मक और शल्यक्रियात्मक पद्धतियों को पेटेंट से मुक्त रखने का अधिकार है। वे नैतिकता, सामाजिक व्यवस्था, मानव, पशु, वनस्पति जगत और कुल मिला कर पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने के अंदेश के तहत पेटेंट पर पाबंदियाँ लगा सकते हैं। लेकिन, यह प्रावधान माइक्रो-ऑर्गेनिज्म और औषधियों के पेटेंटों पर संपूर्ण पाबंदी लगाने का अधिकार नहीं देता।

जीवन रूपों को पेटेंट करने से संबंधित अनुच्छेद २७(३)बी इस समस्या का समाधान करने में असमर्थ है कि क्या किसी माइक्रो-ऑर्गेनिज्म के पेटेंट से उस वनस्पति पर अधिकार हो जाता है जिसमें उसका इस्तेमाल किया गया हो, जबकि वह वनस्पति पेटेंट के दायरे के बाहर हो। यह प्रावधान सदस्य देशों पर वनस्पतियों संबंधी बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी तो डालता है, पर इसका मतलब यह नहीं है कि केवल पेटेंटों के जरिए ही यह संरक्षण किया जा सकता है। चूँकि यह अनुच्छेद विकासशील देशों की जरूरतों को ध्यान में रख कर नहीं लिखा गया है और इसके प्रावधान और हिदायतों में सुनिश्चितता भी नहीं है, इसलिए विकासशील देशों ने संरक्षण के कुछ नए तरीके भी अपनाते शुरू कर दिए हैं, जैसे कि किसानों के अधिकार। इससे कृषि का प्रश्न सामने आ गया है जो विकासशील देशों के लिए बहुत अहम है। इससे संशोधित ट्रिप्स समझौते की संभावनाएँ भी खुली हैं। इसके अलावा ट्रिप्स समझौते में कुछ अपवादों की व्यवस्था भी है। जैसे, भारत जैसे देशों को अधिकार दिया गया है कि वे ट्रिप्स लागू होने के बाद भी किसी उत्पाद को दस साल के लिए पेटेंट-मुक्त रख सकते हैं। लेकिन, ये देश इस अवधि में संबंधित कानून बदल कर पेटेंट-पात्रता से पूरी तरह नहीं बच सकते। दूसरे, औषधि और कृषि रासायनिक उत्पादों के मामले में पेटेंट देने में देर तो की जा सकती है, पर पेटेंटों के लिए आवेदन करने पर रोक नहीं लगाई जा सकती। सदस्य देशों के लिए जरूरी है कि वे पेटेंट धारकों को अपने आविष्कार का पूरा ब्योरा जारी करने के लिए मजबूर करें ताकि समाज को उसके आधार पर आगे आविष्कारों का लाभ मिलता रह सके। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के जरिए पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के लिए यह जरूरी है। ट्रिप्स समझौता पेटेंट धारक के

अधिकारों का ख्याल करते हुए किसी तीसरे पक्ष को बिना इजाजत के निर्माण, इस्तेमाल, बिक्री या आयात की अनुमति नहीं देता। इसी तरह का रवैया निर्माण प्रक्रियाओं के मामले में अपनाया गया है। ये अधिकार कम से कम बीस साल तक दिए जाने का प्रावधान है।

हालाँकि ट्रिप्स समझौता पेटेंटधारियों के लिए विस्तृत अधिकार मुहैया कराता है, पर सदस्य देशों द्वारा इन अधिकारों को सीमित करने की संभावना रहती है। ट्रिप्स का अनुच्छेद ३० प्रदान किए गए पेटेंट को विनियमित करने की गुंजाइश अपवादस्वरूप देता है, पर इस अपवाद की परिभाषा बड़ी व्यापक हो सकती है। हालाँकि इन अपवादों को सीमित करार दिया गया है, और पेटेंटधारक के अधिकारों की रक्षा का प्रावधान भी है, पर यह अनुच्छेद तीसरे पक्ष के हित को भी वैध ठहरा देता है, भले ही उसे भी पेटेंटधारक के हित के मातहत कर देता हो। लेकिन, इसी विरोधाभास का फायदा उठा कर एड्स पीड़ित मरीजों यानी इसी तरह के तीसरे पक्ष का हित अन्य सभी हितों से अधिक अहम मान लिया जाता है। व्यवहार में स्थिति यह है कि विवाद निपटान पैनल ऐसे विवादों में पेटेंटधारकों का ही पक्ष लेते देखा गया है।

इसी तरह अनिवार्य लाइसेंसिंग के जरिए भी पूरी बीसवीं सदी में पेटेंटधारकों के अधिकार सीमित किए जाते रहे हैं। कुछ सरकारों ने इस बारे में दूसरों के मुकाबले कड़ा रवैया अपनाया है। इस सिलसिले में ट्रिप्स समझौता सदस्य देशों पर कुछ शर्तें आरोपित करता है जिनके अनुसार अनिवार्य लाइसेंसिंग किसी विवादित पेटेंट पर ही लागू हो सकता है। सदस्य देश को पहले व्यापारिक दायरे में ही विवाद को निपटाना पड़ेगा, और केवल राष्ट्रीय इमरजेंसी की हालत में ही आविष्कार का गैर-व्यापारिक इस्तेमाल किया जाएगा। अनिवार्य लाइसेंसिंग का मकसद घरेलू बाजार में सप्लाई के लिए और समय सीमा के साथ ही होना चाहिए। पेटेंटधारक को पर्याप्त मुआवजे का अधिकार भी होगा। इस निर्णय की न्यायिक समीक्षा भी की जा सकती है। हालाँकि, अमेरिका अनिवार्य लाइसेंसिंग के प्रावधान को सीमित करवाना चाहता था, पर ट्रिप्स में ऐसा नहीं हो सका। समझा जाता है कि इससे विकासशील देशों को लाभ हुआ है। दूसरे, सदस्य देश राष्ट्रीय इमरजेंसी की परिस्थिति की जैसे चाहे व्याख्या कर सकते हैं।

हालाँकि ट्रिप्स समझौते को कारपोरेट ताकतों और बड़े देशों के लिए फायदेमंद समझा जाता है, पर दावा यह भी है कि सिद्धांततः विकासशील देशों को भी इससे लाभ हो सकता है। मसलन, माना जाता है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी बौद्धिक सम्पदा सुरक्षित होने पर ज्यादा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कर सकती हैं। कानूनी सुरक्षा का नतीजा अधिक प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में निकल सकता है जिससे आर्थिक विकास में उछाल आ सकता है। स्थानीय स्तर पर आविष्कारों का प्रोत्साहन मिल सकता है और ट्रिप्स के कारण अमेरिका द्विपक्षीय पार्वर्धियों नहीं लगा सकेगा।

इसके जवाब में कहा जा सकता है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में आज तक किसी सीधे संबंध का सबूत नहीं मिला है। इसी तरह बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के कारण प्रौद्योगिकी हस्तांतरण तभी हो सकता है जब प्राप्तकर्ता देश के पास उस तरह की बुनियादी अधिरचना हो। भारत और ब्राजील जैसे बड़े देशों के पास यह सुविधा हो सकती है, पर जरूरी नहीं कि छोटे अत्यल्प विकासशील देशों के पास भी हो। इसी तरह नए आविष्कारों की संभावना भी बुनियादी अधिरचना की मौजूदगी पर निर्भर है। कुल मिला कर ट्रिप्स के जरिए विकासशील देशों को मिलने वाले फायदों के बारे में अभी स्पष्टता नहीं है। जहाँ तक विकासशील देशों को रियायतें देने का सवाल है, ट्रिप्स के प्रावधानों में गेट के मुकाबले लचीलापन कम है, पर कुछ विशेष स्थितियों के लिहाज से इस समझौते के कुछ हिस्सों में कुछ गुंजाइश जरूर दिखती है। जैसे, समझौते की भूमिका में ही विकास और प्रौद्योगिकीय प्रगति को सार्वजनिक नीति का विषय बताते हुए गरीब देशों के संदर्भ में इस तरह की जरूरत पर बल दिया गया है। विकासशील देशों को फायदा पहुँचाने वाले कुछ प्रावधान भी हैं जैसे अनुच्छेद २७(३)बी जिसका ऊपर जिक्र किया जा चुका है। इसी तरह अनुच्छेद ६६(२) भी है जिसके तहत गरीब देशों को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का लाभ मिलना चाहिए। यह अलग बात है कि ज्यादातर देश इन दोनों प्रावधानों का लाभ उठाने में असमर्थ रहे हैं।

विकासशील देशों को दी गई मुख्य रियायतों के मामले में कार्यान्वयन की समय सीमा भी आती है। विकसित देशों को जहाँ एक साल के अंदर ट्रिप्स पूरी तरह लागू करना होगा, वहीं विकासशील देशों को पाँच साल के भीतर और अत्यल्प-विकसित देशों को दस साल का वक्त मिला है। औषधियों के मामले में भारत को विशेष उत्पाद प्रावधान के तहत दस साल की अवधि का फायदा मिला है, हालाँकि उसकी कार्यान्वयन समय सीमा एक जनवरी २००० थी। इसी तरह मेडिकल पेटेंटों के मामले में कार्यान्वयन एक जनवरी २०१६ तक बढ़ा दिया गया है।

उरुले चक्र और डब्ल्यूटीओ बनने के बाद भी ऐसे बहुत से मुद्दे रह गए हैं जिन पर समझौता वार्ता होनी बाकी है। जैसे अनुच्छेद ६६(२) के तहत विकसित देशों को अत्यल्प-विकसित देशों के लिए प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के कदम उठाने चाहिए। लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि यह होगा कैसे। कार्यान्वयन पर निगाह रखने के लिए बनी ट्रिप्स कौंसिल ने इस सिलसिले में विकसित देशों से एक रपट देने की माँग की है ताकि पता लग सके कि उन्होंने इस दिशा में अभी तक किया क्या है। इसी तरह अनुच्छेद २७(३)बी को लेकर १९९९ से ही वार्ता चल रही है, लेकिन इस प्रावधान के संशोधन पर कोई भी सहमति नहीं हो पा रही है। दोहा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन की रोशनी में यह वार्ता एक व्यापक एजेंडे के रूप में सामने आई और इसे जैवविविधता कन्वेंशन और ट्रिप्स के बीच संबंध के रूप में तो देखा ही गया, साथ ही इसे पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण से भी जोड़ कर देखा गया।

दरअसल, डब्ल्यूटीओ की सभी संधियों को हमें विकासमान मान कर चलना चाहिए। दोहा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में प्रस्तावित मुद्दों पर वार्ता चल ही रही है। दूसरे, ट्रिप्स समझौते के अनुच्छेद ७१(२) में व्यवस्था है कि डब्ल्यूटीओ के सदस्य देशों वाले अन्य मंचों पर स्वीकृत बौद्धिक सम्पदा अधिकार ट्रिप्स में भी एक सरल प्रक्रिया द्वारा स्वीकार किए जा सकते हैं। इस प्रावधान के कारण पहले से कहीं मजबूत बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की संभावनाएँ पैदा हो जाती हैं।

२००१ में हुई दोहा कांफ्रेंस डब्ल्यूटीओ के लिए मील का पत्थर साबित हुई। इसके परिणामस्वरूप हुई स्वास्थ्य संबंधी उद्घोषणा काफी अहम थी, क्योंकि इसमें विकासशील देशों में ट्रिप्स समझौते के कार्यान्वयन से संबंधित मुद्दों का सामना किया गया था। सब-सहारा देशों में फैली एड्स की बीमारी और उसका मुकाबला करने के लिए सस्ते दामों पर दवा मुहैया कराने के संदर्भ में हुई इस घोषणा का महत्त्व यह मान लेने में निहित था कि स्वास्थ्य के क्षेत्र में दिए जाने वाले पेटेंट अधिकार सदस्य देशों को जन-स्वास्थ्य संरक्षण के उपाय लेने से नहीं रोक सकते। यह उद्घोषणा विकासशील देशों के पक्ष में जाती है, और उन्हें ट्रिप्स के भीतर मौजूदा गुंजाइशों का लाभ उठाने का एक और मौका मिलता है। औषधियों के



संबंध में अत्यल्प-विकसित देशों को ट्रिप्स के कार्यान्वयन के लिए दस साल और मिल जाते हैं। लेकिन, इसके बावजूद दोहा उद्घोषणा विकासशील और अत्यल्प-विकसित देशों में पेटेंटों की प्रासंगिकता और औषधियों के पेटेंटों के बुनियादी प्रश्नों पर विचार नहीं करती।

यहाँ समझने की बात यह है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकार संबंधी समझौतों और संस्थाओं का बुनियादी तर्क आर्थिक विस्तार के लिए प्रोत्साहन देना है, न कि उनका कोई सीधा संबंध मानवाधिकार, सामाजिक विकास, कृषि और पर्यावरणीय संरक्षण से है। पिछले कुछ दिनों से ही पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण पर हुई चर्चा के जरिए टिकाऊ विकास के सरोकारों की भूमिका संबंधित वार्ता में बढ़ी है। डब्ल्यूटीओ की भूमिका में टिकाऊ विकास का जिम्मा केवल एक बार आया है। इससे पता चलता है कि टिकाऊ विकास के साथ जुड़ा एक सूत्र तो है, पर उसे प्राथमिकता बहुत कम दी गई है। ट्रिप्स की भूमिका तो टिकाऊ विकास की जिम्मा तक नहीं है। विभिन्न अनुच्छेदों में कुछ अप्रत्यक्ष उल्लेख जरूर किए गए हैं जिनका विश्लेषण ऊपर किया जा चुका है।

## स. भारत में पेटेंट कानून

कई यूरोपीय देशों से पहले ही अंग्रेजों द्वारा भारत में पेटेंट प्रणाली की शुरुआत कर दी गई थी। आजादी से पहले ऐसा संबंधित कानून पेटेंट और डिजाइन एक्ट के रूप में १९११ में बना था। स्वाधीन भारत की सरकार ने इंग्लैंड के तर्ज पर बने इस कानून को अनपी जरूरतों के अनुसार बनाने का निश्चय किया, क्योंकि इसके कारण ९० फीसदी भारतीय पेटेंटों पर विदेशियों का कब्जा हो गया था, और करीब ९० फीसदी पेटेंटों पर भारत में काम ही नहीं होता था। इस पर बनी टेकचंद कमेटी ने १९४९ में अपनी रिपोर्ट दी। फिर न्यायमूर्ति आयोगार की विस्तृत रिपोर्ट १९४९ में आई। इसकी मुख्य स्थापना यह थी कि भारतीय पेटेंट प्रणाली भारत के भीतर औद्योगिक मकसदों से आविष्कारों को प्रोत्साहित करने में नाकाम रही है इसलिए इसका फायदा जनता के व्यापक हिस्सों को नहीं मिल पा रहा है। जस्टिस आयोगार ने पेटेंट प्रणाली रद्द करने की सिफारिश नहीं की, क्योंकि उनके पास उसका कोई विकल्प नहीं था। अन्य देशों की पेटेंट प्रणालियों का अध्ययन करने के बाद देखा कि विकसित देशों ने भी खाद्य और दवा के क्षेत्रों में पेटेंटों पर कड़ी पाबंदियाँ लगा रखी हैं। उन्होंने भारत के लिए भी ऐसी ही सिफारिशें कीं। इस रिपोर्ट और अन्य सोच-विचार के परिणामस्वरूप १९७० का पेटेंट एक्ट प्रकाश में आया जिसमें पेटेंट प्रणाली का पश्चिमी मॉडल ही कायम रखा गया था, पर कुछ भारतीय विशेषताएँ जोड़ी गई थीं। इस कानून ने पहला काम तो यह किया कि जीवन रूपों और कृषि और बागवानी संबंधी विधियों को पेटेंट-पात्रता से अलग कर दिया। खाद्य और दवाओं से संबंधित पदार्थों को भी पेटेंट-मुक्त कर दिया गया। दवाओं में तरह-तरह के कीटनाशक भी शामिल थे। पोषण और स्वास्थ्य के क्षेत्र में इस कानून ने उत्पादों को पेटेंट-मुक्त किया और निर्माण प्रक्रिया को पेटेंट करने की इजाजत दी। बाकी आविष्कारों के पेटेंट के लिए १४ साल की अवधि दी गई, पर खाद्य और दवाओं के लिए यह अवधि सात साल रखी।

आविष्कारों को भारत में ही प्रोत्साहित करने के लिए शर्त लगाई गई कि उन पर व्यापारिक काम भारत में ही होना चाहिए और पेटेंट का मतलब केवल इजारेदारी के फायदे उठाने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। यह भी तय हुआ कि अगर तीन साल के बाद भी पेटेंट का फायदा आम जनता तक नहीं पहुँच पा रहा है और उसके कारण बना उत्पाद वाजिब दामों में नहीं मिल रहा है तो उसे अनिवार्य लाइसेंसिंग के तहत लाया जा सकता है। एक प्लाइसेंस ऑव राइट्स नामक प्रावधान किया गया जिसके तहत पेटेंटों के महानियंत्रक से सरकार कह सकती है कि वह अमुक पेटेंट पर प्लाइसेंस ऑव राइट्स की मुहर लगा कर ही भेजे अगर ये शर्त पूरी नहीं पा रही हैं। इस तरह खाद्य और दवा संबंधी पेटेंट व्यावहारिक रूप से तीन साल के बाद अनिवार्य लाइसेंसिंग के तहत अपने आप आने लगे। दो साल बाद भी अपेक्षित लाभ मिलते न दिखाई देने पर पेटेंट लाइसेंस रद्द कर देने का प्रावधान भी रखा गया।

भारत का यह पेटेंट कानून पश्चिमी मॉडल से अलग था, और ट्रिप्स समझौते के लिए भी इसे विकासशील देशों की जरूरतों के मॉडल की तरह देखा जा सकता है। भारतीय कानून का बुनियादी तर्क विदेशी कंपनियों की कीमत पर घरेलू उद्योग को प्रोत्साहित करना था, खासकर बुनियादी आवश्यकताओं के क्षेत्र में। उसका सरोकार यह था कि घरेलू उत्पादकों को मिले इजारेदारी अधिकारों को कैसे नियंत्रित किया जाए। इसका सीधा फायदा तब मिला जब साठ के दशक के बाद से अन्य देशों के मुकाबले भारत में दवाओं के दाम गिर गए। आजादी के पहले भारत में दवाओं के दाम दुनिया में सबसे ज्यादा थे, आज वे सबसे कम दामों में से एक हैं। इसी कानून के कारण भारत का दवा उद्योग २५ फीसदी से विकसित हो कर इस समय जरूरत की दवाओं का करीब सत्तर फीसदी बना रहा है। कुछ स्थानीय कंपनियों ने नई दवाएँ बनाने में विशेषज्ञता हासिल कर ली है। हालाँकि इस पेटेंट प्रणाली से यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी कि वह सभी को औषधियाँ मुहैया कराने में अपनी भूमिका निभाएगी, पर इससे टिकाऊ विकास प्रोत्साहित करने के मामले में खासा सकारात्मक असर जरूर पड़ा।

अब भारत सरकार ने ट्रिप्स समझौते पर दस्तखत कर दिए हैं। यानी वह १९७० से पहले के जमाने में लौटने जा रही है। उल्लेखनीय है कि इन परिवर्तनों पर कोई राष्ट्रीय बहस भी नहीं हो रही है। न केवल यह, बल्कि सरकार और संसद में इस सवाल पर अंतर्विरोध है। भारत को एक जनवरी, १९९५ से परिवर्तनों का पहला दौर लागू करना था। इससे उसे अपवादस्वरूप कार्यान्वयन की लंबी अवधि का फायदा मिल सकता था। पर १९७० के एक्ट में संशोधन प्रस्तावित करने वाला विधेयक राज्यसभा में पास नहीं हो सका। सरकार को अध्यादेश जारी करना पड़ा, जिसकी अवधि मार्च १९९५ में खत्म हो गई। संसद और सरकार के बीच के द्वंद्व का नतीजा यह निकला कि डब्ल्यूटीओ के विवाद निपटान पैनल में विवादग्रस्त होने वाला पहला देश भारत था। अमेरिका ने भारत पर आरोप लगाया कि वह ट्रिप्स के अनुच्छेद ७०(९) के अनुसार औषधि और कृषि रासायनिक उत्पादों के लिए आवेदन करने और उन आवेदनों को संसाधित करने की प्रणाली नहीं लागू कर पाया है। इस प्रणाली को मेलबॉक्स सिस्टम कहते हैं। भारत का तर्क था कि कानून बनाने में उससे जरूर कोताही हुई है, पर व्यवहार में वह यह सुविधा मुहैया करा रहा है। पर अपीलेंट संस्था ने भारत के खिलाफ फैसला दिया। इसके बाद इसी मामले पर यूरोपीय यूनियन ने भारत के खिलाफ शिकायत दर्ज करा दी। आगे चल कर समझौता यह हुआ कि भारत को अप्रैल १९९९ तक का समय दे दिया जाए।

नतीजे के तौर पर १९९८ में सरकार ने किसी अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता से बचते हुए पेरिस कन्वेंशन के प्रति निष्ठा व्यक्त की ताकि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के प्रति उसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता सामने आ सके और विदेशी निवेशकों के बीच उसकी छवि सुधर सके। दूसरे,

संसद में दोबारा नाकाम हो जाने के बाद सरकार ने जनवरी, १९९९ में एक और अस्थायी अध्यादेश जारी किया। आखिर में १९ अप्रैल, १९९९ को संसद के दोनों सदनों ने संशोधन विधेयक पारित कर दिया।

१९९९ के नए कानून ने अनुच्छेद ५ में एक उप-अनुच्छेद का प्रावधान किया जिसने दवाओं के क्षेत्र में उत्पाद पेटेंट प्रतिबंधित कर दिए, पर पेटेंट का आवेदन करने की इजाजत दे दी। खाद्य और स्वास्थ्य संबंधी उत्पादों के लिए जाने वाले पेटेंट आवेदनों से अध्याय IV के तहत निबटने का प्रावधान किया गया जिसमें ट्रिप्स के तहत विशेष विपणन अधिकारों से संबंधित शर्तों का उल्लेख है। लेकिन, भारत के हिस्से में आने वाले कार्यान्वयन का यह सिर्फ एक ही हिस्सा था। दिसंबर, १९९९ में नए संशोधन पेश किए गए जिनका अध्ययन अगले दो साल तक एक संसदीय समिति ने किया। २००२ में बिना किसी तरमीम के इस संशोधनों को पारित कर दिया गया।

इस संशोधन के कारण १९७० के पेटेंट एक्ट की सारी विशेषताएँ समाप्त हो गईं और कानून समाज के पक्ष में रहने के बजाय पेटेंटधारकों के पक्ष में हो गया। अब अपवादस्वरूप क्षेत्रों में भी बीस साल से कम अवधि के लिए पेटेंट देना नामुमकिन हो गया। लाइसेंस ऑव दि राइट का प्रावधान भी खत्म कर दिया गया। यह जरूर है कि ट्रिप्स समझौते के अनुच्छेद २७(२) और २७(३) के तहत इस कानून में अनुच्छेद ३(बी) और ३(जे) जोड़ा गया जिससे पेटेंट अधिकारों को पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिहाज से संयमित करने के प्रावधान किए जा सके। अनुच्छेद ५ के तहत पेटेंट-पात्रता सीमित करने की कोशिशें भी की गईं। सरकार ने वनस्पति विविधता के मामले में सुई जेनरिस विकल्प के मुताबिक अलग से अपना कानून तैयार किया और कानूनी प्रणाली में प्लांट ब्रीडर्स अधिकार और किसानों के अधिकार भी जोड़ दिए। संशोधित कानून में पेटेंट देने के लिए शर्त लगाई गई कि धारक को आविष्कार के भौगोलिक उद्गम और उसमें इस्तेमाल की गई जैविक सामग्री का खुलासा करना होगा। पारंपरिक ज्ञान पेटेंट-पात्रता से मुक्त कर दिया गया। जेनरिक प्रोड्यूसर्स से कहा गया कि वे पेटेंट की अवधि खत्म होते ही अपने उत्पाद बाजार में लाने के लिए तैयार रहे।

जन-स्वास्थ्य संरक्षण और पेटेंट से संबंधित उत्पाद के वाजिब दामों के प्रश्न पर सरकार ने अनिवार्य लाइसेंसिंग मजबूत करने की कोशिश की। यह एक ऐसा मुकाम था जहाँ भारत सरकार ट्रिप्स प्रणाली के लचीलेपन का इस्तेमाल करते हुए उसे घरेलू जरूरतों के मुताबिक ढालते हुए दिखती है। दिक्कत यह है कि संशोधित कानून की ये खूबियाँ पहले से दिए जा चुके पेटेंटों को ही प्रभावित करती हैं, न कि आवेदन के स्तर पर प्रभावी होती हैं। वैसे भी अनुभव यह नहीं बताता कि अनिवार्य लाइसेंसिंग के जरिए अंतर्राष्ट्रीय पेटेंट प्रणाली का विषमतामूलक चरित्र दुरुस्त किया जा सकता है।

बहरहाल, सरकार ने ट्रिप्स कार्यान्वयन की अंतिम कसौटी पर खरे उतरने के लिए २००३ में एक और संशोधन विधेयक पेश किया जो पारित नहीं हो पाया। २००४ में नई सरकार ने संसद में विधेयक पेश किए बिना एक अस्थायी अध्यादेश जारी करके समय सीमा से पहले ही यह जरूरत पूरी कर दी। अभी यह विधेयक संसद द्वारा पारित किया जाना बाकी है।

कहना न होगा कि ये तमाम संशोधन पेटेंट संबंधी बहस का चक्र एकदम उल्टा घुमा देंगे। खास बात यह होगी कि एक संप्रभु सरकार ट्रिप्स पर दस्तखत करने के बाद स्वीकार की गई उन अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं का सम्मान करेगी जिन पर संसद में बहस की ही नहीं गई है। जाहिर है कि आजादी के बाद कई सामाजिक-आर्थिक हकीकतें बदल चुकी हैं, पर सभी को खाद्य और दवा उपलब्ध कराने की समस्या हल नहीं हुई है। १९७० के पेटेंट एक्ट द्वारा पेटेंट प्रणाली पर आरोपित पाबंदियों की जरूरत खत्म नहीं हुई है, और न ही कोई उस एक्ट के सकारात्मक परिणामों से इनकार कर सकता है।

## द. अनिवार्य लाइसेंसिंग : दक्षिण अफ्रीका का अनुभव और डब्ल्यूटीओ जनरल काँसिल का फैसला

चूँकि ट्रिप्स समझौते के बाद हर देश के लिए पेटेंट-पात्रता की कुछ न्यूनतम कसौटियाँ लागू करना जरूरी हो गया है, इसलिए उन्हें इस पेटेंट प्रणाली से होने वाली दिक्कतों का निपटारा करने के लिए अनिवार्य लाइसेंसिंग का उत्तरोत्तर सहारा लेना पड़ता है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में यह संघर्ष मुख्यतौर पर चलता रहा है। इस मामले में दोहा स्वास्थ्य उद्घोषणा से पहले के दो मामले दृष्टव्य हैं।

चूँकि दक्षिण अफ्रीका में एड्स के मरीजों की संख्या बढ़ती जा रही थी, इसलिए १९९७ में उसने एक कानून पारित करके संबंधित औषधियों को पेटेंट अधिकारों से मुक्त कर दिया ताकि जनता को इस भीषण महामारी के उपचार की सुविधा आसानी से और वाजिब दामों पर मुहैया हो सके। इस कानून के जरिए सरकार ने जरूरी दवाएँ आयात करने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। दक्षिण अफ्रीकी सरकार के इन कदमों को कुछ दवा कंपनियों ने यह कह कर चुनौती दी कि इस कानून का अनुच्छेद १५(सी) ट्रिप्स समझौते के अनुच्छेद २७ का उल्लंघन करते हुए पेटेंटधारियों को उनके अधिकारों से वंचित कर देता है। लेकिन, जबरदस्त जनविरोध के कारण इन कंपनियों को अपनी याचिका अप्रैल २००१ में वापस ले लेनी पड़ी। यह मामला बताता है कि ट्रिप्स समझौते पर चलते हुए भी कोई सरकार जन-स्वास्थ्य संरक्षण और दवाओं की उपलब्धता के प्रश्न पर अलग रवेया अपना सकती है।

एक दूसरे मामले में ब्राजील ने भी एड्स की महामारी के आंतकित हो कर ऐसे ही कदम उठाने का निश्चय किया, जिसके खिलाफ अमेरिका ने फरवरी, २००१ में डब्ल्यूटीओ विवाद निपटान प्रणाली में ब्राजीली कानून के तहत अनिवार्य लाइसेंसिंग का प्रावधान करने वाले अनुच्छेद ६८(१) को चुनौती देने की विधि अपनायी। अमेरिका का कहना था कि ब्राजील किसी उत्पादक को दवा का उत्पादन ब्राजील में ही करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। अमेरिका ने बाद में यह मुकद्दमा वापस ले लिया, क्योंकि ब्राजील ने आश्वासन दे दिया कि वह किसी भी अमेरिकी कंपनी के खिलाफ अनिवार्य लाइसेंसिंग का प्रावधान इस्तेमाल करने के पहले उससे बातचीत करेगा। उल्लेखनीय यह है कि अमेरिका ने राष्ट्रीय इमरजेंसी की स्थितियों में ट्रिप्स समझौते को न मानने वाले प्रावधान पर आपत्ति नहीं की। १९९९ की एक राजाज्ञा में इमरजेंसी लगाने के लिए आवश्यक जनहित की व्याख्या की गई है। विकासशील देशों में ब्राजील की सरकार ने इस मामले में सबसे ज्यादा पहल ली है और एड्स की दवा बनाने वाली रोशे कंपनी से वार्ता करने के उपरांत उसे अनिवार्य लाइसेंसिंग के तहत लाने की धमकी भी दी है।



इन दोनों प्रकरणों ने, खासकर ब्राजीली प्रकरण ने, औषधियों के मामले में अंतर्राष्ट्रीय जागरूकता बढ़ाने में खासा योगदान किया। नतीजे के तौर पर दोहा स्वास्थ्य उद्घोषणा ने २००१ में सदस्य देशों द्वारा अनिवार्य लाइसेंसिंग करने के अधिकार की पुष्टि की, पर पेटेंट-पात्रता सीमित करने के अधिकार को मान्यता नहीं दी। अनिवार्य लाइसेंसिंग का लाभ न उठा पाने वाले देशों के लिए विशेष उपायों का प्रावधान करने का प्रयास किया गया।

चूँकि इस विषय में सदस्य देशों में सहमति नहीं थी, इसलिए कई नाकाम प्रयासों के बाद अगस्त, २००३ में उद्घोषणा के संबंधित पैरा ६ से निकलने वाले मुद्दों पर डब्ल्यूटीओ जनरल कौंसिल ने फैसला लिया। इस फैसले के अनुसार दवाओं का निर्माण करने में अक्षम देशों को दवाएँ निर्यात करने का अधिकार उन देशों को मिल जाता है जो दवाएँ मैन्यूफैक्चर सकते हैं। इस तरह ट्रिप्स समझौते का अनुच्छेद ३१(एफ) निष्प्रभावी हो जाता है। लेकिन, फैसले में कुछ शर्तें भी लगाई गई हैं जिनमें पेटेंटधारी को पर्याप्त मुआवजा देने का प्रावधान भी है। कुल मिला कर इस फैसले की भावना भी यही है कि पेटेंटधारी के अधिकारों की रक्षा कैसे की जाए। ऐसा नहीं लगता कि फैसले के पीछे जन-स्वास्थ्य की रक्षा करने का मकसद हो। कहना न होगा कि जनरल कौंसिल को ऐसा फैसला लेना पड़ा, अगर कोई मानना चाहे तो इसे उपलब्धि मान सकता है, पर असल में भूमंडलीय स्तर पर जन-स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य के मुताबिक इसे लाभप्रद नहीं माना जा सकता। इस फैसले का लाभ उठा कर औषधि निर्माता व्यापारिक हित केवल उन दवाओं के निर्यात पर जोर दे सकते हैं जो उनके लिए बहुत फायदेमंद हैं। अगर छोटे देशों को कम मात्रा में दवाओं की जरूरत है तो भी दवा कंपनियों की दिलचस्पी निर्यात में कम हो सकती है। जाहिर है कि यह फैसला जन-स्वास्थ्य में बढ़े हुए घरेलू सरकारी निवेश की जगह नहीं ले सकता। वैसे भी अनुच्छेद ३१(एफ) को निष्प्रभावी करना जन-स्वास्थ्य के लिहाज से कोई अच्छी रणनीति नहीं मानी जा सकती। बाजार की ताकतों के वर्चस्व में इसका कोई खास फायदा नहीं होने वाला। उदाहरण के लिए भारत जैसे देश की दवा निर्माता कंपनियाँ सब-सहारा देशों की जरूरतों के हिसाब से दवा बनाने में तब तक दिलचस्पी नहीं लेंगी, जब तक वे उन दवाओं को घरेलू या अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बेच कर मुनाफा कमाने की स्थिति में न हों। दूसरे, जनरल कौंसिल के निर्णय ने अनिवार्य लाइसेंस के प्रावधान का अंतर्राष्ट्रीयकरण कर दिया है, जबकि ट्रिप्स के तहत भी पहले यह एक घरेलू विशेषाधिकार ही था। लेकिन, अब इसमें डब्ल्यूटीओ को अपनी टाँग अड़ाने का मौका मिल गया है। हालाँकि दोहा स्वास्थ्य उद्घोषणा का मकसद इस क्षेत्र में सदस्य देशों के कर्तव्य घटाना था, पर इस फैसले के कारण ये कर्तव्य बढ़ गए हैं। यह एक अस्थायी फैसला था, जिसे स्थायी करने के लिए जून, २००४ में ट्रिप्स में एक संशोधन किया जाना था। लेकिन, इस पर हुई बहस के कारण यह संशोधन अभी टल गया है।

### ३ टिकाऊ विकास कानून और बौद्धिक सम्पदा अधिकार

टिकाऊ विकास कानून और बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के क्षेत्र अलग-अलग हैं। हालाँकि इस कानून का प्रौद्योगिकीय विकास से कोई सीधा ताल्लुक नहीं है, पर इसके सूत्र बौद्धिक सम्पदा संरक्षण से जुड़े हैं। इसके जरिए प्रौद्योगिकीय विकास, पर्यावरण और सामाजिक मुद्दों के बीच संबंध का संधान किया जा सकता है।

#### अ. जैवविविधता

इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जैवविविधता कन्वेंशन मुख्य तौर पर प्रभावी है, और राष्ट्रीय स्तर पर जैवविविधता कानून के साथ-साथ राष्ट्रीय जैवविविधता रणनीति और कार्ययोजना के आधार पर काम होता है।

सभी तरह के जीवित ऑर्गनिज्म के संरक्षण के लिए जैवविविधता के संरक्षण और इस्तेमाल पर विचार करना आवश्यक है। जैवविविधता का मतलब है, सभी तरह की वनस्पतियाँ, जीव, माइक्रो-ऑर्गनिज्म और पारिस्थितिकीय प्रणालियाँ एवं उनके भीतर की विविधताएँ। जाहिर है कि जैवविविधता का प्रश्न इस तरह से पर्यावरण संरक्षण के पारंपरिक रवैये से परे चला जाता है।

इस सिलसिले में अंतर्राष्ट्रीय कानून बनाने का मतलब केवल जैवविविधता प्रबंधन के साथ जुड़ी हुई संरक्षण कार्यसूची तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसका महत्त्व जैविक संसाधनों के आर्थिक इस्तेमाल के लिए भी है। अस्सी के दशक में पहली बार यह एहसास हुआ कि अभी तक बेकार समझे जाने वाले जैविक संसाधनों का जेनेटिक इंजीनियरिंग के जरिए उनके उद्गम देश द्वारा लाभकारी इस्तेमाल किया जा सकता है। इसी दशक में टिकाऊ विकास की अवधारणा का विकास करने की दिशा में तेजी से कदम उठाए गए।

वैसे तो सभी देशों की अपने-अपने जैव संसाधनों पर स्वाभाविक संप्रभुता थी, पर व्यवहार में खेती संबंधी सुधार के लिए जर्मप्लाज्म का खुल कर विनिमय होता था। इसलिए जैसे ही यह एहसास हुआ, वैसे ही विकासशील देशों ने जैव संसाधनों पर अपने नियंत्रण को कानूनी जामा पहनाने की कोशिश शुरू कर दी। अंतर्राष्ट्रीय कानून और पर्यावरण कानून की सीमाओं के कारण परस्पर वार्तारत राष्ट्रों ने एक ऐसा सामान्य ढाँचागत समझौता हासिल करने का प्रयास किया जिसके तहत आम तौर से नीतिगत फैसले लिए जा सकें और आगे चल कर कुछ विशिष्ट संहिताएँ सूत्रबद्ध की जा सकें। जैवविविधता पर अंतर्राष्ट्रीय कानून बनना इसलिए भी जरूरी था कि ज्यादातर जैवविविधता विकासशील देशों के अधिकार में थी, और ज्यादातर संबंधित प्रौद्योगिकी विकसित देशों के पास थी। यह वार्ता मुख्य तौर से उन देशों के बीच हुई जो अपनी जैवविविधता के प्रबंधन में किसी दूसरे देश का सहयोग लेने के लिए तैयार नहीं थे, या जिन्हें अपनी जैवविविधता के क्षय की चिंता थी या जो जैविक संसाधनों तक अपनी पहुँच बनाए रखने के लिए चिंतित थे।

१९९२ में जैवविविधता कन्वेंशन पारित किया गया जिसका चरित्र अपने-आप में लचीली ढाँचागत संधि का था। सदस्य देशों पर इस संधि के कारण कठोर प्रतिबद्धताएँ आरोपित नहीं होती थीं। मकसद यह था कि यह संधि ज्यादा से ज्यादा देशों को स्वीकार्य होनी चाहिए। नतीजे के तौर पर अमेरिका के अपवाद को छोड़ कर १८८ देश इस संबंध में परस्पर सहयोग की न्यूनतम कसौटियाँ मानने पर सहमति व्यक्त कर चुके हैं। इस तरह इस संधि का चरित्र सार्वभौम बन जाता है।

यह कन्वेंशन जैवविविधता की कानूनी स्थिति स्पष्ट करते हुए सदस्य देशों को अपने-अपने लिहाज से अपने जैव संसाधनों के दोहन का अधिकार देता है, और साथ में शर्त लगाता है कि उनकी संबंधित गतिविधियों से किसी और देश के पर्यावरण को क्षति नहीं पहुँचनी चाहिए। जैवविविधता के धारकों और इस्तेमाल करने वालों के बीच संबंध कायम करते हुए यह कन्वेंशन सभी सदस्य देशों को परस्पर सहयोग करने के लिए कहता है। चूँकि जैवविविधता को यहाँ समग्र मानवता का सरोकार मान लिया गया है, इसलिए इस मसले के सीमित अंतर्राष्ट्रीयकरण की गुंजाइश खुल गई है। लेकिन, वनप्रबंधन का क्षेत्र ऐसा है जिसमें सदस्य देशों पर अन्य देशों के साथ सहयोग की कोई जिम्मेदारी नहीं है।

यह कन्वेंशन भीतरी और बाहरी संरक्षण पर जोर देता है। भीतरी संरक्षण का मतलब है जींस, प्रजातियों और पारिस्थितिकीय प्रणालियों का संरक्षण एवं उसके लिए आचरण संहिताएँ बनाना। बाहरी संरक्षण का मतलब है भीतरी संरक्षण के साथ आनुषंगिक कदमों के रूप में प्राथमिक तौर से उद्गम देश के भीतर ही जीन बैंक बनाना और जीववैज्ञानिक और वनस्पतिवैज्ञानिक उद्यान बनाना। कन्वेंशन के तहत संरक्षण को जानबूझ कर परिभाषित नहीं किया गया है, ताकि विकासशील देशों के लिए अपने संसाधनों का दोहन खुद करने में किसी भी तरह की कठिनाई न हो। कन्वेंशन के अनुसार सदस्य देशों से उम्मीद की जाती है कि वे अपने जैव संसाधनों को टिकाऊ इस्तेमाल और संरक्षण से संबंधित नीतियों को राष्ट्रीय नीति-निर्माण प्रक्रिया का अंग बनाएँगे, एवं पारंपरिक सांस्कृतिक प्रथाओं के अनुसार जैव संसाधनों के इस्तेमाल को प्रोत्साहित करते हुए सरकार और निजी क्षेत्र के बीच टिकाऊ इस्तेमाल के विकास हेतु सहयोग को बढ़ावा देंगे। कन्वेंशन जैव संसाधनों से होने वाले फायदों में हिस्सेदारी की व्यवस्था भी करता है। इसके तहत किसी देश को अपने जैव संसाधनों के इस्तेमाल की इजाजत देने वाले देश लाभों में साझा कर सकते हैं, और इन फायदों को जीवन-रूपों पर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से जोड़ कर भी देखा जा सकता है। २००२ में कुछ ऐसे दिशा-निर्देश बनाए गए जो अपने जैव संसाधनों को दूसरे देश द्वारा इस्तेमाल किए जाने और उसके फायदों के दोनों देशों के बीच बँटवारे को विनियमित करते हैं। इस बारे में एक बाध्यकारी कानून बनाने पर भी विचार किया जा रहा है।

कन्वेंशन का अनुच्छेद ८(जे) पारंपरिक ज्ञान के प्रश्न को जैवविविधता से जोड़ता है, हालाँकि जिस जमाने में यह संधि हुई थी पारंपरिक ज्ञान और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का संबंध अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इतना महत्व प्राप्त नहीं कर पाया था। १९९८ में बनाए गए एक अंतर-सत्रीय कार्यदल ने देशज और स्थानीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण, उस क्षेत्र में आविष्कार और पारंपरिक प्रथाओं को प्रोत्साहित करने के लिए जैवविविधता के टिकाऊ प्रयोग की रोशनी में कानूनी और अन्य सलाह देने की जिम्मेदारी सँभाली। २००४ में इसी कार्यदल को अधिकार दिया गया कि वह बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के संदर्भ में पारंपरिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग को सीमित करने के आर्थिक प्रभाव की जाँच करे।

कन्वेंशन जैवविविधता के संरक्षण और टिकाऊ प्रयोग की रोशनी में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण सुगम बनाने की जरूरत पर जोर देता है। वह मानता है कि इस हस्तांतरण का आधार बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का संरक्षण होना चाहिए। इस दायरे में जेनेटिक इंजीनियरिंग भी आती है। कन्वेंशन विकासशील देशों को वित्तीय बंदोबस्त के तहत संरक्षित प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल की इजाजत भी देता है। इसका अनुच्छेद १६(५) सदस्य देशों को अनुमति देता है कि वे जैवविविधता के संदर्भ में पेटेंट और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का इस्तेमाल इस प्रकार करेंगे कि वह उनके राष्ट्रीय उद्देश्यों और कानूनों के खिलाफ न चला जाए। दरअसल, यह प्रावधान बड़े अहम ढंग से कानूनी जमीन पर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और पर्यावरण संरक्षण को जोड़ देता है। इससे सदस्य देशों पर जिम्मेदारी आती है कि उन्हें अपने पर्यावरण कानूनों को बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के ढाँचे के खिलाफ चले जाने की इजाजत नहीं देनी चाहिए।

हालाँकि जैवविविधता कन्वेंशन मुख्यतः एक पर्यावरणीय संधि है, पर इसका संबंध उत्तरोत्तर कृषि संबंधी जैवविविधता से बढ़ता जा रहा है। समग्र जैवविविधता के एक हिस्से के रूप में कृषि-जैवविविधता का संबंध फसल की किस्मों, मवेशियों की नस्लों, मछली प्रजातियों और जमीन, जंगल, पानी आदि के गैर-घरेलू संसाधनों से है। जहाँ तक फसल विविधता का सवाल है, इसकी प्रजातियों की संख्या कुछ हजार है। हर प्रजाति के भीतर भी काफी विविधता है। दुनिया भर में खाए जाने वाले खाद्यान्न का करीब नब्बे फीसदी लगभग सौ प्रजातियों के तहत आता है। करीब साठ फीसदी कैलरीज और करीब ५६ फीसदी प्रोटीन का स्रोत चावल, गेहूँ और जौ है।

जैसे-जैसे प्राकृतिक संसाधनों के लिए प्रतियोगिता बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे कृषि-जैवविविधता में गिरावट आती जा रही है। बाजार के लिए खेती, मवेशी उत्पादन और औद्योगिक एक्वा-कल्चर के विस्तार के कारण भी यह गिरावट आई है। आज खेती में विविधता कम है, और ग्लोबल बाजार की जरूरतों के हिसाब से समरूपता बढ़ती जा रही है। १९९६ में कन्वेंशन ने कृषि-जैवविविधता से संबंधित कार्यक्रम अंगीकार किया ताकि खेतीबाड़ी के जैवविविधता पर कम से कम नकारात्मक असर पड़े।

जैवविविधता कन्वेंशन के लिए हुई वार्ता का एक वित्तीय पहलू भी है। विकासशील देश बिना वित्तीय फायदों के अपने जैव संसाधन अंतर्राष्ट्रीय इस्तेमाल के लिए खोलने हेतु तैयार नहीं थे। इसी ख्याल से कन्वेंशन में नए और अतिरिक्त वित्तीय संसाधनों का प्रावधान किया गया ताकि विकासशील देश जैवविविधता के संरक्षण और टिकाऊ इस्तेमाल के लिए राष्ट्रीय रणनीतियाँ बना सकें और इस प्रकार कन्वेंशन द्वारा डाले गए दायित्व निभा सकें। दूसरे, कन्वेंशन के अनुसार विकासशील देशों की संबंधित गतिविधियाँ इस बात पर निर्भर होंगी कि विकसित देश वित्तीय संसाधन मुहैया कराने और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की अपनी जिम्मेदारी पूरी कर रहे हैं या नहीं। व्यवहार में विकसित देश ग्लोबल इनवायरनमेंट फेसिलिटी (जीईएफ) के जरिए अपने वित्तीय आश्वासनों को कार्यरूप देते हैं।

भारत में १९८६ का पर्यावरण सुरक्षा कानून जैवविविधता संबंधी सरोकारों का ध्यान रखने की कोशिश करता है। १९९४ में जैवविविधता कन्वेंशन अंगीकार करने के बाद दो कानूनी और नीतिगत पहलकदमियाँ राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग विकसित की गई हैं। २००२ के जैवविविधता कानून के मुताबिक एक राष्ट्रीय जैवविविधता प्राधिकार स्थापित किया गया है, और इसका कामकाज देखने के लिए राज्य स्तर पर प्राधिकार कायम किए गए हैं। जैवविविधता कानून के पीछे एक सरोकार तो जैवचोरी रोकने का था। इसकी दूसरी पृष्ठभूमि टिप्स समझौता हो जाने के बाद पैदा हुए हालात की थी।

यह कानून मुख्यतः जैव संसाधनों के विदेशियों द्वारा इस्तेमाल की समस्या को निगाह में रखते हुए भारतीय प्राकृतिक संसाधनों पर राष्ट्रीय संप्रभुता के उसूल को बल देते हुए उन तक विदेशियों की पहुँच कड़ाई से सीमित करता है। इसकी निगाह में अमीर देशों के विदेशी हों, या गरीब देशों के विदेशी हों, किसी में फर्क नहीं किया गया है। सभी के लिए राष्ट्रीय प्राधिकार से इजाजत लेने का प्रावधान है। भारतीय नागरिक

संबंधित राज्य बोर्ड को सूचित करने के लिए बाध्य हैं कि वे किसी जैव संसाधन का इस्तेमाल करने जा रहे हैं। यह नियम संबंधित क्षेत्र के नागरिकों पर लागू नहीं है। इन नियमों के साथ-साथ लाभों में साझेदारी के लिए भी कुछ नियम बनाए गए हैं। यह कानून सभी आविष्कारकों पर जिम्मेदारी डालता है कि अगर वे भारतीय जैव संसाधनों के आधार पर किए गए किसी आविष्कार का पेटेंट चाहते हैं तो उन्हें राष्ट्रीय प्राधिकार की सहमति लेनी होगी। जाहिर है कि यह नियम केवल भारत में ही लागू किया जा सकता है, न कि विदेशी जमीन पर भी। जैव-चोरी रोकने के लिए प्राधिकार को अधिकार दिया गया है कि वह विदेशों में इस तरह के पेटेंट देने का विरोध करे। लेकिन, इस काम में जितने संसाधनों की दरकार है, उसके कारण यह रणनीति बहुत प्रभावी नहीं बन पाती। इसके अलावा कानून में पेटेंट पर संयुक्त अधिकार का एक नया प्रावधान भी किया है जिसमें आविष्कारक और प्राधिकार या आविष्कारक और उसमें वास्तव में योगदान करने वाला कोई दूसरा पक्ष पेटेंट अधिकारों में भागीदार बन सकता है। लाभों में भागीदारी के सवाल पर प्राधिकार आदेश दे सकता है कि जैवविविधता कोष को धन का भुगतान किया जाना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि लाभों में भागीदारी के दावेदार पेटेंट-अधिकारों से होने वाली आमदनी में अपने आप हिस्सा नहीं बँटा सकते। स्थानीय आविष्कारकों को भी इस मामले में प्राधिकार के फैसले पर निर्भर होना पड़ता है। इस कानून की सबसे बड़ी कमी यह है कि यह स्थानीय और पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के बारे में पहल लेने के बजाय संकोचग्रस्त प्रतीत होता है, और केंद्र सरकार की पहलकदमी पर निर्भर है।

भारत के पर्यावरण और वन मंत्रालय ने राष्ट्रीय जैवविविधता रणनीति और कार्ययोजना (एनबीएसएपी) भी बनाई है जिसका नतीजा स्थानीय स्तर, राज्य स्तर और अंतर्राज्यीय योजनाओं में निकला है। हालाँकि एनबीएसएपी ने जैवविविधता कानून पर कोई खास असर नहीं डाला है, पर यह जरूर है कि कानून के सीमित दायरे के विपरीत रणनीति और कार्ययोजना का दायरा बहुत विस्तृत है। कार्याव्ययन के स्तर पर एनबीएसएपी और अधिनियम के बीच बेहतर संबंध स्थापित करने की संभावनाएँ हैं।

## ब. कृषि

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और कृषि के बीच संबंधों के महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) ने वनस्पति जैव संसाधनों का संरक्षण और इस्तेमाल विनियमित करने के लिए मुख्यतौर से दो कानून अंगीकार किए हैं। इनमें पहला है १९८३ का इंटरनेशनल अंडरटेकिंग ऑन प्लांट जेनेटिक रिसोर्सिज। यह बाध्यकारी नहीं है और यह वनस्पति जैव संसाधनों को विश्व मानवता की थाती मान कर चलता है जिसका सभी को बेरोकटोक इस्तेमाल करने का अधिकार होना चाहिए। इसके दायरे में पारंपरिक खेती करने वाले, वन प्रजातियाँ और प्रयोगशाला में विकसित प्रजातियाँ भी आ जाती हैं। लेकिन, जेनेटिक इंजिनियरिंग में दिलचस्पी रखने वाले कुछ विकसित देशों ने अंडरटेकिंग का यह सूत्रीकरण मानने से इनकार कर दिया। इसके लिए एक सर्वस्वीकार्य वैकल्पिक सूत्रीकरण की जरूरत पड़ी जो १९८९ और १९९१ में एफएओ के प्रस्तावों के रूप में सामने आया। प्रस्ताव ४/८९ ने व्यापारिक उद्देश्यों के लिए प्लांट ब्रीड करने वालों का अधिकार समग्र मानवता की थाती वाले उसूल के खिलाफ मानने से इनकार कर दिया। इसी तरह प्रस्ताव ५/८९ ने किसानों के अधिकारों को अंडरटेकिंग के मुताबिक मान लिया। प्रस्ताव ३/९१ ने प्लांट जेनेटिक संसाधनों पर सरकारों की संप्रभुता को मान्यता दी। कुल मिला कर सबकी थाती के उसूल को न छोड़ते हुए भी उसे काफी सीमित कर दिया गया। इनमें सबसे ज्यादा नई बात किसानों के अधिकारों वाली है, हालाँकि इसका सीधा मुकाबले प्लांट ब्रीडरों के अधिकारों से नहीं किया जा सकता। लेकिन, इससे पहले अंडरटेकिंग के तहत किसान निजी तौर पर या किसान समुदाय अधिकारों के पात्र नहीं थे। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को किसानों के नाम पर ट्यूटी नियुक्त कर दिया गया था। लेकिन, १९९१ में एफएओ काँग्रेस ने प्लांट जेनेटिक संसाधनों के बारे में एक अंतर्राष्ट्रीय कोष का प्रावधान अंडरटेकिंग में शामिल कर दिया ताकि किसान-अधिकारों का कार्याव्ययन हो सके। यह अलग बात है कि यह प्रस्तावित कोष कभी प्रभावी नहीं हो पाया।

जाहिर है कि यह समझौता ज्यादा नहीं टिका, इसलिए एफएओ काँग्रेस ने अंतर्राष्ट्रीय अंडरटेकिंग के जैवविविधता कन्वेंशन के मुताबिक बनाने के लिए वार्ता शुरू करने की अपील की। नवंबर, १९९४ में शुरू हुई यह वार्ता नवंबर, २००१ तक चलती रही। इसका नतीजा इंटरनेशनल ट्रीटी ऑन प्लांट जेनेटिक रिसोर्सिज फार फूड एंड एग्रीकल्चर (पीजीआरएफए संधि) में निकला। इस संधि को अंगीकार करते समय जापान और अमेरिका ने अपने मताधिकारों का प्रयोग नहीं किया, पर बाकी सभी देशों ने इसे माना। इस ट्रीटी ने टिकाऊ कृषि और खाद्य सुरक्षा को प्रोत्साहन देने के मकसद से जैव संसाधनों के संरक्षण, टिकाऊ इस्तेमाल और लाभों में भागीदारी पर जोर दिया। उसने प्लांट जेनेटिक संसाधनों पर संप्रभु अधिकारों को मान्यता देते हुए सदस्य देशों के सामान्य दायित्वों पर रोशनी डाली। हर देश के लिए अपनी सीमा में पड़ने वाले संसाधनों के संरक्षण का इंतजाम करना और टिकाऊ इस्तेमाल प्रोत्साहित करना जरूरी हो गया। ट्रीटी ने इस सिलसिले में कुछ सुझावों की सूची भी बनाई जिन पर अमल करके सदस्य देश अपनी कृषिगत जैवविविधता की रक्षा कर सकते हैं और अपनी विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में प्लांट ब्रीडिंग प्रयास प्रोत्साहित कर सकते हैं।

हालाँकि यह ट्रीटी किसानों के अधिकारों के प्रश्न को अंडरटेकिंग के दायरे के परे ले जाती है, पर यह भी स्पष्ट है कि सदस्य देशों ने वार्ता के दौरान कृषक अधिकारों को ठीक से परिभाषित करने का काम नहीं किया और अनुच्छेद ९ के रूप में एक मोटा-मोटा राजनीतिक वक्तव्य दे कर रह गए। यह धारा किसानों के लिए केवल खेतों में बचाए गए बीजों के विनिमय और बिक्री का अधिकार ही सुनिश्चित करती है, जो मुख्यतः एक बचा-खुचा अधिकार है जिसे किसानों से लिया ही नहीं जा सकता था। ऊपर से इस अधिकार को भी राष्ट्रीय कानून के मातहत कर दिया गया है, जिससे इसके और भी सीमित किए जाने का अंदेशा पैदा हो गया है। अमेरिका का उदाहरण इसका सबूत है। दरअसल, ट्रीटी किसानों के अधिकारों को सुपरिभाषित करने का दायित्व सदस्य देशों पर डालती है।

व्यवहार में इस ट्रीटी का सबसे बड़ा योगदान संसाधनों तक पहुँच बनाने और लाभ में भागीदारी की बहुपक्षीय प्रणाली बनाने का है। यह प्रणाली सभी तरह की फसलों पर लागू न हो कर केवल संलग्नक १ में दर्ज फसलों पर लागू होती है। इसमें चावल, जौ, गेहूँ, कसावा, आलू और केला जैसी महत्त्वपूर्ण पैदावारें भी शामिल हैं। लेकिन, इस संलग्नक की कमी यह है कि इसमें सोयाबीन, मूँगफली, टमाटर, प्याज, कसावा की जंगली प्रजातियाँ शामिल नहीं हैं, पर एस्पैरेगस और स्ट्राबेरी जैसी पैदावारों को शामिल कर लिया गया है। बहुपक्षीय प्रणाली के तहत कृषि संबंधी जैव

संसाधन केवल अनुसंधान, ब्रीडिंग और ट्रेनिंग के लिए दिए जा सकते हैं। यह प्रक्रिया स्टैंडर्ड मेटेरियल ट्रांसफर एग्रीमेंट (एमटीए) के जरिए विनियमित होती है और इसके साथ ही लाभों के भागीदारी के नियम-कायदे भी जुड़े हुए हैं।

इस सिलसिले में सामग्री प्राप्त करने वाले को ऐसे बौद्धिक सम्पदा अधिकार नहीं मिल सकते जिनसे वह सामग्री मूल रूप में दूसरों को मिलना मुश्किल हो जाए। ट्रीटी के मुताबिक प्राप्तकर्ता को वही सामग्री दूसरों को देने की सुविधा भी मुहैया करानी होगी। अमेरिका और जापान ने ट्रीटी के इन पहलुओं का यह कह कर विरोध किया कि इससे आविष्कार करने की प्रक्रिया हतोत्साहित होगी।

साठ के दशक में रोकफेलर और फोर्ड फाउंडेशन द्वारा स्थापित इंटरनेशनल राइस रिसर्च इंस्टीट्यूट (आईआरआर) ने ऊँची पैदावार देने वाले चावल की किस्म कामयाबी से विकसित करके दिखाई। इस सफलता ने कृषि अनुसंधान संबंधी प्रयासों के अंतर्राष्ट्रीय समन्वय की जरूरत पर प्रकाश डाला। नतीजे के तौर पर १९७९ में कंसल्टेटिव ग्रुप ऑन इंटरनेशनल एग्रीकल्चर रिसर्च (सीजीआईएआर) बना जिसने सारी दुनिया में पंद्रह कृषि रिसर्च सेंटरों के बीच समन्वय किया। इसका सचिवालय वाशिंगटन, डीसी में है। एक पब्लिक सेक्टर शोध समन्वय प्रयास के रूप में सीजीआईएआर का बजट केवल तीस करोड़ डालर प्रति वर्ष है, जबकि दुनिया के दस सबसे बड़े बहुराष्ट्रीय जैववैज्ञानिक कारपोरेशन कृषि अनुसंधान और विकास पर हर साल तीन अरब डालर खर्च करते हैं। इन सीमाओं के बावजूद सीजीआईएआर ने कई देशों में खाद्य सुरक्षा मजबूत करने के लिए संबंधित अनुसंधान में अहम योगदान किया है। इसके सेंटरों ने जर्मप्लाज्म संग्रह का अंतर्राष्ट्रीय भूमिका भी निभाई है जिनमें प्रमुख खाद्यान्न फसलों की चालीस फीसदी जेनेटिक विविधता आ जाती है। इस प्रक्रिया में इसके मौजूदा जीन बैंक अनुसंधानकर्ताओं और फसल ब्रीड करने वालों को सूचना के केंद्रीकृत स्रोत बन गए हैं। गरीबी हटाने, खाद्य सुरक्षा उपलब्ध करने और प्राकृतिक संसाधनों के टिकाऊ इस्तेमाल को प्रोत्साहन देने जैसे सरोकारों के साथ सीजीआईएआर अपना काम कृषि अनुसंधान संबंधी ज्ञान और जर्मप्लाज्म के मुक्त प्रवाह पर आधारित करता है। १९८९ के बाद सीजीआईएआर के सेंटरों की कानूनी हैसियत भी साफ हो गई और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से स्थापित हुए जीन बैंक एक ट्रस्ट के तहत सेंटरों के पास रहेंगे। १९९४ के बाद सेंटरों और एफ.ओ.ए के बीच हुए समझौते के तहत ये सेंटर जर्मप्लाज्म पर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का दावा नहीं कर सकते। कानून और नीतिगत ढाँचे का विकास यहीं नहीं रुक गया है। बल्कि, पिछले दशक में इसका रुझान संसाधन और ज्ञान में साझेदारी के मकसद से विकसित हो रहे अंतर्राष्ट्रीय कानून और नीतिगत ढाँचे में हुआ है।

चूँकि जैवविविधता कन्वेंशन और पीजीआरएफए जैविक संसाधनों पर सदस्य देशों के संप्रभु अधिकारों के पक्षधर हैं, इसलिए व्यवहार में हुआ यह है कि नए जर्मप्लाज्म संग्रह का प्रवाह सीजीआईएआर के केंद्रों की तरफ थम गया है। लेकिन, इस समस्या के कारण भी सीजीआईएआर की उपयोगिता कम नहीं हुई है, क्योंकि उसके पास जर्मप्लाज्म का काफी संग्रह हो चुका है जिसका व्यापक इस्तेमाल किया जा रहा है। दूसरे, सीजीआईएआर जेनेटिक इंजीनियरिंग में हुए विकास का इस्तेमाल गरीबों के लिए खाद्य सुरक्षा मुहैया कराने में करना चाहता है। इसके साथ अपने संग्रह में निहित जेनेटिक विविधता कायम रखना सीजीआईएआर के लिए थोड़ा मुश्किल होगा, क्योंकि कुछ फसलों के मामले में दोनों लक्ष्य साथ-साथ वेधना कठिन समझा जाता है। सीजीआईएआर के सामने तीसरी चुनौती कृषि में पेटेंट देने की है। दिक्कत यह है कि सीजीआईएआर का मुख्य लक्ष्य कृषि संसाधनों के निजी या बाजारू इस्तेमाल का है ही नहीं। इसलिए सीजीआईएआर द्वारा एक तरफ तो बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को कुछ परिभाषाओं को खाद्यान्न सुरक्षा के लिए जोखिमभरा माना जाता है, दूसरी तरफ उसने इस संबंध में अपनी स्थिति में परिवर्तन भी किया है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग के कारण सीजीआईएआर के जीन बैंकों का महत्त्व प्राइवेट सेक्टर के लिए बढ़ गया है। सीजीआईएआर को लगता है कि उसके द्वारा मुफ्त दी गई सामग्री से बने उत्पाद बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के जरिए बाजार के लिए हड़पे जा सकते हैं। इस लिहाज से बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के प्रति सीजीआईएआर की प्रतिक्रिया रक्षात्मक है क्योंकि उनकी वजह से उसके सेंटरों की अनुसंधान क्षमताएँ सीमित होने का खतरा पैदा हो गया है। सीजीआईएआर की एक समस्या यह भी है कि वह ट्रस्ट की अवधारणा और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के बीच तालमेल कैसे कायम करे। पेटेंट अधिकार तो ट्रस्ट अवधारणा का ही उल्लंघन कर देते हैं। हाँ, यह जरूर है कि अगर सेंटरों द्वारा बौद्धिक सम्पदा अधिकार लिए जाएँ तो स्थिति में परिवर्तन आ सकता है। इसी ख्याल के तहत १९९९ में सेंटरों में बौद्धिक सम्पदा समीक्षाएँ की गईं, और इस संबंध में एक सलाहकार सेवा भी स्थापित हुई। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के बारे में अब सीजीआईएआर सेंटरों का मुख्य रवैया यह है कि अपनी रिसर्च के नतीजों को बाजार द्वारा हड़पे जाने से बचाने के लिए संरक्षण के अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। इस तरह से उनकी कोशिश होती है कि अनुसंधान के नतीजों तक सबकी पहुँच रहे, पेटेंट के जरिए आगे की जाने वाली रिसर्च में बाधा न पड़े और अनुसंधान के फायदे विकासशील देशों को पहुँचते रहें।

चूँकि बौद्धिक सम्पदा का निर्देशक उसूल संबंधित अधिकारों में इजारेदारी का पहलू कम से कम करना है, इस लिहाज से प्लांट ब्रीडर अधिकार स्वागतयोग्य समझे जाने चाहिए। जर्मप्लाज्म प्राप्त करने वाले प्लांट ब्रीडर अधिकारों के लिए आवेदन कर सकते हैं, बशर्ते मूल सामग्री के किसी दूसरे द्वारा इस्तेमाल में बाधा न पड़े। सीजीआईएआर की दिक्कत यह है कि वह दाता देशों में पेटेंट की गई प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल उन विकासशील देशों में करने के प्रति चिंतित हो सकता है जहाँ वे पेटेंट लागू नहीं हैं। दूसरे, सेंटरों ने कुछ बौद्धिक अधिकार संबंधी नीतियाँ भी विकसित की हैं। आईआरआरआई के उदाहरण से यह बात समझी जा सकती है। खुद को अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का ट्रस्टी समझने वाला आईआरआरआई चावल के जैवसंसाधनों की ब्रीडिंग और संरक्षण के मामले में किसानों और वैज्ञानिकों की भूमिका को मान्यता देते हुए यह भी मानता है कि मौजूद जीन बैंक तीन महाद्वीपों में विभिन्न देशों के बीच सहयोग का नतीजा है। इंस्टीट्यूट यह भी मानता है कि जैवविविधता कन्वेंशन और पीजीआरएफए ट्रीटी द्वारा किए गए संप्रभु अधिकारों के दावे से कृषि संबंधी शोध का पूरा प्रतिमान ही बदल गया है। वह प्लांट जेनेटिक संसाधनों के मुक्त प्रवाह में अपनी भूमिका की पुनः पुष्टि करता है और विकासशील देशों के चावल किसानों की मदद के लिए अतिआधुनिक प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल की इच्छा रखता है। इंस्टीट्यूट निजी क्षेत्र की भूमिका की अहमियत समझता है और उसे यह एहसास भी है कि नई प्रौद्योगिकियाँ बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के जरिए संरक्षित होंगी।

उसूलन आईआरआरआई की सभी अनुसंधान उपलब्धियाँ मुक्त रूप से सभी के लिए उपलब्ध हैं। यह जरूर है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का सम्मान करने के लिए इंस्टीट्यूट अपवाद स्वरूप कुछ प्रौद्योगिकियों के लिए इस तरह के संरक्षण के लिए प्रतिबद्ध है। इसके लिए वह पहले संसाधनों के उद्गम देश से सम्पर्क और विचार-विमर्श करता है। कुल मिला कर यह नीति विपरीत उद्देश्यों के लिए काम कर रही प्रणालियों का

समेकन करने की कोशिश करती है, और इंस्टीट्यूट के सीमित दायरे में यह प्रयास सफल भी कहा जाएगा। लेकिन, इसमें विवादास्पद घटनाएँ भी होती रहती हैं, जिसका एक उदाहरण चावल की बैक्टीरियल बीमारी का मुकाबला करने वाली एक जंगली किस्म के विकास से जुड़ा है। ओरिजा लॉजिस्टेमिनाटा नामक यह किस्म माली में पाई जाती है जिसे भारतीय शोधकर्ता ने खोजा था और फिर यह इंस्टीट्यूट के पास आई। इसके बाद हुई रिसर्च में इसकी खेती करने लायक किस्में बनीं। वैज्ञानिकों ने पाया कि एक्सए२१ नामक सिंगल लोकस की वजह से इस चावल में यह बीमारीरोधी खूबी पाई जाती है। इसके बाद इस लोकस पर कार्नेल और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में शोध पूरा किया गया और १९९५ में अमेरिका में पेटेंट के लिए अर्जी लगाई गई जिसके नतीजे के तौर पर १९९९ में पेटेंट मिल गया।

यह पेटेंट जैवविविधता कन्वेंशन और सेंट्रों द्वारा अपनायी जाने वाली बौद्धिक सम्पदा नीतियों के कारण विवादास्पद हो गया। इसके कारण इंस्टीट्यूट के अनुसंधान प्रयास व्यर्थ हो गए और पेटेंट एक ऐसे देश में दिया गया जहाँ चावल की खेती उस बीमारी से पीड़ित नहीं थी। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय ने इस समस्या को आंशिक रूप से समझा और अव्यावसायिक अनुसंधानकर्ताओं और इंस्टीट्यूट को जीन का इस्तेमाल करके नई किस्में विकसित करने की इजाजत देने का फैसला किया। एक जेनेटिक संसाधन मान्यता कोष बनाया गया ताकि जैवसंसाधन के उद्गम देश (इस मामले में माली) को किसी न किसी रूप में मुआवजा मिल सके।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के क्षेत्र में हुए हाल के परिवर्तनों से सीजीआईएआर का कामकाज और प्रभावित होने वाला है। भविष्य में सेंट्रों को हिदायतें देने का काम ट्रीटी की संचालक संस्था करेगी। एफएओ के साथ संधि पर दस्तखत करने वाले सेंट्रों को संचालक संस्था से समझौता करने के लिए निर्मित किया गया है। अब इन सेंट्रों पर सामग्री उपलब्ध कराने वाले देशों को प्राथमिकता देने की जिम्मेदारी डाली जाएगी। उद्गम देश के लिए किसी सामग्री हस्तांतरण समझौते की जरूरत भी नहीं पड़ेगी। कुल मिला कर पीजीआरएफए ट्रीटी एफएओ और सीजीआईएआर के बीच समन्वय का काम सुगम बनाएगी।

## संबंधित मुद्दे

### ४ विभेदकारी बरताव से एकपक्षीय उपायों की ओर

बौद्धिक सम्पदा संरक्षण संबंधी कानूनी ढाँचे के उत्तरोत्तर अंतर्राष्ट्रीयकरण के कारण विकासशील देशों द्वारा यह संरक्षण अपनाने की गुंजाइशें और भी कम होती जा रही हैं। इससे इस कानूनी ढाँचे की निष्पक्षता पर सवालिया निशान लग जाता है। बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के न्यूनतम मानकों का असर विकसित देशों पर अलग तरह का और विकासशील देशों पर अलग होता है। प्रौद्योगिकीय विकास के संदर्भ में अगर इस कानून द्वारा किए गए विभेदकारी बरताव पर गौर किया जाए तो हालात और स्पष्ट हो सकते हैं।

अमीर-गरीब (नार्थ-साउथ) देशों के संबंधों की रोशनी में यह देखना कठिन नहीं रह गया है कि अमेरिका अन्य विकसित देशों के साथ एकपक्षीय और द्विपक्षीय उपाय अपना कर विकासशील देशों को मजबूर कर रहा है कि वे न केवल ट्रिप्स समझौते के बुनियादी दायित्व मानें, बल्कि उसमें निहित लचीलेपन का फायदा उठाने की कोशिश न करें, और कुछ मामलों में ट्रिप्स के भी परे जा कर बौद्धिक सम्पदा संरक्षण से प्रतिबद्धता घोषित करें।

### अ. विभेदकारी बरताव और बौद्धिक सम्पदा का टिकाऊ संरक्षण

दुनिया भर में सदियों से देशों के बीच के संबंधों और अंतर्राष्ट्रीय आधुनिक कानून का आधार राष्ट्रीय संप्रभुता रही है। लेकिन, इसके बावजूद व्यवहार में बड़ी ताकतों और छोटे देशों के बीच के संबंध समान नहीं हैं। कानून की निगाह में समता की हकीकत अधिकांशतः काल्पनिक ही है। समय के साथ-साथ सभी पर समान रूप से लागू होने वाले अंतर्राष्ट्रीय कानून में अपवाद विकसित होते गए हैं। विभेदकारी बरताव का मतलब ही यही है कि आर्थिक विकास के स्तर में फर्क और किसी समस्या से निबटने की क्षमता के नाम पर कानून किसी देश को ज्यादा प्राथमिकता देता है।

समझने की बात यह है कि विभेदकारी बरताव लाजमी तौर से विकसित देशों के पक्ष में ही नहीं होता। वह विकासशील और अत्यल्प-विकसित देशों के हितों के लिए भी होता है। अंतर्राष्ट्रीय ट्राॅपिकल टिम्बर एग्रीमेंट इसका सबूत है जिसमें उपभोक्ताओं और उत्पादक देशों के बीच पहले तो समान संख्या में वोटों का आबंटन किया गया, और फिर उष्णकटिबंधीय वन संसाधनों में हिस्सेदारी के बिना पर उत्पादक देशों को कुछ और वोट आबंटित किए गए।

कौन देश कितनी जिम्मेदारी लेता है, और कार्यान्वयन के स्तर पर कितने आगे तक जाने का दावा करता है, इस आधार पर भी विभेदकारी बरताव होता है। इसका उदाहरण प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और आर्थिक सहायता से संबंधित प्रकरणों में देखा जा सकता है। आम तौर पर होता यह है कि विभेदकारी बरताव का फायदा विकासशील और बेहद गरीब देशों के समूह को दिया जाता है, पर चूँकि उनके बीच भी विकास के मामले में समता नहीं होती, इसलिए जरूरत यह पड़ती है कि हर देश के लिए उसकी परिस्थितियों के हिसाब से विकल्प देने की कोशिश की जाए।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कानून में गैट के एक प्रावधान के तहत पसंदीदा राष्ट्र (मोस्ट फेवर्ड नेशन) का दर्जा दिया जाता है। यह विभेदकारी बरताव का एक उदाहरण है। उपनिवेशवाद की पराजय के बाद से ही भिन्न आर्थिक, राजनीतिक और फौजी स्तर पर खड़े देश अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के सदस्य बन गए हैं जिसके कारण कानून की निगाह में सबकी बराबरी का उसूल लागू करना मुश्किल हो गया है। नवस्वाधीन देशों की माँग रही है कि उपनिवेशवाद द्वारा उनके ऊपर थोपी गई आर्थिक जड़ता तोड़ने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा भी कुछ किया जाना चाहिए। नतीजे के



तौर पर पचास से सत्तर के दशक तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कानून के मंच पर विभेदकारी नीतियों के ऊपर बहस चलती रही। परिणामस्वरूप पचास के दशक के मध्य में गैट के अनुच्छेद XVIII में संशोधन करके विकासशील देशों को कुछ दायित्वों से मुक्त किया गया। दस साल बाद उन्हें दी गई छूटें बढ़ाई गईं। सत्तर के दशक तक अंतर्राष्ट्रीय कानून में हुए सीमित संशोधनों से असंतुष्ट हो कर विकासशील देशों ने आक्रामक रवैया अपनाया और नए अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक बंदोबस्त (एनआईईओ) की माँग की। नतीजे के तौर पर संयुक्त राष्ट्र महासभा के कई प्रस्तावों के जरिए कानून में परिवर्तन की नीतियाँ सामने आईं जिनका मुख्य मकसद विकासशील देशों के लिए समतामूलक न्याय मुहैया कराना था ताकि वे आर्थिक विकास की डगर पर चल सकें। इसने सरकारों की आर्थिक भूमिका को निजी क्षेत्र के विदेशी निवेशकों के मुकाबले मजबूत किया, और अर्थव्यवस्था के प्रबंधन में सरकारें काफी ज्यादा हस्तक्षेप करने लगीं।

लेकिन, इसका एक दूसरा पक्ष भी था। व्यवहार में स्थिति यह बनी कि विकसित देशों ने एनआईईओ के बुनियादी उसूलों को नहीं माना। सत्तर और अस्सी के विश्व आर्थिक संकट, कई विकासशील देशों को पीड़ित करने वाले कर्ज के संकट और नब्बे के दशक में लागू किए गए नव-उदारतावादी अर्थक-राजनीतिक एजेंडे ने इन उसूलों की हवा पूरी तरह से निकाल दी। माहौल इतना बदल गया कि संयुक्त राष्ट्र महासभा तक ने गरीब देशों पर ही यह जिम्मेदारी डाल दी कि वे राष्ट्रीय स्तर पर अपनी समष्टिगत अर्थनीतियों में सुधार का जिम्मा खुद उठाएँ।

विभेदकारी बरताव का दूसरा उदाहरण डब्ल्यूटीओ में देखा जा सकता है। हालाँकि उरुग्वे चक्र यह सोच कर शुरू किया गया था कि विभेदकारी बरताव का गरीब देशों के कोई खास फायदा नहीं मिला है, इसलिए इस वार्ता के नतीजे के तौर पर हुई संधियों में सबके ऊपर एक ही नियम लागू किया जाएगा। लेकिन, इस संकल्प के बावजूद इस वार्ता चक्र के कारण गठित किए गए डब्ल्यूटीओ से विभेदकारी बरताव पूरी तरह खत्म नहीं हुआ। सबसे पहले तो विकासशील देशों को उनकी प्रतिबद्धताओं के कार्यान्वयन के लिए अपेक्षाकृत ज्यादा समय दिया गया। व्यवहार में भी देखा गया कि कुछ मसलों पर प्रतिबद्धताओं के कार्यान्वयन की समय सीमा में फर्क है। उरुग्वे चक्र की संधियों ने जनरलाइज्ड सिस्टम ऑव प्रिफरेंस (जीएसपी) जैसी गैट के जमाने में प्रचलित विभेदकारी योजनाओं को भी स्वीकार किया। जीएसपी की एक मुख्य सीमा यह है कि दी जाने वाली प्राथमिकता एकपक्षीय उपाय के रूप में सामने आती है जिसे दाता देश अपनी मर्जी से कभी भी वापस ले सकता है। इस सिलसिले में भारत और यूरोपियन समुदायों के बीच विवाद भी हो चुका है। यूरोपियन समुदायों ने प्राथमिकता की एक सामान्य स्कीम और चार विशेष व्यवस्थाएँ लागू की थीं। भारत की शिकायत यह थी कि उसे सामान्य स्कीम का तो लाभ मिल रहा है, पर श्रम अधिकारों, पर्यावरण और औषधि संबंधी संरक्षण योजनाओं का फायदा नहीं मिल रहा है। बाद में श्रम अधिकारों और पर्यावरण संबंधी संरक्षण की शिकायत वापस ले ली गई। इस विवाद से संबंधित पैनल रपट ने जाँच में पाया कि सदस्य देश विकासशील देशों के बीच प्राथमिकता के मामले में विभेद खत्म करने का इरादा रखते हैं, इसलिए प्राथमिकता दाता देश को जीएसपी के लाभ बिना किसी विभेद के सभी विकासशील देशों को देने चाहिए। लेकिन पैनल ने यह भी संकेत दिया कि सभी विकासशील देशों को प्राथमिकता देने का मतलब सभी को समान किस्म की प्राथमिकता देना नहीं है। वह किसी देश की जरूरतों का ख्याल करके, उसके विकास, वित्तीय या व्यापार संबंधी स्थिति का ख्याल करके इस तरह प्राथमिकता दे सकता है कि अन्य देशों पर उसका अनवाश्यक बोझ न पड़े। इसका मतलब यह हुआ कि दाता देश प्राथमिकता का आधार तय करने में पूरी स्वतंत्रता चाहते हैं, और प्राथमिकता पाने वाले देश मौजूदा स्कीमों का पूरा लाभ उठाने की इच्छा रखते हैं। यह परस्पर विपरीत दावेदारी जीएसपी से संबंधित मामलों में विवाद निपटान संस्था के लिए एक तरह की समस्या है।

हालाँकि विभेदकारी बरताव घटता जा रहा है, पर इसमें भी कोई शक नहीं कि इसके जरिए डब्ल्यूटीओ के सदस्य देशों के बीच की मौजूदा विषमताएँ दुरुस्त करने का मौका मिल सकता है। विभेदकारी बरताव को कारगर न बताने वाले अमीर देशों के तर्क को गरीब देश मानने के लिए तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं कि निर्यात संवर्धन न हो पाने का दोष विभेदकारी बरताव का नाकामी पर नहीं डाला जाना चाहिए, क्योंकि असली समस्या तो सप्लाई-साइड से संबंधित सीमाओं पर टिकी है। ट्रिप्स समझौते जैसी संधियों के संदर्भ में विभेदकारी बरताव को लेकर उत्तर और दक्षिण के देशों के बीच तीखे मतभेद हैं, इसीलिए दोहा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में विभेदकारी नीतियों को और मजबूत करने, सटीक, प्रभावी और कारगर बनाने के जोर के साथ चर्चा करने का फैसला लिया गया। लेकिन, ट्रेड और डिवेलपमेंट कमेटी ने जिस तरह यह चर्चा चलाई उससे देर-दार और बढ़ी। विकासशील देशों के बीच व्यापार वार्ताओं के केंद्रीय पहलुओं के प्रति तलखी बढ़ती चली गई।

जहाँ तक बौद्धिक सम्पदा अधिकार बंदोबस्तों का सवाल है, उनके भीतर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विभेदकारी पहलू रहे हैं। इन्हीं की वजह से पेरिस कन्वेंशन के तहत इटली, जापान और स्विटजरलैंड जैसे देशों ने सत्तर के दशक में केवल मेडिकल उत्पादों को ही पेटेंटों के तहत आने दिया। लेकिन, ट्रिप्स समझौता न्यूनतम मानकों के संदर्भ में कुछ लचीलेपन का फायदा तो देता है, पर विभेदकारी बरताव का बहुत ही कम। उसके लिए विभेदकारी नीतियाँ लचीलेपन के कार्यान्वयन तक ही सीमित हैं। विकसित, विकासशील और अत्यल्प-विकसित देशों को इन मानकों के कार्यान्वयन की अलग-अलग समय सीमा मिली हुई है। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के बारे में भी अनुच्छेद ३० और ३१ के संदर्भ में यह लचीलापन उपलब्ध है। हाँ, यह जरूर है कि सुई जेनरिस विकल्प देने वाले अनुच्छेद २७(३)बी को एक विभेदकारी प्रावधान के रूप में जरूर देखा जा सकता है। इसके मुताबिक विकासशील देश अपनी वनस्पति-किस्मों के संरक्षण के लिए अपनी प्रणाली चुन सकते हैं। इस मामले में विकासशील देशों को यूरोपियन देशों का भी समर्थन प्राप्त है, यद्यपि इस अनुच्छेद में विकासशील देशों का विशेष रूप से उल्लेख नहीं है।

टिकाऊ विकास कानून के परिप्रेक्ष्य में विभेदकारी बरताव का विकास समझने के लिए जरूरी है कि इसे कम उद्योगीकृत और उष्णकटिबंधीय देशों द्वारा अधिकतर जैवविविधता का स्वामी होने की हकीकत की रोशनी में देखा जाए। अब उद्योगीकरण के कारण इन देशों के सामने अपनी जैव सम्पदा खोने का खतरा पैदा हो गया है। दूसरी तरफ पर्यावरण संरक्षण की समस्या है जिससे इस समय विकसित देश ज्यादा परेशान हैं, जबकि विकासशील देशों को ये समस्याएँ भविष्य में परेशान करेंगी। चूँकि पर्यावरण से लिहाज से उचित प्रौद्योगिकियाँ केवल विकसित देशों में ही विकसित हुई हैं, इसलिए भी ये देश विकासशील देशों के प्रति विभेदकारी बरताव अपनाते हैं। यह कई तरीके से किया जाता है। मसलन, एक कमजोर किस्म का विभेदीकरण यह है कि प्रतिबद्धताओं को सभी देश लागू करें पर केवल उसी हद तक जहाँ तक अलग-अलग देशों के लिए संभव हो। यह उदाहरण अनुच्छेद ३(डी) में दर्ज डेजर्टीफिकेशन कन्वेंशन के संदर्भ में देखा जा सकता है। विभेदीकरण का बाकायदा उदाहरण कुछ देशों के समूहों के लिए भिन्न-भिन्न प्रतिबद्धताएँ तय करने में देखा जा सकता है। मसलन, जलवायु परिवर्तन के मामले में विकसित देशों की प्रतिबद्धताएँ अलग तरह की हैं। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे विकासशील देशों को प्रौद्योगिकी भी देंगे, और साथ में

उनकी संबंधित वित्तीय जरूरतों की तरफ भी ध्यान देंगे। कुछ मामलों में तो विकासशील देशों द्वारा अपनी प्रतिबद्धताओं के कार्यान्वयन की शर्त ही विकसित देशों द्वारा अपने आर्थिक सहायता और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण से संबंधित वायदे पूरे करने की बना दी गई है।

यह भी समझा गया है कि विभेदीकरण से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिबद्धताओं का अधिक व्यापक कार्यान्वयन सुनिश्चित किया जा सकता है। विकासशील देशों को आर्थिक सहायता प्रदान करके उन्हें संधियों को अंगीकार करने और उनके कार्यान्वयन के लिए प्रोत्साहित करना इसका एक प्रचलित तरीका है। यह एक तरह का सौदा है जिसका फायदा कुल मिला कर विकसित देशों को ही हुआ है, क्योंकि इससे विकासशील देश कई तरह की समस्याओं के निबटारे के लिए दूसरे देशों से सहयोग करने हेतु मजबूर हुए हैं। इसका उदाहरण ओजोन परत के बारे में हुए मांट्रियल प्रोटोकॉल के रूप में देखा जा सकता है जिसके कार्यान्वयन के लिए जरूरी था कि विकसित देश वित्तीय मदद देते। ओजोन परत की समस्या भी उन्हीं की कारिस्तानियों की देन थी और उन्हें ही यह सुनिश्चित करना था कि विकासशील देश ऐसे पदार्थ न बनाएँ जिनसे ओजोन की ओर कमी हो, लेकिन विकासशील देशों की प्राथमिकता में इस समस्या का स्थान नहीं था। उनकी भागीदारी के लिए उन्हें आर्थिक मदद का प्रोत्साहन देना जरूरी था। विकासशील देशों से जलवायु परिवर्तन कन्वेंशन द्वारा आरोपित कर्तव्यों का पालन करवाने के लिए जरूरी वित्तीय सहायता का बंदोबस्त करने हेतु एक ग्लोबल एनवायरनमेंट फेसिलिटी (जीईएफ) बनाई गई है।

अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के संचालन में भी विभेदकारी नीतियों का इस्तेमाल किया जाता है। वैसे तो सभी जगह एक देश-एक वोट का उसूल चलता है, पर कुछ संस्थाओं के लिए विभेदकारी वोटिंग संरचनाएँ लागू की गई हैं। जैसे जीईएफ को कौंसिल में विकासशील देशों के १६, विकसित देशों के १४ और पूर्वी यूरोपीय देशों के २ प्रतिनिधियों को शामिल किया गया है। कोशिश यह की जाती है कि फैसले आम सहमति से हों, पर अगर वोटिंग की जरूरत पड़ी तो साठ फीदसी बहुमत का उसूल रखा गया है। ज्यादातर कोष विकसित देशों से ही आता है, इसके बावजूद कोशिश यही रहती है कि सभी फैसले दाता देशों के बहुमत और पाने वाले देशों के बहुमत से हों। जबकि, विश्व बैंक में दाता देशों के वोट अधिक होते हैं, क्योंकि उनका आर्थिक योगदान अधिक होता है।

टिकाऊ विकास संधियों के संदर्भ में समान लेकिन विभेदकारी दायित्व का सिद्धांत अपनाया जाता है। विकासशील देशों की जिम्मेदारियाँ विकसित देशों के मुकाबले कम होती हैं। पर्यावरण के क्षय में विकासशील देशों की भूमिका भी कहीं कम है। यह तो विकसित देशों के समाज की कारिस्तानी ज्यादा है। पर्यावरण और विकास संबंधी रियो उद्घोषणा ने भी इसी विभेदकारी रवैये की पुष्टि की है।

मान लेकिन विभेदकारी दायित्व का सिद्धांत पर्यावरण के मुद्दे तक ही नहीं रुकता, बल्कि विस्तारित हो कर आर्थिक दायरे तक पहुँचता है। जलवायु परिवर्तन और उद्योगीकरण के बीच संबंध में इसका उदाहरण देखा जा सकता है। चूँकि ग्रीन हाउस प्रभाव विकसित देशों की देन है, इसलिए उनसे उम्मीद की जाती है कि वे विकासशील देशों को इस प्रभाव के विपरीत नीतियाँ अपनाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए वित्तीय मदद देंगे। इसी तरह अगर विकासशील देश क्योटो प्रोटोकॉल के तहत गैसों की उत्सर्जन संबंधी वचनबद्धता नहीं मानते, तो इसका कारण यह है कि इस समस्या में उनका योगदान न के बराबर ही है। जहाँ तक बौद्धिक सम्पदा का सवाल है, विकासशील देशों ने प्रौद्योगिकी के मामले में देर से शुरुआत की है। इसलिए पेटेंट संबंधी न्यूनतम मानक लागू करने में उन्हें विकसित देशों के मुकाबले घाटा है। जब तक पेटेंट प्रणाली संबंधी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था समान क्षमता के देशों के बीच लागू नहीं होती तब तक उसका प्रभावी होना मुश्किल है। टिप्स समझौते का अनुच्छेद ७ बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और प्रौद्योगिकीय विकास के बीच सीधा संबंध मानता है, पर उसमें विकासशील देशों या अत्यल्प-विकसित देशों की विशेष स्थिति का जिक्र नहीं है। भविष्य में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के सिलसिले में विभेदकारी नीतियों को ठोस रूप से लागू होना जरूरी है। जीईएफ की ही तरह एक ग्लोबल प्लॉट एंड टेक्नोलॉजी फेसिलिटी की भी आवश्यकता है। विकसित, विकासशील और अत्यल्प-विकसित देशों के बीच प्रौद्योगिकी के स्वामित्व संबंधी असंतुलन को ठीक करने के लिए विशेष पहलकदमी की जरूरत से इनकार नहीं किया जा सकता। कई अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के मामले में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कदम उठाए हैं, पर इसके लिए अधिक सुव्यवस्थित और सैद्धांतिक प्रयास की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

## ब. एकपक्षीय उपाय और द्विपक्षीय संधियाँ

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में गहरी दिलचस्पी रखने वाले अमीर देशों ने टिप्स जैसी बहुपक्षीय संधियों से होने वाले लाभों से परे जाने के लिए कुछ समांतर प्रयास भी किए हैं। ये आनुषंगिक कोशिशें एकपक्षीय उपायों और द्विपक्षीय संधियों के रूप में सामने आई हैं। अमेरिका इस मोर्चे पर सबसे ज्यादा सक्रिय रहा है।

अंतर्राष्ट्रीय कानून किसी देश द्वारा की गई ऐसी किसी एकतरफा कार्रवाई को अच्छी निगाह से नहीं देखता जो दूसरे किसी देश के हितों के लिए नुकसानदेह हो। लेकिन, अस्सी के दशक में जब अमेरिकी कारपोरेट हितों ने देखा कि डब्ल्यूआईपीओ स्तर पर कई देशों से बहुपक्षीय प्रतिबद्धताओं का पालन कराना कठिन हो रहा है, तो उन्होंने अमेरिकी सरकार पर दबाव बढ़ाना शुरू किया। नतीजे के तौर पर बौद्धिक सम्पदा की चोरी (पायरेसी) रोकने के लिए १९८४ में ट्रेड एंड टैरिफ एक्ट पारित किया गया। इस कानून के तहत बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का सम्मान न करने वाला रवैया अन्यायपूर्ण करार दे दिया गया। इसी के जरिए अमेरिका ने विकासशील देशों में किसी देश को प्राथमिकता वाले देश का दर्जा देने की अपनी कसौटियों भी बदल लीं, और जनरल सिस्टम ऑव प्रिफरेंस (जीएसपी) में तब्दीली कर दी। इसके अनुसार अमेरिका ऐसे देशों को प्राथमिकता वाला देश कहने में दिलचस्पी दिखाने लगा जो विदेशियों को पेटेंट अधिकार देते हों और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का सम्मान करते हों। इस उपाय की कामयाबी के परिणामस्वरूप १९८८ में ओमनीबस ट्रेड एंड कम्पटीटिव एक्ट बना, और ऐसे कई उपाय अपनाए गए जिनसे अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि (यूएसटीआर) की अहमियत बढ़ गई। तथाकथित छप्शल ३०१८ के माध्यम से यूएसटीआर तय करने लगा कि कौन-कौन सा देश बौद्धिक सम्पदा से संबंधित उसकी कसौटियों पर खरा नहीं उतरता। ऐसे लाइलाज देशों को प्राथमिकता वाला विदेशी देश डकार दिया जाने लगा। अपनी रपट में यूएसटीआर देशों को घ्वाच लिस्टड पर डालता है। अधिक गंभीर समस्याओं वाले देशों को घिप्रयोरिटी वाच लिस्टड पर रखा जाता है। जाँच-पड़ताल की जाती है, और वार्ता करके सुनिश्चित किया जाता है कि वह देश अमेरिकी कसौटियों पर खरा न उतरने वाला कानून बदल दे। स्पेशल ३०१ का सहारा लेकर अमेरिका ने अर्जेंटीना, ब्राजील, चीन, दक्षिण कोरिया,



थाईलैंड और ताइवान पर दबाव डाला कि वे उरुग्वे वार्ता चक्र में बौद्धिक सम्पदा अधिकार का एजेंडा शामिल करने पर राजी हो जाएं। भारत पर भी काफी दबाव डाला गया, लेकिन चूँकि अमेरिका की तसल्ली के मुताबिक कानूनों में परिवर्तन नहीं किया गया और मॉडिकल पेटेंट व्यवस्था नहीं बदली गई, इसलिए अमेरिका ने भारत से कई प्राथमिकता वाली विशेष सुविधाएँ वापस ले कर उसे करीब ६ करोड़ डालर के निर्यात राजस्व का नुकसान बर्दाश्त करने पर मजबूर कर दिया। कुल मिला कर स्पेशल ३०१ के कारण ट्रिप्स समझौते के न्यूनतम बौद्धिक सम्पदा मानक मानने के लिए उन देशों को कामयाबी से मजबूर किया गया जो काफी मजबूती से उनका विरोध कर रहे थे। इन देशों को लगा कि अगर वे ये मानक मान लेंगे तो एकपक्षीय दबाव से बच कर बहुपक्षीय बंदोबस्त में जाना मुमकिन होगा। लेकिन उनका यह अंदाजा सही नहीं निकला। ट्रिप्स समझौते के बाद भी स्पेशल ३०१ खत्म नहीं किया गया। उसे और मजबूत कर दिया गया। अब इसके जरिए अमेरिका न केवल ट्रिप्स के न्यूनतम मानक मनवाता है, बल्कि दूसरे देशों पर द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझौतों के मुताबिक बौद्धिक सम्पदा संबंधी नीतियाँ बनाने का दबाव भी डालता है। इनमें नई और उदीयमान प्रौद्योगिकियों का दायरा भी आता है। समय के साथ-साथ स्पेशल ३०१ की रपटें और भी विस्तृत होती जा रही हैं। २००४ में तो उसमें ८४ देशों की नीतियों का विश्लेषण किया गया था। इस रपट में उक्रेन को प्राथमिकता वाला विदेशी देश घोषित किया गया था, १५ देश प्रियोरिटी वाच लिस्ट पर, और ३४ देश वाच लिस्ट पर थे।

स्पेशल ३०१ के पीछे आधारभूत मान्यता यह है कि प्रत्येक देश घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी नीतियों के कार्यान्वयन के लिए स्वतंत्र है। लेकिन, उपरोक्त विश्लेषण बताता है कि अमेरिका ने इसका इस्तेमाल केवल अपने व्यापारिक हितों के साधन के लिए किया है। ट्रिप्स समझौते की भावना के तहत इस रवैये को वाजिब नहीं ठहराया जा सकता। डब्ल्यूटीओ विवाद निबटान बंदोबस्त में कई देशों ने इस अमेरिकी रवैये के खिलाफ शिकायतें दर्ज की हैं। उरुग्वे चक्र के पहले मछली मारने के मुद्दे पर मैक्सिको ने अमेरिका पर मुकद्दमा किया था जिसमें जीत उसी की हुई। पाया गया कि कुछ खास तरह की मछलियों के आयात पर अमेरिका द्वारा लगाया गया प्रतिबंध उचित नहीं है। इसी तरह कछुओं की प्रजाति बचाने के नाम पर अमेरिका द्वारा कुछ देशों से झींगा आयात करने पर लगाया गया प्रतिबंध भी अनुचित माना गया। इस तरह के कुछ धक्कों के बावजूद एकपक्षीय उपायों का इस्तेमाल प्रभावशाली ढंग से किया जाना जारी है। अमेरिकी गतिविधियों को दी गई चुनौतियों पर हुए फैसलों से यह भी निकल कर आया है कि उसके प्रयास उसूलन डब्ल्यूटीओ के बहुपक्षीय अनुशासन के खिलाफ नहीं जाते।

यहाँ समझने की बात यह है कि स्पेशल ३०१ बौद्धिक सम्पदा अधिकार मानकों को अपने-आप में मजबूत नहीं करता। यह काम पिछले दशक में बहुपक्षीय संधियों के जरिए किया गया है। इसकी गुंजाइशें ट्रिप्स-प्लस के प्रावधान से खुली हैं जिनके तहत डब्ल्यूटीओ के सदस्य देश न्यूनतम मानकों से अधिक बौद्धिक सम्पदा संरक्षण अपना सकते हैं। यह काम द्विपक्षीय संधियों के जरिए किया जा सकता है। पिछले बीस साल में ये संधियाँ द्विपक्षीय निवेश और मुक्त व्यापार समझौतों के रूप में भी हुई हैं। इनमें अक्सर बौद्धिक सम्पदा अधिकार संबंधी प्रावधान निवेश की परिभाषा के तहत जोड़ दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए अमेरिका के जोर्डन और लाओस के साथ हुए व्यापार समझौते देखे जा सकते हैं।

जोर्डन के साथ हुए समझौते में ट्रिप्स समझौते का २७(१) शब्दशः जुड़ा हुआ है। इसके अलावा २७(२) और २७(३)ए के अपवाद भी शामिल हैं। लेकिन, जोर्डन फ्री ट्रेड एग्रीमेंट ट्रिप्स के कुछ प्रावधान अनुच्छेद २७(३)बी के तहत मिलने वाली गुंजाइशों और लचीलेपन से जोर्डन को वंचित कर देते हैं। यह संधि जोर्डन को ट्रिप्स समझौते के तहत की अन्य सुविधाएँ भी नहीं मिलने देती।

लाओस, जो एक अत्यल्प-विकसित देश है जिसका प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पाद ३०४ डालर है और जिसकी अर्थव्यवस्था मुख्यतः खेतिहर किस्म की है, के साथ हुआ द्विपक्षीय समझौता भी इस सिलसिले में ध्यान देने योग्य है। हालाँकि लाओस डब्ल्यूटीओ का सदस्य नहीं है, पर इस द्विपक्षीय समझौते के तहत वह ट्रिप्स से न्यूनतम बौद्धिक सम्पदा संरक्षण मानकों के तहत आ जाता है। इसके तहत लाओस को वचन देना पड़ा है कि वह प्रौद्योगिकी के सभी क्षेत्रों में पेटेंट देने के लिए तैयार रहेगा। उसे ट्रिप्स के तहत मुद्देया कराए गए अपवाद भी नसीब नहीं हैं। वनस्पति प्रजातियों के संबंध में यह समझौता लाओस पर यूपीओवी कन्वेंशन जैसे प्रावधान लाद देता है जो ट्रिप्स से भी कड़े हैं। कम से कम दस साल के बजाय लाओस को अपनी वचनबद्धताएँ लागू करने के लिए केवल इक्कीस महीने का समय ही मिला हुआ है। डब्ल्यूटीओ जनरल कौंसिल ने तो अत्यल्प-विकसित देशों के लिए कार्यान्वयन की समय सीमा २०१६ तक बढ़ा दी है, पर द्विपक्षीय समझौते के तहत लाओस इसका लाभ उठाने की स्थिति में नहीं है।

अमेरिका ही नहीं, बल्कि यूरोपियन संघ ने भी विकासशील देशों के साथ ऐसे द्विपक्षीय समझौते किए हैं जिससे गरीब देशों को ट्रिप्स के परे जा कर ज्यादा ऊँचे स्तर के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का कार्यान्वयन करना पड़ रहा है। यूरोपियन फ्री ट्रेड एग्रीमेंट (ईएफटीए) जैसे छोटे संगठनों ने भी कुछ विकासशील देशों के साथ द्विपक्षीय समझौते किए हैं, जिनका रवैया वैसे तो आम तौर से अमेरिका द्वारा किए गए समझौतों जैसा ही है, पर सिंगापुर जैसे मजबूत देशों और जोर्डन जैसे आर्थिक रूप से कमजोर देश के साथ हुए समझौतों के बीच फर्क देखा जा सकता है। जो रियायतें जोर्डन नहीं ले पाता, वे सिंगापुर को देनी पड़ती हैं। कुल मिला कर स्थिति यह है कि डब्ल्यूटीओ के सदस्य देशों के संदर्भ में द्विपक्षीय समझौते महत्वपूर्ण भी हैं, और नुकसानदेह भी, क्योंकि इनके कारण विकासशील देश ट्रिप्स के तहत मिलने वाली गुंजाइशों और लचीलेपन का भी पूरा फायदा नहीं उठा पाते।

## स. संधियों के बीच रिश्ते

विभिन्न देश अपने-अपने तरीके से द्विपक्षीय, क्षेत्रीय और बहुपक्षीय संधियाँ करते रहते हैं। इस सिलसिले में उनसे उम्मीद की जाती है कि वे किसी एक संधि को किसी दूसरी संधि पर प्राथमिकता नहीं देंगे, और सभी का कार्यान्वयन करने की कोशिश करेंगे ताकि वे अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं का उल्लंघन न हो सके। विभिन्न देशों को पहली दिक्कत का तो सामना यह करना पड़ता है कि अंतर्राष्ट्रीय कानून मोटे तौर से एक-दूसरे से स्वतंत्र क्षेत्रों से मिल कर बनता है। कई संबंधित संस्थाएँ संयुक्त राष्ट्र से संबंधित हैं, और साथ में अपने आप में स्वतंत्र भी हैं। जहाँ तक डब्ल्यूटीओ का सवाल है, उसका संयुक्त राष्ट्र के साथ केवल एक क्षीण सा संबंध है, क्योंकि यह संगठन विश्व संस्था की विशेषज्ञ एजेंसी भी नहीं है। कुल मिला कर स्थिति यह है कि हर देश अपनी-अपनी व्याख्याओं के अनुसार विभिन्न संधियों का कार्यान्वयन करने के लिए

स्वतंत्र है। अंतर्राष्ट्रीय कानून मुख्यतः सहमतमूलक आधार पर बना है। वह कार्यान्वयन के संबंध में किसी देश के लिए बाध्यकारी नहीं है। वह देशों से उम्मीद करता है कि वे संधियों की वचबद्धताएँ लागू करते हुए दूसरे देशों से अपने टकराव न्यूनतम करने की कोशिश करेंगे।

लेकिन, कभी-कभी विभिन्न संधियों के मानक एक-दूसरे के साथ समायोजित नहीं भी हो पाते। ऐसे में रिवाजी कानूनों की जरूरत पड़ती है। संधियों के कानून के संबंध में पारित वियना कन्वेंशन ऐसी परिस्थितियों में रिवाजी कानूनों की व्याख्या करने की संहिता मुहैया कराता है। एक रिवाजी कानून यह है कि नई संधि पुरानी संधि के ऊपर प्राथमिकता प्राप्त करेगी। पर, बौद्धिक सम्पदा अधिकार और टिकाऊ विकास कानून के संदर्भ में यह रिवाज लागू करना इसलिए कठिन है कि इस क्षेत्र में लगातार विकसित हो रही संधियाँ तारीख के हिसाब से आगे-पीछे न हो कर समय के समांतर चलती हैं। इस संबंध में सबसे महत्वपूर्ण उसूल यह माना जाता है कि विशिष्ट नियम को सामान्य नियम पर प्राथमिकता दी जाएगी। लेकिन, कभी-कभी व्यापार संबंधी दायित्वों और पर्यावरण संबंधी दायित्वों में होने वाले टकराव के संदर्भ में ऐसे उसूल भी कारगर साबित नहीं होते। जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गानिज्म से जुड़े अमेरिका और युरोपीय संघ बीच विवाद में ऐसा हो चुका है। दरअसल, कुछ मानते हैं कि पर्यावरण को प्राथमिकता मिलनी चाहिए क्योंकि संरक्षण तो उसी का करना है, पर कुछ का कहना होता है कि प्राथमिकता व्यापार को मिलनी चाहिए, क्योंकि विवाद तो व्यापार से ही संबंधित होता है।

इसी तरह के टकराव से बचने के लिए पीजीआरएफए ट्रीटी और बायोसेफ्टी प्रोटोकॉल जैसी संधियों ने अन्य संधियों से अपने संबंधों की व्याख्या के लिए अपनी भूमिकाओं में बचाव की धाराएँ जोड़ दी हैं। इनका तात्पर्य यह है कि नई संधियों का नुकसानदेह असर डब्ल्यूटीओ के तहत वचनबद्धताओं पर नहीं पड़ना चाहिए, और डब्ल्यूटीओ के नियम-कानूनों से नई संधि को किसी भी तरह प्रभावित नहीं होना चाहिए। बचाव धाराओं का होना इस बात का सबूत है कि टिकाऊ विकास संधियों का डब्ल्यूटीओ समझौते से टकराव हो सकता है। लेकिन, ये धाराएँ भी टकराव की सूरत में प्राथमिकता के प्रश्न को पूरी तरह हल नहीं करतीं, और ज्यादा से ज्यादा यह कहती हैं कि डब्ल्यूटीओ के साथ विवाद होने की शकल में टिकाऊ विकास संधियों को पूरी तरह दरकिनार नहीं किया जा सकता। हालाँकि, अभी तक कोई वास्तविक विवाद पैदा नहीं हुआ है, पर बायोटेक उत्पादों को मंजूरी पर लगी समय सीमा पर विचाराधीन पड़े हुए विवाद पर हुए फैसले से शायद इस सिलसिले में स्थिति स्पष्ट हो सके, और डब्ल्यूटीओ के परिप्रेक्ष्य में ही सही, पर बायोसेफ्टी प्रोटोकॉल और डब्ल्यूटीओ समझौतों के बीच का संबंध स्पष्ट हो सके।

ट्रिप्स समझौते और टिकाऊ विकास संधियों के बीच के संबंध का प्रश्न भी काफी-कुछ ऐसा ही है। लेकिन, मानवाधिकार और पर्यावरण संधियों के पहलुओं पर अलग से गौर करने की जरूरत है। पहली बात तो यह है कि स्वास्थ्य और औषधियों के संबंध में ट्रिप्स पूरी तरह मानवाधिकारों से जुड़ा हुआ है। दूसरी बात यह है कि विकासशील देशों में जीवन रूपों को पेटेंट करने और वनस्पति प्रजातियों को पेटेंट करने के संदर्भ में ट्रिप्स का सीधा संबंध कृषि और जैवविविधता प्रबंधन से है। जैवविविधता कन्वेंशन और जीवन रूपों के पेटेंट के बीच के संबंध का विवाद नीदरलैंड्स द्वारा उठाया गया था। उसकी माँग थी कि जैवप्रौद्योगिकी आविष्कारों के कानूनी संरक्षण से संबंधित हिदायत खत्म की जानी चाहिए। नीदरलैंड्स की अपील ठुकारते हुए यूरोपियन न्यायालय ने जो फैसला किया वह इस धारणा पर आधारित था कि बौद्धिक सम्पदा अधिकार को अंतर्राष्ट्रीय कानून के दायरे से अलग रखा जाना चाहिए। जैवविविधता कन्वेंशन के नजरिए से अगर इस मामले पर निगाह डाली जाए तो यह तर्क वाजिब लगता है कि उसमें पर्यावरण संबंधी प्रावधान खास तौर से जुड़े हुए हैं, जबकि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण का मुद्दा आंशिक तौर पर ही सामने आता है। ट्रिप्स और कन्वेंशन के रवैये में एक फर्क यह भी है कि कन्वेंशन जैवविविधता प्रबंधन और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के बीच संबंधों की कम से कम एक आंशिक समझ तो प्रदान करता है।

अंतर्राष्ट्रीय कानून संधियों के बीच टकराव की समस्या से निबटने का एक और तरीका सुझाता है। वैसे तो संधियों के बीच कोई कोटिक्रम नहीं होना चाहिए, पर संयुक्त राष्ट्र चार्टर का दावा है कि उसे किसी भी ट्रीटी के ऊपर प्राथमिकता मिलनी चाहिए। दूसरे, कानून में एक प्रिम्पटी नार्म की व्यवस्था भी है जिन्हें सदस्य देश न बदल सकते हैं, और न ही खारिज कर सकते हैं। यह व्यवस्था सीमित कोटिक्रम की तरफ इशारा करती है। इस तरह के बंदोबस्त मानवाधिकारों के संबंध में काम आ सकते हैं।

## ५ पहुँच और लाभ में साझेदारी का सवाल

पहुँच का सवाल जेनेटिक इंजीनियरिंग के क्षेत्र में बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के प्रश्नों से जुड़ा हुआ है। सवाल यह है कि किसी उत्पाद या प्रक्रिया में इस्तेमाल किए गए जेनेटिक संसाधनों और संबंधित ज्ञान तक पहुँच कैसे परिभाषित की जाए। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह प्रश्न मुख्यतः अमीर-गरीब देशों के आपसी संबंधों का है, और राष्ट्रीय स्तर पर इसका संबंध व्यक्तियों और समुदायों के जेनेटिक संसाधनों और ज्ञान पर अधिकारों या उनकी अनुपस्थिति से जुड़ा हुआ है। कुल मिला कर कानूनी लिहाज से यह एक पेचीदा मुद्दा है। चूँकि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का मौजूदा कानूनी ढाँचा किसान ब्रीडर या पारंपरिक ज्ञानधारक का वजूद नहीं स्वीकारता, इसलिए अक्सर यह माँग की जाती रही है कि इन लोगों के योगदान के बदले कुछ मुआवजे की व्यवस्था अवश्य की जानी चाहिए ताकि वे भी लाभों में कुछ साझेदारी कर सकें।

हालाँकि पहुँच और लाभों में साझेदारी का सीधा रिश्ता बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से है, पर इस बारे में ज्यादातर बहस टिकाऊ विकास के संदर्भ में हुई है। इस अध्याय में इस सवाल पर दोनों ही नजरियों से गौर किया गया है।

### अ. जेनेटिक संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान तक पहुँच

इस मुद्दे के मुख्यतः दो पहलू हैं। राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार जेनेटिक संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान तक उसे इस्तेमाल करने वालों की पहुँच कैसे हो, और सीमाओं के भीतर यानी घरेलू पैमाने पर पारंपरिक ज्ञानधारकों के ज्ञान का प्रयोग कैसे किया जाए। २००२ का जैवविविधता कानून पहुँच पर सरकारों के नियंत्रण और व्यक्तियों व समुदायों के नियंत्रण में फर्क करता है। लाभों में साझेदारी तय करने की कसौटी संरक्षित उत्पाद या प्रक्रिया में प्रयुक्त ज्ञान या संसाधनों का उद्गम है। वैसे पहुँच के सवाल की अहमियत लाभों में साझेदारी के प्रश्न से स्वतंत्र भी है।

इसका ताल्लुक राज्यों की संप्रभुता से है और यह न केवल लाभों में साझेदारी का ढाँचा तय करती है, वरन जैव संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान पर नियंत्रण और अधिकारों से भी इसका संबंध है।

जैवविविधता कन्वेंशन और पीजीआरएफए ट्रीटी के तहत सरकारों को अपने जैव संसाधनों और वनस्पति जेनेटिक संसाधनों पर संप्रभु अधिकार तो हैं, पर वे ऐसा कोई कानूनी ढाँचा नहीं बना सकते जो उनके सभी राष्ट्रीय संसाधनों तक दूसरों की पहुँच नामुमकिन बना दे। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने राज्यों पर जिम्मेदारी डाली है कि वे संप्रभुता के बजाय विनिमय को आधार बनाते हुए यह पहुँच सुगम बनाएँगे, क्योंकि उनके बीच बहुत ऊँचे स्तर की परस्पर निर्भरता भी है। संसाधनों पर बाहरी नियंत्रण (एक्स सिटू) और उन्हें यथावत धारण करने (इन सिटू) के मामले में पहुँच अलग-अलग तरह की हाती है। एक्स सिटू के हालात में केवल पहुँच के नियमों का सूत्रीकरण करना होता है। जबकि, इन सिटू के हालात के लिए सभी संबंधित गतिविधियाँ घ्यायोप्रोस्पेक्टिंग के तहत आती हैं।

पहुँच की प्रक्रिया विनियमित करने में सबसे बड़ी दिक्कत तो यह आती है कि संसाधनों का उद्गम एक न हो कर कई होते हैं, और उन पर नियंत्रण किसी एक की ही हो सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर एक प्राधिकार होने के कारण यह स्थिति अपेक्षाकृत कम पेचीदा होती है, क्योंकि वह प्राधिकार संसाधनों पर नियंत्रण के विभिन्न दावेदारों के बीच फैसला कर सकता है। सन् २००० के ट्रेडीशनल नॉल्लिज (प्रिजर्वेशन एंड प्रोटेक्शन) बिल के अध्याय १० में दिए गए विश्लेषण से समझा जा सकता है कि अगर एक जर्मप्लाज्म या किसी पारंपरिक ज्ञान के कई दावेदार हैं, तो उससे निबटने का संस्थागत ढाँचा क्या हो सकता है। जबकि, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ही सामग्री का दावेदार दो देशों के होने पर काफी मुश्किल होती है। उद्गम वाले देश का उसूल यहाँ लागू करना कठिन होता है। समय के साथ-साथ कई प्रजातियों का दुनिया के विभिन्न भागों में आदान-प्रदान होता रहा है। किसी घरेलू प्रजाति के विकास में किसी एक देश के योगदान को आधार बनाया जा सकता है, लेकिन इसके बाद भी दूसरे देशों द्वारा भी उसके दावे की गुंजाइश खत्म नहीं हो जाती।

बायोप्रोस्पेक्टिंग कोई नई परिघटना नहीं है। कई दशकों से यह जारी है और इसके व्यापारिक लाभ खासे उल्लेखनीय हैं। विकसित देशों की औषधियों का एक बड़ा हिस्सा सारी दुनिया से जमा किए गए प्राकृतिक उत्पादों से बना है। १९९३ के बाद इसमें नई बात यह हुई है कि सरकारें जैविक और जेनेटिक संसाधनों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण की दावेदारी करने लगी हैं। देखा गया है कि बायोप्रोस्पेक्टर्स जेनेटिक संसाधनों तक पहुँचने में ज्यादा दिलचस्पी दिखाते हैं, न कि संबंधित पारंपरिक ज्ञान में। दवा उद्योग एक्टिव कम्पाउंड खोजने के बाद आगे शोध के लिए ऐसे ज्ञान को इस्तेमाल करने में दिलचस्पी रखता है, जबकि बीज उद्योग पारंपरिक ज्ञान का सीधा इस्तेमाल करने के बजाय दूसरे संगठनों से प्राप्त जर्मप्लाज्म में उसका समावेश करने के चक्कर में रहता है।

पहुँच संबंधी कानून अगर कड़े होंगे तो संसाधनों के स्थानांतरण पर सरकार का अच्छा नियंत्रण होगा, पर साथ में बायोप्रोस्पेक्टर्स हतोत्साहित भी होंगे। कड़े कानूनों से ज्ञान और संसाधन धारकों के अधिकार भी संरक्षित किए जा सकते हैं। इसके उलट कानून अगर उदार होंगे तो बायोप्रोस्पेक्टर्स की दिलचस्पी बढ़ेगी, संबंधित देश को आर्थिक फायदा होगा, पर मूल धारकों का नियंत्रण कमजोर होगा और जैव विविधता संरक्षण पर नकारात्मक असर पड़ सकता है। व्यावहारिक स्थिति यह है कि पहुँच पूर्वसूचित सहमति के आधार पर हुए सामग्री स्थानांतरण समझौते के जरिए मिलती है।

पूर्वसूचित सहमति असल में संप्रभुता के उसूल और पहुँच सुगम बनाने की व्यावहारिकता के बीच सूत्र का काम करती है। इस संबंध में अबाध्यकारी किस्म के निर्देश हैं जिन्हें बॉन गाइडलाइंस के नाम से जाना जाता है। इन गाइडलाइंस का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय प्रोत्साहित करना है। इसके लिए जरूरी यह है कि संसाधनों के इस्तेमाल के खास उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए आपसी राजामंदी के साथ पूर्वसूचित सहमति खासी पहले ले ली जाए ताकि अपने संसाधनों तक पहुँच की इजाजत देने वालों और लेने वालों के लिए वह अर्थवान साबित हो सके, और दोनों ही पक्ष एक-दूसरे पर अपना हित न थोप सकें। यह सहमति संबंधित राष्ट्रीय प्राधिकार से ली जाएगी, और उसका सारा बंदोबस्त राष्ट्रीय स्तर पर और राष्ट्रीय सरकार के विवेकाधीन होगा। गाइडलाइंस के अनुसार संबंधित पारंपरिक ज्ञान के इस्तेमाल के लिए पूर्वसूचित सहमति अलग से लेनी होगी। कुल मिला कर स्थिति यह है कि कई देशों ने बॉन गाइडलाइंस के प्रावधानों को अपने देश के कानूनों में अभी तक जगह नहीं दी है। कुछ देशों ने पूर्वसूचित सहमति की अपनी-अपनी प्रणालियाँ विकसित कर ली हैं जो बॉन गाइडलाइंस के परे जाती हैं।

भारत में राष्ट्रीय और प्रांतस्तरीय प्राधिकार पहुँच के बारे में फैसला लेने से पहले स्थानीय जैवविविधता कमेटियों से मशिवरा लेते हैं। पेरू में पूर्वसूचना सहमति का मतलब होता है सामूहिक ज्ञान के धारक देशज लोगों के प्रतिनिधि संगठनों को दिया गया अधिकारपत्र। कुछ देशों में सरकार और ज्ञानधारक आपस में मिल जाते हैं। मसलन, दक्षिण अफ्रीका में राष्ट्रीय प्राधिकार संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान तक पहुँच की इजाजत तभी देता है जब सभी सहभागियों के हितों की सुरक्षा सुनिश्चित हो जाए। दोनों पक्षों के बीच विषमता भी हो सकती है, इसलिए राष्ट्रीय प्राधिकार वार्ता के दौरान और सामग्री स्थानांतरण समझौते और लाभ में साझेदारी के सवाल पर हस्तक्षेप भी कर सकता है। फिलीपींस ने भी दक्षिण अफ्रीका जैसा ही बंदोबस्त अंगीकार किया है, हालाँकि उसकी सीमा केवल देशज सांस्कृतिक समुदाय की जमीन पर प्रोस्पेक्टिंग तक ही है। फिलीपींस के इस बंदोबस्त की खास बात यह है कि अगर पहुँच बिना पूर्वसूचित सहमति के या रिवाजी कानून का उल्लंघन करके प्राप्त की गई है, तो देशज समुदाय अपनी बौद्धिक सम्पदा वापस लेने का दावा कर सकते हैं।

सामान्यतः पहुँच की इजाजत देने से इनकार करने का प्रावधान पूर्वसूचित सहमति का अंग नहीं है। कुछ देशों ने सरकार और देशज समुदायों को पहुँच का विरोध करने के अधिकार की मान्यता जरूर दे रखी है। मसलन, कोस्टारिका में सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक या अन्य नजरियों से पहुँच का विरोध किया जा सकता है। कुछ देशों में, मसलन वेनेजुएला में जैविक संसाधनों तक पहुँच के नियमों का पालन न करने पर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को मान्यता नहीं है। पूर्वसूचित सहमति प्रणाली का दोष यह है कि इसका जोर मुख्यतः संसाधन और ज्ञानधारकों के व्यापारिक फायदे पर रहता है, जबकि कई मामलों में देशज समुदायों का नजरिया सांस्कृतिक और धार्मिक भी होता है जिसके तहत वे व्यापारिक नजरिए की परवाह नहीं करते। गैरव्यापारिक दृष्टिकोण से दी गई सीमित पहुँच की इजाजत इस लिहाज से कहीं व्यापक और पूरे समुदाय के ज्यादा बड़े हित में हो सकती है।

## ब. लाभों में साझेदारी

यह धारणा इस लिहाज से विकसित की गई है कि संसाधन और ज्ञान धारक अपनी बौद्धिक सम्पदा का प्रतिबंधित नहीं कर सकते, बल्कि उन्हें उस पर केवल शर्तें लगाने का अधिकार है। इसके पीछे यह मान्यता भी है कि कभी-कभी पारंपरिक ज्ञान के धारक उस सूरत में भी बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रणाली से लाभान्वित नहीं हो पाते जब उनका ज्ञान संबंधित उत्पाद या प्रक्रिया का आधार होता है।

पारंपरिक ज्ञानधारकों और पेटेंटधारकों के बीच तुलना करने से यह स्थिति और स्पष्ट हो सकती है। पेटेंटधारक बाजार या किसी भी क्षेत्र में अपने अधिकारों का मनचाहा इस्तेमाल कर सकता है और दूसरों को अपने स्वार्थों के अनुसार अपने उत्पाद या प्रक्रिया या ज्ञान का इस्तेमाल करने से रोक सकता है। पर, पारंपरिक ज्ञानधारक को ऐसे अधिकार नहीं होते। हम देख चुके हैं कि कुछ देशों में ज्ञानधारकों से पूर्वसूचित सहमति लेना एक कानूनी आवश्यकता है। इस लिहाज से वहाँ ज्ञानधारक पहुँच को नियंत्रित कर सकते हैं। पर, कानून ऐसी कोई गुंजाइश नहीं देता कि पूर्वसूचित सहमति देने के बाद ज्ञानधारक किसी भी तरह से पहुँच पर नियंत्रण कर पाएगा। इसी की भरपाई करने के तंत्र के रूप में लाभों में साझेदारी का प्रावधान निकाला गया है।

इसे दो परिप्रेक्ष्यों में समझा जा सकता है। जैवविविधता कन्वेंशन से पहले होने वाली अधिकतर बायोप्रोस्पेक्टिंग किसी कानून के तहत नहीं आती थी। ज्यादा से ज्यादा द्विपक्षीय करार हो जाता था, पर बहुत से मामलों में ऐसे करार की स्थिति भी नहीं आ पाती थी। नब्बे के दशक के बाद लाभों में साझेदारी के संस्थागत बंदोबस्त से कम से कम ज्ञानधारकों को व्यापारिक फायदे में कुछ हिस्सा देने की व्यवस्था तो हुई ही है। इसके अलावा, लाभों में साझेदारी को जीवन रूपों के पेटेंट और भौतिक संसाधनों व पारंपरिक ज्ञान के निजी और संप्रभु नियमन के संदर्भ में भी देखा जा सकता है। १९७० के पेटेंट एक्ट के तहत यह सब संभव ही नहीं था क्योंकि खाद्य अथवा स्वास्थ्य के दायरे में आने वाली चीजों पर पेटेंट नहीं दिया जा सकता था। आज बहुत से उत्पाद, प्रक्रियाएँ और ज्ञान के रूप पेटेंटपात्रता की श्रेणी में आते हैं। लेकिन, यह विकास चूँकि पारंपरिक ज्ञान के संदर्भ में नहीं हुआ है, इसलिए लाभों में साझेदारी के बंदोबस्त को यह मान कर आलोचना का शिकार होना पड़ता है इनके कारण इस क्षेत्र में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की नामौजूदगी को संस्थागत रूप मिल जाता है। इसलिए इस प्रणाली के कुछ विकल्प भी तजवीज किए जाते रहे हैं जिनके बारे में हमने अध्याय दस में चर्चा की है।

लाभों में साझेदारी एक ऐसा औजार है जिसे विकसित और विकासशील देशों ने आंशिक रूप से अलग-अलग नजरियों के तहत स्वीकार किया है। बड़े-बड़े जेनेटिक इंजीनियरिंग उद्योगों वाले देशों को लाभों में साझेदारी की प्रणाली जैवविविधता कन्वेंशन से पहले के दिनों के मुकाबिल प्रतिबंधात्मक लगती है। पहले उन्हें पहुँच और मुआवजे के तौर-तरीके अपनाने की ज्यादा आजादी थी। लेकिन, यह भी सही है कि लाभों में साझेदारी की प्रणाली के कारण ही विकासशील देश पहुँच सुगम कराने के प्रावधानों पर रजामंद हुए हैं। लाभों में साझेदारी की प्रणाली के कारण उद्गम वाले राष्ट्रों की सरकारों को अन्य देशों की सरकारों और ज्ञानधारकों के प्रति अधिक अधिकार मिलने की संभावनाएँ खुली हैं। राज्य की संस्था अब संसाधनों के प्रबंधन और बदले में मिलने वाले मुआवजे का कहीं बेहतर इंतजाम कर सकती है। इसकी तुलना में सुई जेनेरिस बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रणाली मूल ज्ञानधारकों को ज्यादा और सरकारों को कम अधिकार देती है।

लाभों में साझेदारी के साथ जुड़ी सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि इस प्रणाली को राष्ट्रीय स्तर पर कल्पित करना कठिन है। इसके लिए या तो अंतर्राष्ट्रीय कानून के ढाँचे की शरण लेनी पड़ती है या फिर इसे देशों के बीच समन्वय के जरिए हासिल करना पड़ता है। उद्गम देश द्वारा पहुँच के मुकाम पर कदम उठाने के बावजूद अक्सर यह समझना मुश्किल रहता है कि संसाधनों का असली इस्तेमाल क्या किया जाएगा, और उससे क्या फायदा होगा। ऊपर से अगर लाभों में साझेदारी पेटेंटपात्रता के लिए शर्त नहीं बनाई गई तो ऐसी किसी भी व्यवस्था को लागू करना और भी कठिन हो जाता है।

पारंपरिक ज्ञान के लिए बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का सुई जेनेरिस रूप लागू करने पर लाभों में साझेदारी की प्रणाली कारगर नहीं रह जाती। हम देख चुके हैं कि बौद्धिक सम्पदा अधिकार देने के विकल्प के रूप में ही लाभों में साझेदारी की प्रणाली विकसित हुई है। इसलिए इस प्रणाली की व्यावहारिकता पर भी विचार करना जरूरी है।

जैवविविधता कन्वेंशन के मुताबिक मुआवजा जेनेटिक संसाधनों के किसी भी तरह के इस्तेमाल के बदले दिया जाना चाहिए। यह नियम जैवसंसाधनों और पारंपरिक ज्ञान का प्रयोग करने वालों को बहुत भारी लगता है, क्योंकि इसके कारण इन संसाधनों का प्रयोग करके होने वाली बुनियादी रिसर्च भी मुफ्त नहीं रह जाती। दूसरा नियम यह है कि लाभों में साझेदारी वाजिब और न्यायपूर्ण होनी चाहिए। इसका व्यावहारिक रूप आर्थिक मुआवजा ही समझा जाता है। इस तरह लाभों में साझेदारी केवल आर्थिक रह जाती है। फिर चाहे वह एक बार में किया गया भुगतान हो, या फिर नियमित रूप से किए जाने वाले वित्तीय विनिमय हों। इससे यह भी गारंटी नहीं होती कि अगर लाभों में साझेदारी के दावेदार समूह के रूप में हैं, तो यह वित्तीय लाभ उन तक पहुँच भी रहा है या नहीं। वित्तीय मुआवजे को ऐसे लक्ष्यों के लिए भी आर्बंटित कर दिया जाता है, जो दावेदारों के लिए किसी काम के नहीं हो सकते हैं। जहाँ दावेदार स्पष्ट रूप से पहचाने नहीं जा सकते, वहाँ राज्यों को वित्तीय लाभ पर प्राधिकार मिल जाता है। फिर, उन लाभों का वितरण अपने तरीके से करता है।

वित्तीय लाभों के अलावा शोध के परिणामों में साझेदारी भी एक विकल्प है। इसका मतलब होता है उद्गम देश के वैज्ञानिकों और ज्ञानधारकों द्वारा वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास कार्यक्रमों में सहयोग और साझेदारी। व्यापारिक नजरिए से इसमें संसाधनों के आधार पर विकसित प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण की संभावना रहती है। स्थानीय लोगों को प्रशिक्षण मिल सकता है, और संस्थागत संबंध बनने के कारण उद्गम देश के संस्थानों को अपनी शोध आगे बढ़ाने का मौका मिलता है। कुछ मामलों में यह भी प्रस्तावित किया गया है कि ऐसे मामलों में पेटेंट दिए जाने पर ज्ञानधारकों को भी उसका संयुक्त स्वामी बनाया जाए। ऐसा होने की सूरत में लाभों में साझेदारी का सूत्र बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रणाली से हो जाता है। हालाँकि यह प्रस्ताव २००२ के जैवविविधता एक्ट में शामिल है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि अन्य देश इसे लागू करेंगे।

कोई अंतर्राष्ट्रीय कानूनी ढाँचा न होने के कारण फिलहाल लाभों में साझेदारी प्रणाली दाता और प्रयोक्ता के बीच परस्पर सहमति आधारित शर्तों पर निर्भर है। दाता और प्रयोक्ता अपने-अपने देश के कानून के हिसाब से चलते हैं, और दोनों का परस्पर तालमेल होना जरूरी होता है।

इस समय कई विकासशील देशों ने लाभों में साझेदारी संबंधित कानूनी ढाँचा विकसित किया है, पर विकसित देशों ने इस दिशा में दिलचस्पी कुछ कम ही दिखाई है।

हालाँकि जैवविविधता कन्वेंशन को अंगीकार हुए दस साल से भी ज्यादा का समय बीत चुका है, पर लाभों में साझेदारी बंदोबस्त के वास्तविक उदाहरण बहुत कम ही दिखाई पड़े हैं। भारत में इस तरह का केवल एक मामला हुआ है। १९८७ से पहले दुनिया को नहीं पता था कि केरल में तिरुवनंतपुरम और तमिलनाडु के एक हिस्से के लोग आरोग्यप्लव नामक वनस्पति का थकान दूर करने के लिए इस्तेमाल करते हैं। ट्रॉपिकल बोटैनिक गार्डन एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट (टीबीजीआरआई) के जैववैज्ञानिकों को इस इलाके में बायोप्रोस्पेक्टिंग करते हुए एक बात से बड़ी हैरानी हुई कि उनकी स्थानीय गाइड कभी थकान ही नहीं महसूस करता है। इसके बाद उन्होंने स्थानीय कानी लोगों को बहला-फुसला कर इस वनस्पति का रहस्य जान लिया। जाहिर है कि ये लोग यह पौधा खोजने नहीं आए थे, पर फिर भी स्थानीय ज्ञान का बाहरी लोगों को हस्तांतरण हो गया। फिर इंस्टीट्यूट ने रिसर्च करके जीवनी नामक थकान-रोधी दवा बना डाली और उसे बनाने के अधिकार एक निर्माता को सात साल के दस लाख रुपए में दे दिए। दवा की बिक्री पर दस साल के लिए दो फीसदी की रॉयल्टी भी तय हुई। सात साल बाद लाइसेंस एक साल के लिए बढ़ा दिया गया। १९९५ में इंस्टीट्यूट ने तय किया कि एक निजी कंपनी को लाइसेंस देने के बदले मिले शुल्क और रॉयल्टी का पचास फीसदी कानी समुदाय को मिलेगा। यह पैसा कानी समुदाय क्षेम ट्रस्ट को गया जिसने इस सावधि जमा में रखा और सिर्फ ब्याज का इस्तेमाल किया। यह ट्रस्ट कानी समुदाय के ज्ञान का दस्तावेजीकरण करता है और जैविक संसाधनों के संरक्षण और टिकाऊ इस्तेमाल के लिए काम करता है। लाभों में साझेदारी के इस उदाहरण का व्यापक स्वागत किया गया। इस लाभांश से कानी समुदाय की जीवन-शैली और बाहरी जगत से उनकी अन्योन्यक्रिया में नाटकीय तब्दीली आई। लेकिन, लाभों में साझेदारी के इस मॉडल की आलोचनाएँ भी हुईं। समुदाय के जिन लोगों ने बाहरी लोगों को इस ज्ञान का रहस्य बताया, उन्हें विशेष आर्थिक फायदा हुआ। पर, इस जनजातीय ज्ञान को बाहर ले जाने का फैसला पूरे समुदाय का नहीं था। कुछ थोड़े से लोगों ने अनौपचारिक रूप से यह ज्ञान बाहरी लोगों को अपने स्तर पर बता दिया। इसमें न तो स्थानीय रिवाजी कानून का ध्यान रखा गया, और न ही राष्ट्रीय स्तर के किसी कानूनी ढाँचे ने इस प्रक्रिया को विनियमित किया। न ही पूर्वसूचित सहमति जैसी किसी शर्त का पालन हो पाया। मुआवजे के रूप में धन देने का एक नकारात्मक पहलू यह भी था कि कानी समुदाय मौद्रिक अर्थव्यवस्था के पूरी तरह अंग नहीं हैं। दूसरे, जीवनी जैसी दवा बनाने के लिए आरोग्यप्लव की पत्तियों को उसी इलाके से जमा किया जाना जरूरी था। यानी कानी समुदाय से ही दवा के लिए कच्चा माल जमा होना था। इसके बावजूद जब पेटेंट की अर्जी लगाई गई तो न तो उसमें कानी समुदाय के लोगों का जिक्र था और न ही उस समुदाय के सूचनाकारों का उल्लेख था जिन्होंने अपना ज्ञान बाहर वालों के साथ बाँटा था।

लाभों में साझेदारी की प्रणाली की शर्तें अक्सर ज्ञान प्राप्त करने वाले बाहरी लोगों द्वारा ही तय होती हैं। केरल में अनुसूचित जनजातियों के विकास और शोध प्रशिक्षण का संस्थान अगर चाहता तो कानी समुदाय के लोगों को अपनी शर्तों पर व्यापक समाज के साथ अन्योन्यक्रिया करने के लिए प्रोत्साहित करता ताकि वे अपने पारंपरिक ज्ञान का समाज के साथ साझा कर पाते। तब उनके ज्ञान का दोहन केवल दूसरी औषध प्रणालियों के लिए ही न होता।

कुल मिला कर यह भारतीय उदाहरण लाभों में साझेदारी की प्रणाली का कोई आदर्श उदाहरण नहीं समझा जाना चाहिए। इसमें धन के बदले मान लिया गया है कि कोई भी बाहर का व्यक्ति आ कर पारंपरिक ज्ञान का दोहन कर सकता है। बजाय इसके जोर स्थानीय समुदाय की पूर्वसूचित सहमति पर उसके मुताबिक पहुँच के बारे में फैसला करने के लोकतांत्रिक तरीकों पर होना चाहिए था। अगर लाभों में साझेदारी की प्रणाली केवल आर्थिक मुआवजे तक ही सीमित रही तो पारंपरिक ज्ञान के धारक उसे उत्तरोत्तर अपने लिए नुकसानदेह मानने की नौबत तक पहुँच जाएँगे।

## स. पहुँच और लाभों में साझेदारी के कानून

इस संबंध में प्राथमिक संधि जैवविविधता कन्वेंशन है। जहाँ तक कानून का सवाल है, इस संबंध में केवल एकमात्र बाध्यकारी कानून पीजीआरएफए ट्रीटी है जिसके नियम संधि के संलग्नक १ में दर्ज फसलों पर लागू होते हैं। हालाँकि इन नियमों की व्यवहार में परीक्षा नहीं हुई है। कई साल तक बहस चलने के बाद २००२ में बॉन गाइडलाइंस सूत्रबद्ध की जा सकी हैं ताकि सदस्य देशों को इस संबंध में कानूनी ढाँचा बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। ये गाइडलाइंस जैव और जेनेटिक संसाधनों और लाभों में साझेदारी के बारे में स्पष्ट संस्थागत उत्तरदायित्व सुनिश्चित करते हुए तय करती हैं कि एक बार पहुँच का फैसला हो जाने पर उसे सिर्फ इसलिए वापस न लिया जाए कि कुछ जरूरी लोगों की भूमिका उस निर्णय में नहीं थी। इनका नजरिया साझेदारी प्रणाली को मौद्रिक और गैर-मौद्रिक लाभों के रूप में देखने का है। यानी एक तरफ वे पहुँच शुल्क, रॉयल्टी, फंडिंग और संयुक्त उपक्रमों का ध्यान रखती हैं, और दूसरी ओर अनुसंधान के नतीजों में साझेदारी, उत्पाद के विकास में भागीदारी और संबंधित प्रशिक्षण में भी दिलचस्पी दिखाती हैं।

चूँकि ये गाइडलाइंस व्यापक रूप से कार्यान्वित नहीं हुईं, इसलिए बाध्यकारी कानूनी ढाँचे के विकास की जरूरत महसूस हुई। इस प्रक्रिया की औपचारिक शुरुआत २००४ में हुई जब जैवविविधता कन्वेंशन के पक्षकारों के सम्मेलन ने एक अस्थायी ओपिन एंडिड वर्किंग ग्रुप बनाया। समस्या यह है कि इस कार्यदल का दायरा इतना व्यापक कर दिया गया है कि वार्ता करना कठिन हो जाने का अंदेश है। इस प्रकार जैवविविधता कन्वेंशन के संदर्भ में पहुँच और लाभों में साझेदारी से संबंधित कानूनों का विकास बहुत धीमी गति से चल रहा है।

लेकिन, पीजीआरएफए ट्रीटी इस संबंध में बाध्यकारी कानून पेश करती है। इसकी खास बात यह है कि बहुपक्षीय प्रणाली की रोशनी में यह संधि सिर्फ संलग्नक १ में दर्ज फसलों के लिए प्रभावी, पारदर्शक और सक्षम कानून प्रदान करती है। इसका नाता पारंपरिक ज्ञान से भी नहीं है। बहुपक्षीय प्रणाली के अनुसार कानून का स्वरूप मुख्यतः अंतर्राष्ट्रीय हो जाता है, और सदस्य देशों को अपेक्षाकृत कम गुंजाइश मिलती है, और उन्हें अधिक समरूप कानूनों का पालन करना पड़ता है। संधि की संचालक समिति एक मानक किस्म के सामग्री स्थानांतरण समझौते (एमटीए) के मुताबिक पहुँच को सुलभ बनाती है। इसलिए, अगर किसी देश में संबंधित कानून नहीं भी है तो कोई दिक्कत नहीं रह जाती।



पहुँच संबंधी यह कानून साफ करता है कि ज्ञान प्राप्तकर्ता सामग्री पर किसी पेटेंट का दावा नहीं कर सकेंगे। पहुँच केवल शोध, ब्रीडिंग और प्रशिक्षण के लिए होगी, न कि किसी व्यापारिक उद्देश्य के लिए। पहुँच मुफ्त होगी और उद्गम वाला देश सभी गैर-गोपनीय जानकारीयों मुहैया कराएगा। विकास की जा रही सामग्री में किसान समेत अन्य शोधकर्ता साझेदारी करने के लिए मजबूर नहीं होंगे। अगर किसी सामग्री पर पेटेंट दिया जा चुका है तो पहुँच का यह कानून उस पर लागू नहीं होगा। ट्रीटी खास तौर से मानती है कि सुगम की गई पहुँच अपने आप में सभी संबंधित देशों के लिए एक लाभ है। संसाधनों और ज्ञान के निजी और अंतर्राष्ट्रीय दोहन के जमाने में यह सिद्धांत दरअसल सीजीआईआर के सेंटर्स द्वारा विकसित जर्मप्लाज्म के मुक्त प्रवाह की कालत करता है। पीजीआरएफए ट्रीटी पहुँच का लाभ मानने के असामान्य रवैया तो अपनाती ही है, साथ ही साथ उसने बाँटे जा सकने वाले लाभों की एक अन्य सूची भी बनाई है। इसमें शोध परिणामों और संबंधित प्रौद्योगिकियों के बारे सूचनाओं का आदान-प्रदान, प्रौद्योगिकी तक पहुँच और उसका हस्तांतरण, क्षमता निर्माण और व्यवसायीकरण से होने वाले लाभ। लाभों के आर्थिक बँटवारे के संबंध में यह संधि व्यवसायीकरण से होने वाले लाभों के समतामूलक बँटवारे का प्रावधान करती है, और एमटीए के अनुसार फायदों का एक वाजिब हिस्सा ट्रीटी द्वारा स्थापित ट्रस्ट फंड में जमा करने और लाभों के बँटवारे की प्रणाली के तहत उगाहे गए लाभों को उन किसानों की तरफ निर्देशित करने का आग्रह करती है जो मुख्यतः खाद्य और कृषि के लिए वनस्पति जेनेटिक संसाधनों का संरक्षण और टिकाऊ इस्तेमाल करते हैं। ट्रीटी में कुछ अंतर्विरोध भी हैं। मसलन, एक तरफ तो वह व्यवसायीकरण को नहीं बल्कि इस्तेमाल को ही लाभों का उद्गम मानती है, पर आर्थिक लाभों को व्यवसायीकरण से जोड़ कर देखती है। इसके अनुच्छेद १३(२)डी(ii) की एक धारा व्यवसायिक लाभों के बँटवारे का दायरा संकीर्ण करके उसे केवल पेटेंट होने की शर्त से जोड़ देती है।

भारत ने लाभों में साझेदारी का प्रावधान अंतर्राष्ट्रीय कानून के दायरे से परे जाते हुए प्लांट वेराइटी एक्ट और जैवविविधता एक्ट में शामिल किया है। हालाँकि पेटेंट एक्ट इस बारे में कुछ नहीं कहता, पर भारत ने इन दोनों योजनाओं को उससे जोड़ दिया है। २००१ का प्लांट वेराइटी और फार्मर्स राइट्स एक्ट (प्लांट वेराइटी एक्ट) प्लांट जेनेटिक संसाधनों के बारे में नहीं है। इनका निबटारा जैवविविधता एक्ट के तहत होता है। प्लांट वेराइटी एक्ट केवल किसी ब्रीडर या लाइसेंसधारक को होने वाले व्यावसायिक फायदों से होने वाले मौद्रिक लाभों के बँटवारे की चर्चा करता है, और इस लिहाज से एक संकीर्ण प्रावधान है।

**प्लांट वेराइटी एक्ट** अपने अनुच्छेद २६ के मुताबिक लाभों में बँटवारे में दावेदारी करने वालों के योगदान की कसौटियाँ तय करता है कि उन्होंने किसी प्रजाति के विकास और बाजार के लिए उसकी उपयोगिता के संदर्भ में कितना हाथ बँटाया है। यह दावेदारी कोई एक व्यक्ति, व्यक्तियों का समूह या कोई गैर-सरकारी संगठन कर सकता है। लाभों में बँटवारे का दावा छः महीने के भीतर-भीतर करना चाहिए, और अगर ब्रीडर इसका विरोध करता है तो प्लांट वेराइटी एथारिटी के पास इस विवाद का फैसला करने के अधिकार रहते हैं। एथारिटी अलग-अलग मामलों में लाभांश का प्रतिशत भी तय करती है। चूँकि इसके लिए किसी तरह की हिदायतें नहीं हैं, इसलिए इस प्रक्रिया को अपनी ओर झुका लेने के प्रयासों का अंदेशा रहता है। अनुच्छेद ४१ के तहत भिन्न तरह के मुआवजे की चर्चा है। इसके तहत कोई व्यक्ति या समुदाय अनुच्छेद २६ की कसौटियों पर खरा न उतरने के बावजूद अपने योगदान के एहसास के आधार पर लाभों में साझेदारी का दावा कर सकता है। इस दावे की न तो कोई समय-सीमा होती है, न ही इसके लिए कोई शुल्क जमा कराना पड़ता है। अनुच्छेद २६ अगर सामग्री के इस्तेमाल की शर्त लगाता है, तो अनुच्छेद ४१ प्रजाति के विकास में सामान्य योगदान को ही कसौटी मानता है। इस तरह पारंपरिक ज्ञान द्वारा लाभों में साझेदारी का दावा किए जाने की गुंजाइश खुल जाती है। कुल मिला कर यह अनुच्छेद एक्ट की एथारिटी को दावा स्वीकार या खारिज करने का ज्यादा अधिकार देता है। सारे मुआवजे औ लाभांश नेशनल जीन फंड को दिए जाने का प्रावधान है। समझा जाता है कि जीन फंड किसानों को उनके योगदान के लिए समर्थन देगा और पुरस्कृत करेगा, पर इसके लिए साफ हिदायतें उपलब्ध नहीं हैं। कुल मिला कर यह एक्ट पारंपरिक किसानों को व्यावसायिक मकसद से काम करने वाले आविष्कारकों के लिए सामग्री के स्रोत के रूप में तो देखता है, पर उन्हें स्थानीय स्तर पर आविष्कार करने और अपनी मिट्टी व परिस्थिति के मुताबिक प्रजातियाँ बनाने का कोई प्रोत्साहन नहीं देता।

**जैवविविधता एक्ट** जैविक संसाधनों पर भारत के संप्रभु अधिकारों का मजबूती से दावा तो करता है, पर स्थानीय धारकों को उनके स्तर पर पहुँच पर नियंत्रण के बारे में कुछ खास प्रावधान पेश नहीं करता। दरअसल, यह एक्ट पूर्वसूचित सहमति की चर्चा ही नहीं करता। इसकी जगह वह नेशनल बायोडायवर्सिटी एथारिटी की पूर्वस्वीकृति की बात करता है जो पूर्वसूचित सहमति के मुकाबले कहीं कमजोर प्रावधान है। इस तरह जैवविविधता कन्वेंशन की अपेक्षा यह एक्ट कम प्रभावी साबित होता है।

यह एक्ट सुनिश्चित करता है कि संसाधनों तक पहुँच की इजाजत तभी दी जाए जब लाभों के समतामूलक बँटवारे की गारंटी हो। एक्ट के हिसाब से लाभों का मतलब है मौद्रिक लाभ, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, लाभ के दावेदारों के इलाके में ही उत्पादन, शोध और विकास का काम, और साथ में भारतीय वैज्ञानिकों, लाभ के दावेदारों और स्थानीय जनता का उसके साथ जुड़ाव। इस एक्ट का अवधारणा के स्तर पर सबसे अहम योगदान यह है कि इसके मुताबिक लाभों में साझेदारी का मतलब बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में साझेदारी में भी निकल सकता है। अगर लाभार्थियों की ठीक से शिनाख्त हो तो नेशनल बायोडायवर्सिटी एथारिटी बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में संयुक्त स्वामित्व का प्रावधान करती है। इस तरह वह बिना पेटेंट एक्ट के कार्यान्वयन में भाग लिए हुए पेटेंटों की इजाजत देने की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती है। हालाँकि, इस पहलू को ठोस रूप देने के लिए कानून के अधिक विस्तार और उसमें अधिक स्पष्टता की जरूरत है।

हालाँकि यह एक्ट तरह-तरह के लाभों की चर्चा करता है, पर इसका भी मुख्य जोर मौद्रिक लाभ पर ही है। अब यह एथारिटी पर है कि वह मौद्रिक लाभ नेशनल फंड में जमा करने का फैसला करती है, या संबंधित व्यक्तियों या उनके समूह को देती है। लाभ की मात्रा तय करना पूरी तरह एथारिटी के विवेक पर निर्भर है जिसके कारण लाभों के बँटवारे की यह स्कीम पारदर्शी न होने के जोखिम की शिकार हो जाती है।

अगर मौद्रिक लाभों के लिए एथारिटी द्वारा कहा जाता है तो वे लाभ या तो लाभों की दावेदारी करने वालों को मिलते हैं या फिर उन्हें जैवविविधता के संरक्षण और टिकाऊ इस्तेमाल के लिए खर्च किया जाता है। धन किसे दिया जाना है, यह एथारिटी ही तय करती है, भले ही उसके दावेदारों की शिनाख्त हो गई हो। हालाँकि प्लांट वेराइटी एक्ट के मुकाबले लाभों के बँटवारे की योजना जैवविविधता एक्ट में अधिक व्यापक है, फिर भी लाभार्थियों की प्रार्थमिकता से शिनाख्त न होने और अन्य संबंधित स्पष्टताओं के कारण यह एक्ट केवल विभिन्न लाभों की सूची बना कर रह जाता है।

मुश्किल यह भी है कि लाभों की साझेदारी के मामले में दोनों कानूनों के बीच कोई तालमेल कायम नहीं किया गया है, इसलिए कई मामलों में वे परस्परव्यापी हैं। मामूली सी बात यह है कि एक ही विषयवस्तु के लिए दो अलग-अलग कानूनों का होना कहाँ की तुक है। फिर, अगर दो कानून बना भी दिए गए थे, तो लाभों के बँटवारे के प्रावधान और उन्हें कार्यान्वित करने वाले संस्थागत ढाँचे को एक ही होना चाहिए था।

चूँकि लाभों के बँटवारे का विचार पेटेंट अधिकारों की मौजूदगी का परिणाम है, इसलिए दोनों के बीच सीधा ताल्लुक समझा जा सकता है। लेकिन, दोनों के बीच का यह सूत्र अप्रत्यक्ष कर दिया गया है, क्योंकि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों द्वारा दी जाने वाली अर्जी की जाँच पहले नेशनल बायोडायवर्सिटी एथारिटी द्वारा की जाती है। कुल मिला कर लाभों के बँटवारे की स्कीम उस सूरत में अधिक प्रभावी होगी अगर उसे बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की समग्र रणनीति के तहत कार्यान्वित किया जाए।

## द. पहुँच, लाभों का बँटवारा और बौद्धिक सम्पदा अधिकार

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जैवविविधता संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान के संदर्भ में इन सभी पहलुओं के बीच कई तरह के सूत्र हैं। कानूनी लिहाज से जैविक संसाधनों के सरोकार टिकाऊ विकास कानून से जुड़े हैं, और ज्ञान व पारंपरिक ज्ञान के सरोकार आम तौर से बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से जुड़े हैं। लाभों के बँटवारे की स्कीम इन दोनों के कटान बिंदु पर स्थित है। लाभों के बँटवारे की स्कीम असल में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों प्रणाली में अंतर्निहित असंतुलन को दूर करने का औजार है, क्योंकि यह प्रणाली जन-दायरे में मौजूद सभी तरह के ज्ञान को अपने भीतर नहीं समेटती।

हालाँकि जैवविविधता एक बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में भी साझेदारी की संभावनाएँ खोलता है, पर समस्या यह है कि एक पर्यावरण कानून सम्पदा कानून के कार्यान्वयन का रास्ता तब तक नहीं बदल सकता जब तक दोनों के बीच में तालमेल न हो। बौद्धिक सम्पदा अधिकार कानून दूसरे सरोकारों से अलग सूत्रबद्ध किया गया है, इसलिए उसके लिए ऐसा तालमेल एक नई बात होगी। इसीलिए कभी-कभी टिकाऊ विकास कानून को पेटेंट कानून में हस्तक्षेप की तरह देखा जाता है कि इसकी वजह से बौद्धिक सम्पदा कानून के कठोर मानक ढीले पड़ सकते हैं। लेकिन, आज हम इस मुकाम पर पहुँच चुके हैं कि दोनों तरह के कानूनों के बीच राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ताल्लुकात बन चुके हैं।

जिन देशों ने पहुँच संबंधी कानून कठोर बनाने की कोशिश की है, वहाँ संसाधनों तक पहुँच में दिलचस्पी घटी है और नतीजतन लाभों में हिस्सेदारी की गुंजाइश भी कम हो गई। इसका एक मतलब तो यह है कि व्यापार की ताकतें उन देशों के मुकाबिले दूसरे देशों में ज्यादा दिलचस्पी दिखा रही हैं, पर दूसरा मतलब यह भी है कि संसाधनों तक भौतिक पहुँच को ज्यादा प्राथमिकता नहीं दी जा रही है। औषधि उद्योग इसका उदाहरण है। दूसरी समझने की बात यह है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष किस्म के लाभों में भागीदारी तब तक नहीं की जा सकती जब तक जैवविविधता कन्वेंशन के संदर्भ में पहुँच और लाभों में भागीदारी के कानून व्यापक दायरे में नहीं बनाए जाते। राष्ट्रीय स्तर पर लाभों का बँटवारा स्थानीय पैमाने पर आविष्कारों को प्रोत्साहन नहीं देता। इसे ज्यादा से ज्यादा आर्थिक मुआवजे के तौर पर ही देखा जा सकता है। अगर इसी शैली में लाभों की साझेदारी पर जोर दिया गया तो होगा यह कि पारंपरिक ज्ञान का उसके धारकों द्वारा विकास पर कोई जोर नहीं रह जाएगा। तब केवल यह ज्ञान औपचारिक प्रणाली में हस्तांतरित कर दिया जाएगा, ताकि पेटेंट प्रणाली के जरिए इसे संरक्षित किया जा सके।

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि लाभों में साझेदारी को बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के मौजूदा असंतुलन को ठीक करने के अलावा भी दूसरे नजरियों से देखा जाना चाहिए। इस स्कीम में कई खामियाँ हैं। यह न तो दावेदारों की ठीक से शिनाख्त करती है, न ही देशों और समुदायों के बीच लाभों का बँटवारा तय करती है। यही कारण है कि बहुत से जर्मप्लाज्म मूल धारकों और उद्गम वाले देशों की पहुँच से दूर प्रबंधित किए जा रहे हैं। हालाँकि ये खामियाँ लाइलाज नहीं हैं, पर सुई जेनरिस आधार पर बनाई गई बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की रणनीति संभवतः इस संदर्भ में अधिक उपयोगी हो सकती है।

## खेती-बाड़ी

### ६ जेनेटिक इंजीनियरिंग, खाद्य सुरक्षा और बौद्धिक सम्पदा अधिकार

बीसवीं सदी के दौरान विकसित देशों में कृषि का क्षेत्र उत्तरोत्तर बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के दायरे में आता गया है। इन देशों में एक तरफ तो खेती का तेज व्यवसायीकरण हुआ, दूसरी ओर एक आर्थिक गतिविधि के तौर पर उसका महत्त्व गिरता चला गया। इसके विपरीत विकासशील देशों में उसकी अहमियत कम तो हुई, लेकिन आजीविका और रोजगार के स्रोत के रूप में उसका महत्त्व बरकरार रहा। इन देशों में खाद्य सुरक्षा, मानवाधिकार और खेती का सीधा संबंध है। कुछ दशक पहले तक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कृषि संबंधी अनुसंधान संसाधनों और ज्ञान की मुफ्त साझेदारी पर निर्भर था। विकासशील देशों के लिए इसके लाभप्रद होने का सबूत हरित क्रांति के उदाहरण से समझा जा सकता है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग के विकास के कारण कृषि संबंधी नीतियों और कानूनों पर जबरदस्त असर पड़ा। विकसित देशों में जीवन रूपों को पेटेंट किया जाना शुरू हुआ जिसे अस्सी के दशक तक आम तौर पर उचित नहीं माना जाता था। पहले तो इसका असर विकासशील देशों पर नहीं पड़ा, लेकिन अब ट्रेड्स समझौते को अंगीकार किए जाने और डब्ल्यूटीओ के सभी सदस्य देशों में जीवन रूपों के पेटेंटों की शुरुआत होने से कृषि संबंधी नीति तकरीबन पूरी तरह ही बदल गई है। इसका संबंध केवल बौद्धिक सम्पदा संरक्षण से ही नहीं है, बल्कि यह तो कृषि क्षेत्र के निजीकरण और बाजारीकरण की तरफ रुझान है जिसका खराब असर विकासशील देशों की खाद्य सुरक्षा संबंधी समस्याओं पर पड़ना लाजमी है।



## अ. प्लांट वेराइटी मैनेजमेंट

हालाँकि भारत के कुल घरेलू उत्पाद में खेती का हिस्सा घट कर २४ फीसदी तक आ गया है, पर अभी भी देश की आबादी का ७० फीसदी उसी से रोजगार पाता है। कपास, चीनी और जूट उद्योग खेती के उत्पादों पर ही आधारित हैं। इसी तरह सब-सहारा अफ्रीका की दो-तिहाई से ज्यादा आबादी खेती पर निर्भर है। नाइजीरिया में कुल घरेलू उत्पाद का ३४ फीसदी तक खेती से आता है, और कई देशों में यह आँकड़ा पचास फीसदी तक चला जाता है। हालाँकि खेती स्थानीय स्तर पर होती है, पर मुख्य फसलों के लिए दुनिया के एक क्षेत्र को दूसरे पर सीधे-सीधे निर्भर भी रहना पड़ता है। मसलन, निर्भरता अनुपात के लिहाज से भारत ३५ से ४७ फीसदी के बीच विश्व के दूसरे हिस्सों पर निर्भर है। वियतनाम और थाइलैंड जैसे देश कुछ कम यानी १३ से २६ फीसदी निर्भर हैं। अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका और पश्चिम एशिया में यह निर्भरता ५० फीसदी से भी ज्यादा हो जाती है। मध्य और पूर्वी अफ्रीका के कुछ देशों के लिए यह निर्भरता ८० फीसदी और दक्षिणी अफ्रीका के देशों के लिए ९० फीसदी तक पहुँच जाती है। अधिकतर यूरोपियन देशों और उत्तरी अमेरिका के लिए भी निर्भरता की दर काफी ऊँची है।

ऐतिहासिक रूप से छोटे धारक और किसान वनस्पति प्रजातियों का विकास और संरक्षण करते रहे हैं। लेकिन, हाल में सरकार से ले कर निजी कंपनियों ने और कंसल्टेंट ग्रुप ऑन इंटरनेशनल एग्रीकल्चर रिसर्च (सीजीआईएआर) के अनुसंधान केंद्रों ने भी यह काम शुरू कर दिया है। विकासशील देशों में ये गतिविधियाँ अभी भी किसानों के बीच ही केंद्रित हैं। वे ही बीज बचाते हुए अपनी जरूरतों के हिसाब से कृषि विविधता और वनस्पति प्रजातियों का प्रबंधन करते हैं। चूँकि विकासशील, अत्यल्प-विकसित और भारत जैसे देशों में जनता का बहुलांश खेती पर ही निर्भर है, इसलिए स्वाभाविक ही है कि अपने संसाधनों का ठीक से प्रबंधन करने पर ही उनका हितसाधन टिका हुआ है। इसी मकसद से स्थानीय समुदायों ने अपने पर्यावरण और हवा-पानी के साथ एक मैत्रीपूर्ण संबंध कायम रखा है। भारत में तो दो-तिहाई से लेकर ८५ फीसदी तक बोए गए बीज पिछली फसल से बचाए हुए होते हैं। बीज उद्योग धान के लिए केवल १२ फीसदी, गेहूँ के लिए मात्र ८ फीसदी, मक्का के लिए २९ और बाजरे के लिए ७२ फीसदी बीज सप्लाई करता है। किसान करीब साठ फीसदी तक आपस में बीजों की खरीद-फरोख्त करते हैं। बीज के बदले बीज का आदान-प्रदान भी किया जाता है। अफ्रीकी देशों की कहानी भी मोटे तौर पर यही है। इथियोपिया में तो किसान बीजों की ९६ फीसदी जरूरत अपने बचाए बीजों से ही पूरी करते हैं। तंजानिया में उगाई जाने वाली जौ की फसल के केवल दो फीसदी में ही सर्टिफाइड बीजों का इस्तेमाल होता है। बीज खरीदने वाले किसान भी स्थानीय स्तर पर अपने बीजों का इस्तेमाल करके फसलें उगाना जारी रखते हैं।

उन्नीसवीं सदी में अमेरिकी सरकार ने अपने किसानों को बीज मुहैया कराने की भूमिका शुरू की जो बीसवीं सदी तक जारी रही। पिछले चालीस साल में विकासशील देशों में पब्लिक सेक्टर पारंपरिक ब्रीडिंग पद्धतियों से सुधारे हुए जर्मप्लाज्म की सप्लाई का प्रमुख स्रोत रहा है। भारत सरकार ने नए बीजों के विकास में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। यहाँ पचास के दशक से किसानों और विभिन्न फार्मों द्वारा विकसित बीजों का वितरण सुधारने की कोशिश शुरू हुई। मक्का, बाजरा और जौ आदि में की गई शोध का नतीजा १९६९ में भारतीय परिस्थितियों के लिए पहले संकर मक्का बीज विकसित करने में निकला। १९६३ में संकर बीजों के लिए राष्ट्रीय बीज निगम की स्थापना की गई। आज इसके अलावा एक स्टेट फार्म कारपोरेशन ऑव इंडिया के साथ-साथ १३ राज्य स्तरीय कारपोरेशन भी काम कर रहे हैं। १९७३ में कृषि मंत्रालय ने कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग स्थापित किया जिसमें कृषि प्रौद्योगिकी के विकास में कृषि अनुसंधान परिषद ने प्रमुख भूमिका निभाई। आजकल सरकार जैव प्रौद्योगिकी को भी प्रोत्साहित कर रही है। १९८६ से २००२ के बीच उसने इस क्षेत्र में साढ़े २७ करोड़ डालरों का निवेश किया है। यह अलग बात है कि सारी दुनिया में अस्सी के दशक के बाद से कृषि में कुल निवेश काफी घटा है जो खाद्य सुरक्षा के लिए पब्लिक सेक्टर का जरूरी भूमिका के लिहाज के एक अस्वास्थ्यकर रुझान समझा जाना चाहिए।

राष्ट्रीय स्तर पर निजी बीज क्षेत्र की भूमिका प्लांट वेराइटी मैनेजमेंट के मामले में दोगुना दर्जे की ही रही है। भारत में यह काम ज्यादातर सरकार की छत्रछाया में ही हुआ है, और आम तौर से संकर किस्मों के विकास तक ही सीमित रहा है। चूँकि जोर मुनाफे पर नहीं था, इसलिए निजी बीज उद्योगों को इजाजत होते हुए भी प्रोत्साहित नहीं किया गया। प्लांट ब्रीडिंग में इसकी भूमिका अस्सी के दशक के मध्य में ही शुरू हुई। यही वह मुकाम था जब सरकार ने इस क्षेत्र में निजी उद्यमों को बढ़ावा देने का फैसला किया। नई बीज नीति बनी। १९९१ में नई अर्थ नीति लागू होने के बाद इसके नतीजे दिखने लगे। १९९५-९७ तक मक्का में निजी बीजों का हिस्सा दस से बढ़ कर ८५ फीसदी हो गया।

जीवित ऑर्गनिज्म में बदलाव लाने के ज्ञान का इस्तेमाल प्राचीनकाल से ही किया जा रहा है। इसी को बायोटेक्नालॉजी कहते हैं। इसके कुछ उदाहरण हैं फर्मेंटेशन, माइक्रोप्रोपेगेशन और खाद्य प्रसंस्करण जिनसे बियर, वाइन और पनीर जैसी चीजें बनती हैं। कृषि के संदर्भ में इसका मतलब है वैज्ञानिकों द्वारा ऑर्गनिज्म की जेनेटिक बनावट को बदल कर खेती के संवर्धन में इस्तेमाल। हमारे लिए यहाँ सबसे ज्यादा प्रासंगिक है फसलों के लिए इस्तेमाल की जाने वाली जेनेटिक इंजीनियरिंग। इसमें बिना यौन समागम के एक ऑर्गनिज्म अथवा कोषिका (ट्रांसजीन) की डीएनए दूसरे में स्थानांतरित किया जाता है। इससे ट्रांसजेनिक बीज बनते हैं। अगर किसी ऑर्गनिज्म में वांछित गुण हैं और उसका किसी जेनॉम के अनुकूल नहीं है, तो जेनेटिक इंजीनियरिंग का प्रयोग किया जाता है। पारंपरिक ब्रीडिंग की सीमा होती है कि उसमें दो पूरी तरह भिन्न प्रजातियों के बीच जीन का स्थानांतरण नहीं हो सकता।

जेनेटिक इंजीनियरिंग के जरिए फसल के पौधों में *बेसिलस थरिंग्जीसिस* (बीटी)जैसे कीटनाशक जीन भी डाले जा सकते हैं। इन फसलों को लगा कर किसान कीटनाशकों का इस्तेमाल करने से बच सकते हैं। इस इंजीनियरिंग से बने खरपतवार नाशक का प्रयोग करके किसान अपने खेत में ट्रांसजेनिक पौधों को छोड़ कर बाकी सभी वनस्पतियों को खत्म कर सकते हैं। इससे विषाणु विरोधी फसलें भी तैयार की जा सकती हैं। खेती में रसायनों के इस्तेमाल से पैदा हुई समस्याओं से निबटने में और इस तरह पर्यावरण संरक्षा में जेनेटिक इंजीनियरिंग की भूमिका को लेकर यूरोप और भारत में काफी विवाद है। विकासशील देश इस तरह से बनाए गए पौधों और खाद्य के मानवीय स्वास्थ्य पर पड़ने वाले असर को लेकर चिंतित हैं। इनके कानूनी और नीतिगत प्रभाव भी विवादास्पद हैं।

अभी तक केवल छः देश, अर्जेंटीना, ब्राजील, कनाडा, चीन, दक्षिण अफ्रीका और संयुक्त राज्य अमेरिका में ही मक्का, सोयाबीन, कनोला और कपास की खेती में ही जेनेटिक इंजीनियरिंग का इस्तेमाल किया गया है। इसका पहला आयाम तो यह है कि विभिन्न कारणों से यह मुख्यतः निजी क्षेत्र की कृषि प्रौद्योगिकी है। भारत के पब्लिक सेक्टर ने क्षमता होते हुए भी अभी तक ऐसे किसी उत्पाद का व्यवसायीकरण नहीं

किया गया है। केवल चीन में ट्रांसजेनिक फसलों का व्यवसायीकरण केवल निजी क्षेत्र के हाथों में नहीं है। इसी पहलू के कारण निजी पूँजी केवल ऐसे उत्पादों के विकास में रुचि दिखाती है जिनमें तगड़े मुनाफे की संभावनाएँ हों। रासायनिक कीटनाशक बनाने वाली कई बड़ी कंपनियाँ जेनेटिक इंजीनियरिंग करने वाली कंपनियाँ भी हैं। उन्होंने अपने कुछ शुरुआती ट्रांसजेनिक उत्पादों को कीटनाशकों की बिक्री से जोड़ दिया था। अगर विटामिन ए से भरे हुए ट्रांसजेनिक चावल का अपवाद छोड़ दिया जाए तो इन कंपनियों ने पोषण युक्त फसलें पैदा करने में कम ही रुचि दिखाई है। दूसरी बात यह है कि जेनेटिक उत्पादों की नकल आसानी से की जा सकती है, इसलिए कंपनियाँ बौद्धिक सम्पदा अधिकारों द्वारा दिए जाने वाले संरक्षण पर काफी निर्भर हैं। तीसरे, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जेनेटिक इंजीनियरिंग कुछ मुट्ठी भर फर्मों में ही केंद्रित है जिनके नियंत्रण में भारी मात्रा में जर्मप्लाज्म और बीज वितरण का जबरदस्त नेटवर्क है। इस इजारेदारी के कारण इस क्षेत्र में नई कंपनियों की स्थापना और उनका विकास बहुत मुश्किल हो गया है। इसका मतलब यह भी निकलता है कि अगर इन नई प्रौद्योगिकियों का लाभ उठाना है तो निजी और सार्वजनिक शोध संस्थानों को इन बड़ी कंपनियों के साथ गठजोड़ करने पड़ेंगे। विवादों की स्थिति यह है कि न तो इन फसलों के पर्यावरण पर पड़ने वाले असर स्पष्ट हैं, और न ही इनकी लागत और फायदों के बारे में कुछ साफ तौर से कहा जा सकता है। अमीर देश इन फसलों पर्यावरण संबंधी अंदेशों से चिंतित हैं, और विकासशील देश इनके सामाजिक आर्थिक प्रभाव से क्योंकि वहाँ ज्यादातर आबादी खेतिहर है।

## ब. खाद्य सुरक्षा और बौद्धिक सम्पदा संरक्षण

एफएओ के अनुसार दुनिया भर में करीब अस्सी करोड़ लोग कुपोषण के शिकार हैं। करीब २१ फीसदी भारतीय जनता और करीब एक तिहाई सब-सहारा देशों की आबादी कुपोषण के शिकंजे में है। इस हकीकत के चलते खाद्य सुरक्षा की अवधारणा का महत्त्व कम करके नहीं आँका जा सकता।

खाद्य सुरक्षा के तीन मुख्य आयामों में पहला सवाल खाद्य की उपलब्धता का है। हालाँकि दुनिया भर में आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त खाद्य उत्पादित होता है, पर युद्धग्रस्त क्षेत्रों, खेतीयोग्य धरती के कमी वाले इलाकों और बार-बार या निरंतर सूखे के शिकार क्षेत्रों में खाद्य उपलब्धता का संकट है। भविष्य में आबादी की वृद्धि के साथ-साथ अगर खाद्य उत्पादन न बढ़ा तो कई क्षेत्रों में यह संकट और गहन हो सकता है। खाद्य सुरक्षा का दूसरा प्रश्न है उपलब्धता होते हुए भी कुछ लोगों और क्षेत्रों को खाद्य न मिल पाना। इसका एक उदाहरण भारत है, जहाँ खाद्य का पर्याप्त उत्पादन होता है, और दूरगामी परिप्रेक्ष्य में कुपोषण की परिघटना भी कम हुई है, पर अतिरिक्त खाद्य के बावजूद बीच-बीच में १९९५-९७ से २०००-०२ के बीच कुपोषण के शिकार लोग २० करोड़ से बढ़ कर २२ करोड़ हो गए। दरअसल, निजी स्तर पर खाद्य सुरक्षा का मतलब है लोगों के पास भोजन खरीदने के लिए आमदनी का होना या उसे खुद पैदा करने की क्षमता का होना। इस तरह इसका सीधा संबंध गरीबी और भूमि पर नियंत्रण से हो जाता है।

खाद्य सुरक्षा कई तरह के नीतिगत परिवर्तनों की माँग करती है। खेत के स्तर पर पैदावार बढ़ाना और गरीबों और स्त्रियों के हितार्थ इस संबंध में प्रौद्योगिकीय हल निकलाना, तरह-तरह के कृषि प्रबंधनों को प्रोत्साहित करना, राष्ट्रीय स्तर पर विकासशील देशों में किसानों के अपने इस्तेमाल की फसलों और कम क्षमता वाली जमीन पर अनुसंधान को बढ़ावा देना, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खेती के महत्त्व पर अधिक बल देना क्योंकि आजकल बहुपक्षीय संस्थान कृषि पर कम जोर देने लगे हैं। इसी तरह खेती में आयात-निर्यात का प्रश्न भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। मसलन, भारत में कुछ खेतिहर उत्पादों के आयात पर ऐतिहासिक रूप से रोक रही है ताकि उसकी घरेलू पैदावार और किसानों के हितों पर विपरीत असर न पड़े। इसी तरह सबसिडी घटाने से भी भारत में खाद्य सुरक्षा प्रभावित हो सकती है। अभी तक भारत में नीतिगत रूप से खाद्य सुरक्षा का मतलब रहा है खाद्य आत्मनिर्भरता ताकि विदेशों से अनाज न मँगाना पड़े। अब डब्ल्यूटीओ ने नया नीतिगत ढाँचा प्रस्तावित किया है जो लागत-क्षम प्रबंधन पर जोर देता है। इसके भारत जैसे बड़े देश के लिए फायदे हो सकते हैं, पर छोटे विकासशील और अत्यल्प-विकसित देशों को तो इस नीति के कारण संकट के समय खाद्य खरीदने के लिए अपनी विदेशी मुद्रा आमदनी की क्षमताओं पर ज्यादा निर्भर होना पड़ सकता है।

समझा जाता है कि जेनेटिक इंजीनियरिंग पैदावार बढ़ाने में बहुत मददगार हो सकती है। लेकिन, विकासशील देशों में इस तरह की खेती की भूमिका पर से सवालिया निशान नहीं उठा है। अभी तक व्यावसायीकृत जेनेटिक फसलों का विकास विकासशील देशों की जरूरतों के हिसाब से होता नहीं दिख रहा है। जेनेटिक इंजीनियरिंग पर अपनी इजारेदारी कायम रखने वाली बड़ी-बड़ी कंपनियों से यह उम्मीद करना भी मुश्किल है कि वे अपने प्रयासों को गरीब किसानों और कम क्षमतावान उपभोक्ताओं के हितों में लगाएँगी। फिर, इस तरह की फसलों के साथ पर्यावरणीय और सामाजिक-आर्थिक पहलू भी जुड़े हैं। यह भी लग रहा है कि बढ़ते हुए कृषि व्यापार की स्थिति में विकासशील देशों का जोर भी अनाज पैदा करने पर कम और नकदी फसलें पैदा करने पर ज्यादा होता जाएगा। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के लिए इस तरह के परिदृश्य के गंभीर नतीजे हो सकते हैं। जेनेटिक इंजीनियरिंग से खेती में बाजार का बोलबाला बढ़ेगा और दूसरी ओर जेनेटिक बीज मँहगे होते चले जाएँगे।

इस समय स्थिति यह है कि डब्ल्यूटीओ के सदस्य देशों, जो विकासशील की श्रेणी में आते हैं, में खेती के क्षेत्र में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का कार्यान्वयन करने की प्रक्रिया चल रही है। पहले इन देशों में खाद्य सुरक्षा के प्रश्न पर विचार और व्यवहार ज्ञान और प्रौद्योगिकी के मुक्त प्रवाह के आग्रह के तहत किया जाता था, पर अब यही लक्ष्य वेधने के लिए पेटेंट प्रणाली और ब्रीडर्स राइट्स का संदर्भ लिया जा रहा है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि वनस्पतियों की कुछ नई किस्में जेनेटिक इंजीनियरिंग की देन हैं।

खेती के क्षेत्र में इन अधिकारों की शुरुआत पहले विकसित देशों में हुई, और अब टिप्स समझौता अंगीकार किए जाने के बाद विकासशील देशों में भी इन्हें लागू किया जा रहा है। इसका पहला असर तो यह पड़ता है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के तहत ज्यादा पैदावार करने और अन्य खूबियाँ रखने वाले बीजों और वनस्पति की किस्मों के विकास का प्रोत्साहन निजी क्षेत्र को मिलने लगता है। जेनेटिक इंजीनियरिंग के फायदे खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से क्या-क्या हो सकते हैं, यह हम इसी अध्याय की शुरुआत में देख चुके हैं।

पूरी तस्वीर पर निगाह डालने के लिए जरूरी है कि हम व्यापक विश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य का प्रयोग करें। खेती में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का भूमि अधिकारों और जैविक संसाधनों पर अधिकारों से सीधा संबंध है। कुछ खास तरह की वनस्पति प्रजातियों को सम्पदा अधिकारों के तहत लाने यह पूरा मसला काफी विवादास्पद होता जा रहा है। अस्सी के दशक तक संसाधनों व ज्ञान की साझेदारी की बात होती थी, पर उन पर

निजी नियंत्रण की चर्चा होने लगी है। अभी स्थिति यह है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पेटेंटों के जरिए आविष्कारों का बाजार के लिए दोहन स्वीकृत हो गया है, पर राष्ट्रीय स्तर पर राज्य के मूल संसाधनों पर नियंत्रण का विचार कम से कम उसूलन माना जा रहा है। यह अलग बात है कि खेतिहर-जैवविविधता के संरक्षण में किसानों की भूमिका को मान्यता है, पर जरूरी नहीं कि इसका नतीजा संसाधनों और ज्ञान पर उनकी दावेदारी में निकले।

वस्तुस्थिति यह है कि सम्पदा अधिकारों ने कृषि संबंधी व्यवसाय में लगी कंपनियों की स्थिति छोटे और गरीब किसानों की कीमत पर मजबूत की है। किसानों पर बीज बचाने, उन्हें दोबारा रोपने और बीज बेचने पर पाबंदियाँ झेलनी पड़ती हैं और संरक्षित बीजों पर रॉयल्टी देनी पड़ती है। जबकि उसूलन बदलती जरूरतों और हालात के मुताबिक सुधार, आविष्कार और बदलाव करने के लिए वनस्पति प्रजातियों पर उनका नियंत्रण कायम रहना चाहिए। यह भी हो सकता है कि विकासशील देशों में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के लागू होने से किसानों की इस क्षमता पर अमेरिका जैसे देशों की तरह असर न पड़े। लेकिन, जिन देशों में जेनेटिक प्रतिबंध प्रौद्योगिकी अपना ली गई है, वहाँ के किसानों के लिए शायद यह फायदा उपलब्ध न रहे। एफएओ की मान्यता है कि भूमंडलीकरण का खराब नतीजा जनता के कुछ तबकों के अधिकारवंचन में निकल सकता है।

खेती में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के कार्यान्वयन के साथ दो अंदेशे जुड़े हैं। पहला, अति-पेटेंटपात्रता के कारण जेनेटिक इंजीनियरिंग निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में आविष्कार की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के बजाय हतोत्साहित कर सकती है। समझा जाता है कि सम्पदा अधिकारों को प्राथमिक अनुसंधान सामग्री पर लागू नहीं किया जाना चाहिए। मौजूदा माहौल में हो रही बहस का यह एक पेचीदा अध्याय है। आजकल अनुसंधान के लिए प्राथमिक सामग्री के साथ-साथ पेटेंटशुदा प्रौद्योगिकी की भी जरूरत पड़ती है। जहाँ तक नीतिगत परिप्रेक्ष्य का प्रश्न है, प्लांड ब्रीडरों के अधिकार आंशिक रूप से इसी अवधारणा पर निर्भर हैं। दूसरा, गरीबी की रेखा से नीचे वाले लोगों के हितार्थ रिसर्च करने के आग्रह और व्यावसायिक हितों को ध्यान में रख कर रिसर्च करने के नजरियों का अंतर्विरोध हमें किसी ओर ही दिशा में ले जा सकता है। अभी तक जेनेटिक इंजीनियरिंग का फायदा पैदावार बढ़ाने के प्रयासों की शक्ति में नहीं हुआ है, बल्कि फसलों को लगने वाली बीमारियों और खर-पतवार खत्म करने के प्रयासों के रूप में है। जरूरत इस बात की है कि इन प्रौद्योगिकीय प्रयासों को गरीबों के हितार्थ किया जाए। इसके लिए पब्लिक सेक्टर की भूमिका बढ़ाने की जरूरत पड़ेगी। पब्लिक-प्राइवेट सहयोग जरूरी होगा। इसमें तरीका यह अपनाया जा सकता है कि प्राइवेट सेक्टर अपने अनुसंधान के नतीजे बाजार के लिए उत्पादन करने वाले किसानों को तो मुनाफे वाले दामों पर बेचे, पर गरीब किसानों को वही चीजें कम कीमत पर या मुफ्त मिलें।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के जैवविविधता और कृषि-जैवविविधता पर पड़ने वाले असर की जाँच-पड़ताल करना आवश्यक है। अधिकांश खेतिहर उत्पाद वनस्पतियों और पशु प्रजातियों के किसानों द्वारा चुनाव की देन हैं। लेकिन बौद्धिक सम्पदा अधिकार आम तौर पर आंतरिक प्रवृत्ति के तौर पर इन प्रजातियों को विस्थापित कर देते हैं, क्योंकि संरक्षित प्रजातियों से पैदावार ज्यादा मिलती है। इससे खेती में समरूपता बढ़ती है, विविधता का क्षय होता है और आम तौर पर कीटों और खर-पतवार के प्रति फसल की प्रतिरोधक्षमता भी कम होती है।

१९९४ से पहले विकासशील देशों में खेती के क्षेत्र में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का कार्यान्वयन नहीं किया था। वे ट्रिप्स प्रणाली से भिन्न शैली में अपनी खेती का प्रबंधन कर रहे थे। अंतर्राष्ट्रीय कानून, खासकर ट्रिप्स के तहत, सदस्य देशों को बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रणाली विकसित करने के मामले में विस्तृत निर्देश देता है। पर, किसानों के अधिकारों और पारंपरिक ज्ञान के संदर्भ में विकासशील देशों के लिए ये हितायतें आम तौर पर काफी अपर्याप्त साबित होती हैं। इस तरह इन देशों को दुहरे समायोजन से गुजरना पड़ता है। एक तरफ तो वे अंतर्राष्ट्रीय दायित्व स्वीकार करते हैं, और दूसरी ओर अपने लिए बेहद अहम मामलों में वे ऐसे कानून के मुताबिक चलने के लिए बाध्य भी हैं जो अपने-आप में अधूरा है।

इस मुकाम पर कुछ बातों पर संक्षेप में विचार करना जरूरी है। पहली बात तो यह है कि जिंसीकरण की प्रक्रिया का दायरा केवल बौद्धिक सम्पदा अधिकारों तक ही सांभल नहीं है। बाजार का फैलाव अन्य क्षेत्रों में भी होता जा रहा है। दूसरे, बौद्धिक सम्पदा अधिकार निजी क्षेत्र के बीज उद्योग को प्रोत्साहित करते हैं और खेती में जेनेटिक इंजीनियरिंग के विकास को बढ़ावा देते हैं। अमीर-गरीब देशों के संदर्भ में यहाँ संरक्षित प्रौद्योगिकियों का गरीब देशों को हस्तांतरण का मुद्दा भी इसमें शामिल है। तीसरे, बौद्धिक सम्पदा अधिकार आविष्कारों को पेटेंट करने के बारे में काफी विकसित हैं, पर किसानों के अधिकारों और पारंपरिक ज्ञान के मामले में हाल ही तक न तो उन्हें दिलचस्पी थी, और न ही इस संबंध में उनकी भूमिका विवाद से परे है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहमति न होने के कारण पीजीआरएफए ट्रीटी कृषक अधिकारों को एकमत से परिभाषित करने में असमर्थ है। वह यह जिम्मेदारी सदस्य देशों पर डाल देती है। पारंपरिक ज्ञान के मामले में डब्ल्यूआईपीओ ने कुछ प्रासंगिक मुद्दों पर विचार करना तो प्रारंभ किया है, पर अभी तक कोई अंतर्राष्ट्रीय कानूनी ढाँचा नहीं उभरा है। कुल मिला कर स्थिति यह है कि विकासशील देश किसानों के अधिकारों, जैव और जेनेटिक संसाधनों के संरक्षण और टिकाऊ इस्तेमाल, बायोपायरेसी को रोकने, पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण और लाभों में साझेदारी के लिहाज से अपना-अपना कानूनी ढाँचा विकसित करने के लिए काम कर सकते हैं।

## स. विकासशील देशों में कृषि संबंधित ज्ञान : साझेदारी से निजी क्षेत्र में विनियोग तक

जैसा कि हम जानते हैं कि शुरू में विकासशील देश ज्ञान और संसाधनों के मुक्त प्रवाह के उसूल के तहत खेती के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ जर्मप्लाज्म की साझेदारी कर सकते थे। साझेदारी की इसी पद्धति का नतीजा गरीब देशों के लिए हरित क्रांति में निकला था। खुली पहुँच की प्रणाली से विकासशील देशों को लाभ हुआ था, और खाद्य सुरक्षा मजबूत हुई थी।

लेकिन कुछ दशकों से जोर साझेदारी के बजाय निजी क्षेत्र के लिए विनियोग की तरफ होता जा रहा है। कृषि अनुसंधान में पब्लिक सेक्टर की भूमिका गौण होती जा रही है। विकसित देशों में कुछ दशक पहले यह प्रक्रिया धीरे-धीरे परवान चढ़ी थी, पर आजकल विकासशील देशों में यह अपेक्षाकृत तेज गति से सम्पन्न हो रही है। पब्लिक सेक्टर की जगह ज्यादातर कृषि अनुसंधान निजी क्षेत्र के हाथों में चला गया है। व्यवसायीकृत ट्रांसजेनिक वनस्पति प्रजातियों का विकास करके उन्हें बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के तहत संरक्षित कर लिया गया है। इसलिए प्रौद्योगिकी

हस्तांतरण का मसला पूरी तरह बाजार के आग्रहों के हाथ में है। मुक्त विनिमय का उसूल अब काम नहीं कर रहा है। विकसित देशों में जब ऐसा हुआ था, तो अन्य क्षेत्रों में साथ-साथ ही हुए तेज विकास, नए अवसरों की उपलब्धता और निजी बजट में खाद्य के पहलू की लगातार कम होती हुई अहमियत के कारण सामाजिक उथल-पुथल के अंदेशों से सफलतापूर्वक निबटा जा सका था। हो सकता है कि कुछ विकासशील देशों में भी ऐसा ही हो, लेकिन ज्यादातर में और खासकर अत्यल्प-विकसित देशों में इस प्रक्रिया के अधिक गंभीर सामाजिक-आर्थिक नतीजे हो सकते हैं। विकासशील देशों की क्या हालत बनेगी, इसका अंदाजा विकसित देशों के तत्कालीन हालात से नहीं लगाया जा सकता। विकसित देशों की सामाजिक-आर्थिक हालत बिल्कुल अलग तरह की थी। मसलन, १९६१ में जब यूपीओवी कन्वेंशन लागू किया गया तो यूरोपीय संघ के देशों में केवल बीस फीसदी आबादी ही कृषि पर निर्भर थी।

प्लॉट ब्रीडर अधिकारों का जो थोड़ा-बहुत तजरुबा उपलब्ध है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि वे भी बुनियादी खद्यान्न फसलों के बजाय फसलों के व्यवसायीकरण के रुझान को ही प्रोत्साहित करेंगे। जेनेटिक इंजीनियरिंग और जीवन रूपों के पेटेंट का अमीर देशों का अनुभव बताता है कि बुनियादी खद्यान्न फसलों के बारे में बहुत ही कम अनुसंधान और विकास किया गया है। विटामिन ए वाला ट्रांसजेनिक चावल भी पेटेंटों के चक्कर में बहुत देर में लोकार्पित हो पाया था। इसके अलावा यह चावल अपने स्वास्थ्य और पोषण संबंधी गुणों के कारण विवादास्पद भी हो गया है।

विकासशील देशों में खेती के क्षेत्र में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को लागू करने का सीधा मतलब होगा जेनेटिक इंजीनियरिंग को बढ़ावा देना और उनसे संबंधित बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में सारी पहलकदमी दे देना। ये कंपनियाँ उन्हीं देशों को जेनेटिक इंजीनियरिंग के फायदे देना चाहेंगी जहाँ उनके पेटेंटों को सुरक्षा मिलेगी। ट्रांसजेनिक बीजों के पब्लिक सेक्टर द्वारा विकास के अलावा होगा यह कि विकासशील देशों में जेनेटिक इंजीनियरिंग से जुड़े निजी उद्योगों के पाँव जमते चले जाएँगे। दूसरे, ऊँची पैदावार देने वाले बीज किसी न किसी रूप और मात्रा में बीजों की स्थानीय किस्मों का स्थान तो लेंगे ही। नए बीजों में अगर फायदा दिखा तो किसान पहले से चले आ रहे बीजों को छोड़ सकते हैं। इससे कृषि-जैवविविधता का लाजमी तौर पर क्षय होगा। वैसे भी बौद्धिक सम्पदा अधिकार का बुनियादी विचार संरक्षण और टिकाऊ इस्तेमाल के अनुकूल नहीं है। एक बार जब किसान व्यवसायीकरण की तरफ चले जाते हैं तो फिर उनका पारंपरिक खेती की तरफ आना मुश्किल होता है। ज्यादा आमदनी करने के लिए ज्यादा लागत की जरूरत होती है। जब तक फसलें कामयाब होती रहती हैं, किसान फायदे में रहते हैं, लेकिन जैसे ही फसलों की कामयाबी ओसत होती है, उन्हें कमर तोड़ने वाला घाटा होने लगता है। आंध्र प्रदेश के किसानों की तरह नतीजा आत्महत्या के सिलसिले में निकल सकता है। कपास किसानों की आत्महत्याओं के पीछे पेटेंट नहीं हैं, क्योंकि अभी खेती में पेटेंट गैर-कानूनी हैं। इसकी वजह खेती की ऊँची लागत और उसके कारण लिए जाने वाले कर्ज ही हैं।

जेनेटिक युज रिसट्रिक्शन टेक्नॉलाजी (जीयूआरटी) के कारण यह सुनिश्चित कर लिया गया है कि अगर बीजों को पहली फसल के बाद किसानों ने दोबारा बोआ, तो उनमें अँकुए नहीं फूटेंगे। इस प्रौद्योगिकी के कारण अब किसान न तो बीज बचा सकते हैं, और न ही उनका दोबारा इस्तेमाल कर सकते हैं। इसके कारण पेटेंट अधिकारों का कार्यान्वयन अपने आप हो जाता है। यह एक बेहद विवादास्पद प्रौद्योगिकी है। यूपीओवी ने २००३ में एक ज्ञापन के जरिए इसकी कड़ी आलोचना की थी और कहा था कि समाज को इसके फायदों से ज्यादा नुकसान हैं। इस ज्ञापन का अमेरिका की तरफ से विरोध किया गया। नतीजा यह निकला कि यूपीओवी ने इसे वापस ले कर इसकी जगह एक दृष्टि-पत्र पेश किया जिसमें जीयूआरटी की आलोचना नहीं थी। ट्रांसजेनिक बीजों के पर्यावरणीय प्रभावों के बारे में भी अनिश्चितताएँ हैं। अंदेश है कि इनसे पैदावार और आमदनी तो बढ़ेगी, पर आबो-हवा पर नकारात्मक असर पड़ सकता है।

विकासशील देशों में जेनेटिक इंजीनियरिंग खेती का पूरा आकलन अभी तक नहीं हो पाया है। भारत में बीटी कॉटन लागू करने के नतीजे ऐसे नहीं हैं कि उन्हें निर्विवाद व्यावसायिक कामयाबी कहा जा सके। विकासशील देश जेनेटिक इंजीनियरिंग को तभी अपना सकते हैं जब वे मान लें कि उनके यहाँ खेती का सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य बदल गया है, और वे उसे बड़े पैमाने पर की जाने वाली व्यावसायिक गतिविधि मान लें। तब उनकी समस्याएँ और लक्ष्य भी भिन्न होंगे बौद्धिक सम्पदा अधिकार लागू करना उनके लिए मुफीद होगा। सामाजिक नजरिए से और पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य से ट्रांसजेनिक बीजों का इस्तेमाल खतरों से खाली नहीं है। इन बीजों के इस्तेमाल की तुलना हरित क्रांति से करने पर हम कुछ उपयोगी नतीजों पर पहुँच सकते हैं।

हरित क्रांति में ज्यादा पैदावार वाले बीजों और रासायनिक उर्वरक व कीटनाशकों के इस्तेमाल करने का पैकेज शामिल था। भारत को इससे फायदा हुआ और इसी के कारण देश खाद्य में आत्मनिर्भर हो गया। लेकिन, अस्सी के दशक के उत्तरार्ध से हरित क्रांति के नुकसान दिखने लगे। नए बीजों ने थोड़े समय के लिए पैदावार तो बढ़ाई, पर उसकी महँगी पर्यावरणीय कीमत चुकानी पड़ी। नलकूपों का बहुत ज्यादा इस्तेमाल होने के कारण जमीन का जलस्तर गिर गया। बड़ी सिंचाई परियोजनाओं से मिट्टी दलदली और खारी हो गई। रासायनिकों के इस्तेमाल के कारण जमीन की उर्वरता कम हुई और कीटनाशकों के कारण जल प्रदूषित होने लगा। हरित क्रांति के कारण मोनोकल्चर फैला जिसके कारण प्रजातियों का समरूपीकरण हो गया और कीट, खरपतवार और अन्य बीमारियों का खतरा बढ़ गया। कृषि-जैवविविधता का क्षय हुआ। लगातार पैदावार बढ़ने के दावों पर भी सर्वालिया निशान लगा। महँगे बीज, ज्यादा पानी की जरूरत, सहयोगी सामग्री के लिए अधिक निवेश की जरूरत और समरूप किस्म के बीजों का स्थानीय हालात के मुताबिक न होना हरित क्रांति की समस्याओं में शामिल था। फिलीपींस का एक अध्ययन यह भी बताता है कि वहाँ के चावल किसानों की पैदावार तो ७० फीसदी बढ़ गई, लेकिन चावल का बिक्की दाम पचास फीसदी गिर गया और रासायनिक सामग्री के इस्तेमाल के कारण खेती की लागत ३५८ फीसदी बढ़ गई। कुल नतीजा यह निकला कि खेती से आमदनी में ५२ फीसदी गिरावट आई। इन्हीं सब बातों की वजह से आजकल हरित क्रांति की साख नीति निर्माताओं की निगाह में गिर चुकी है।

हरित क्रांति और जेनेटिक इंजीनियरिंग में प्रौद्योगिकीय फर्क तो है ही, साथ ही वे एक और मायने में बुनियादी रूप से भिन्न हैं। हरित क्रांति ज्ञान, प्रौद्योगिकी और संसाधनों के मुक्त विनिमय पर आधारित थी। उसके पीछे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किए गए संयुक्त प्रयास थे। जबकि जेनेटिक इंजीनियरिंग बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के जरिए निजी विनियोग पर आधारित है। लेकिन, इन अंतरों के बावजूद खेती के प्रौद्योगिकीय हल के रूप में जेनेटिक इंजीनियरिंग हरित क्रांति के फायदे-नुकसानों से सबक सीख सकती है। हरित क्रांति में भी बीज बचाने पर तकनीकी पाबंदी तो नहीं थी, पर हर साल बचे हुए बीजों की मात्रा कम होती जाती थी जिससे किसानों को हर बार बीज खरीदने ही पड़ते थे। हरित क्रांति का

अनुभव बताता है कि भारत जैसे विकासशील देशों में केवल पैदावार बढ़ाने पर जोर देने से काम नहीं चलने वाला है। बढ़ी हुई पैदावार के बावजूद कुपोषण और गरीबी की समस्या खत्म नहीं होती। दरअसल, खुशहाली का संबंध खाद्य के वितरण, धरती और बीज पर नियंत्रण के मुद्दों से है।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों द्वारा संरक्षित बीजों से होने वाली खेती छोटे किसानों की स्थापित कृषि प्रबंधन विधियों के खिलाफ जा सकती है। ये अंतर दो अलग-अलग ज्ञान पद्धतियों का है। एक का भरोसा अगर केवल वित्तीय इजारेदारी पर है, तो दूसरा टिकाऊ विकास के प्रतिमान पर भरोसा करती है। प्लांट ब्रीडर्स अधिकारों की परिभाषा में भी यह फर्क झलकते देखा जा सकता है। यूपीओवी कन्वेंशन के अनुसार किसी किसान को ब्रीडर की मान्यता मिल ही नहीं सकती जब तक उसके द्वारा विकसित प्रजाति एकदम भिन्न तरह की, समरूप और स्थिर न हो।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से संरक्षित किए जा सकने वाले वैज्ञानिक ज्ञान और किसानों के संरक्षित न किए जा सकने वाले ज्ञान के बीच द्विभाजन पैदा हो जाता है। नतीजे के तौर पर पारंपरिक ज्ञान के धारकों को अपना ज्ञान बचाने के लिए उसे गोपनीय रखने की कोशिश और दावा करना पड़ सकता है। लेकिन, अगर वे अपना ज्ञान गोपनीय रखने की कोशिश करेंगे या उसकी गोपनीयता का दावा करेंगे तो उसका महत्त्व संस्थागत प्रयासों के जरिए विकसित होने वाली प्रौद्योगिकी और प्रबंधन विधियों के मुकाबिले कमतर समझे जाने का खतरा पैदा हो जाएगा। इसके अलावा बौद्धिक सम्पदा अधिकार निजी प्रयासों को लाभकारी बनाते हैं, जबकि किसान के प्रयास व्यक्तिगत कम और सामुदायिक ज्यादा होते हैं। ऐसा लगता है कि भारत जैसे देश में जहाँ निजी क्षेत्र का आकार काफी बड़ा है, बौद्धिक सम्पदा अधिकार बड़ी और स्थानीय बीज कंपनियों के लिए फायदेमंद साबित हो सकते हैं। लेकिन, जिन देशों के बाद ब्रीडिंग की क्षमता बहुत कम है, वहाँ नहीं लगता कि बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आने से स्थानीय क्षमताएँ विकसित हो सकेंगी।

## ७ जीवन रूपों के पेटेंट, प्लांट ब्रीडरों और किसानों के अधिकार

इस अध्याय में मुख्यतः तीन तरह के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की चर्चा की गई है। पहला अधिकार जीवन रूपों को पेटेंट कराने से संबंधित है जिसका सीधा संबंध कृषि के क्षेत्र में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से है। दूसरा और तीसरा अधिकार प्लांट ब्रीडरों और किसानों से जुड़ा है। जैसा कि हम जानते हैं कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के ये तीनों रूप खेती के क्षेत्र में ज्ञान और जर्मप्लाज्म के मुक्त प्रवाह के पहले से स्थापित उसूल और व्यवहार के विकल्प के रूप में प्रस्तावित किए गए हैं।

### अ. जीवन रूपों के पेटेंट और कृषि का क्षेत्र

निजी क्षेत्र में जेनेटिक इंजीनियरिंग के विकास के बाद जीवन रूपों को पेटेंट कराने के जरिए ही इस प्रौद्योगिकी के उत्पादों का सम्पदा संरक्षण संभव है। केवल अमेरिका में ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया में इस तरह के पेटेंटों के लिए जरूरी कानूनी ढाँचे के विकास की प्रक्रिया चल रही है।

१९३० के अमेरिकी प्लांट पेटेंट एक्ट से पहले माना जाता था कि कुदरत की देन पर किसी का पेटेंट नहीं हो सकता। पर, इस कानून के बाद ऐसे आविष्कारकों को अपनी खोजें पेटेंट कराने का अधिकार मिल गया जो बिना किसी यौन समागम के नई वनस्पति प्रजातियाँ खोज सकते थे, या बना सकते थे। १९३० और १९८० के बीच में वनस्पति प्रजातियों के लिए अमेरिका और यूरोप में प्लांट ब्रीडर अधिकारों के रूप में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का एक वैकल्पिक ढाँचा परवान चढ़ा। यहाँ स्पष्ट कर देना जरूरी है कि प्लांट ब्रीडर अधिकार और पेटेंट अधिकारों में फर्क होता है। इसलिए इस अध्याय में दोनों की अलग-अलग चर्चा की गई है।

१९८० में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने डायमंड बनाम चक्रबर्ती नामक मुकद्दमे का फैसला देते हुए कृत्रिम तरीकों से रचे गए जीवन रूपों की पेटेंटपात्रता स्वीकार करके जेनेटिक इंजीनियरिंग के तेज विकास का रास्ता खोल दिया। अदालत ने आविष्कार और खोज के बीच अंतर करते हुए माना कि बेक्टरीयम बनाना एक मानवीय आविष्कार है और पेटेंट योग्य है। इसके बाद अमेरिका में माइक्रो-ऑर्गनिज्म की पेटेंटपात्रता पर मुहर लग गई। इसके बाद बहस चालू हुई कि क्या जीव-जंतुओं और वनस्पतियों को भी पेटेंट किया जा सकता है? इसके पक्ष में फैसला १९८५ में आया और अमेरिकी पेटेंट और ट्रेडमार्क ऑफिस ने काफी बहस-मुबाहिसे के बाद पहले ट्रांसजेनिक पशु को १९९८ में पेटेंट करने की इजाजत दी। इसके बाद तो इस तरह की पेटेंट अर्जियों की बाढ़ आ गई। जिन के पेटेंट को लेकर इस बारे में खासा विवाद है। पहले अपनी प्राकृतिक स्थिति से अलग किए गए जीन को आविष्कार के बजाय खोज माना जाता था, लेकिन अब अगर परिशुद्ध किए गए जीन की उपयोगिता का स्पष्ट उल्लेख किया जा रहा है तो उसे पेटेंटपात्रता के दायरे में माना जा सकता है। वैसे इन अधिकारों का दायरा अभी भी विवादग्रस्त है। कनाडा के सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में निम्न और उच्च जीवन रूपों के बीच फर्क करते हुए जेनेटिकली संशोधित चूहे को मेन्यूफैक्चर या पदार्थ संरचना की श्रेणी में मानने से यह कह कर इनकार कर दिया कि उच्च जीवन रूपों को पेटेंट पात्रता पर संसद ने विचार नहीं किया है। कोर्ट ने यह भी कहा कि यह एक पेचीदा मसला है जिसके साथ व्यावहारिक, नैतिक और पर्यावरणीय सरोकार जुड़े हुए हैं। इसलिए, जेनेटिकली संशोधित चूहे को पेटेंट कराने के लिए दी गई अर्जी खारिज कर देने का फैसला एकदम सही है। हालाँकि यह फैसला विकसित देशों में चल रहे आम रुझान के खिलाफ जाता है, पर कनाडा के सुप्रीम कोर्ट के कुछ हालिया फैसले बताते हैं कि निम्न और उच्च जीवन रूपों के बीच पेटेंटपात्रता का फर्क तेजी से कम हो रहा है।

कुल मिला कर जेनेटिक इंजीनियरिंग और पेटेंटपात्रता के बढ़ते दायरे के मामले में यूरोप अमेरिका के साथ कदम से कदम मिला कर चल रहा है। दूसरी तरफ यूरोप में जीवन रूपों को पेटेंट कराने के मामले में कुछ चौकन्नापन भी है। कौंसिल ऑफ यूरोप की पार्लियामेंटरी एसेंबली ने इस बारे में कुछ नैतिक आपत्तियाँ उठाई हैं। यूरोपियन पेटेंट कन्वेंशन (ईपीसी) के तहत जेनेटिक संसाधनों से संबंधित पेटेंटपात्रता पर यूरोपीय देश ट्रिप्स समझौते की तरह ही आचरण करते हैं। लेकिन ईपीसी में कुछ बातें अलग भी हैं। मसलन, अनुच्छेद ५३ सार्वजनिक नैतिकता के खिलाफ जाने वाले आविष्कारों को पेटेंटपात्रता से अलग कर देता है। कुछ और भी अपवाद हैं। जैसे, वनस्पति प्रजातियाँ, जीव-जंतु प्रजातियाँ और अनिवार्यतः जैविक प्रक्रियाओं का पेटेंट नहीं किया जा सकता। यूरोपीय पेटेंट ऑफिस ने इन अपवादों का कारण प्लांट ब्रीडर अधिकारों के



संरक्षा के लिए बने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कायदे-कानूनों को माना। नतीजा यह निकला कि केवल जेनेटिकली निर्धारित रूप की पेटेंटपात्रता पर रोक लगी, न कि वनस्पति या जीव-जंतु की पेटेंटपात्रता पर। वनस्पति कोशिकाएँ भी पेटेंटपात्रता के लिए उपयुक्त मानी गईं। इनलार्ज बोर्ड ऑफ अपील द्वारा वनस्पति और वनस्पति की किस्मों के बीच फर्क की जाँच भी की गई है। ईपीसी के अलावा यूरोपीय देशों के लिए जैवप्रौद्योगिकी आविष्कारों के कानूनी संरक्षण के लिए दिए गए निर्देश की संबंधित अहमियत भी काफी है। यूरोपीय संसद में यह कानून खासा विवादास्पद साबित हुआ है। लंबी बहस के बाद १९९८ में इसे पारित किया गया और फिर इसे नाकाम चुनौती भी दी गई। यह निर्देश जैवप्रौद्योगिकी आविष्कारों को पेटेंट अधिकारों द्वारा बेहद व्यापक दायरे में संरक्षित करने के उसूल पर टिका है। इसके कारण आविष्कार और खोज के बीच पारंपरिक फर्क काफी हद तक कम हो गया है। यह निर्देश पेटेंटपात्रता के बारे में कुछ अपवादों का प्रावधान भी करता है जिसके अनुसार वनस्पति और जीव-जंतु की किस्मों और जैविक प्रक्रियाएँ पेटेंट नहीं की जा सकतीं। लेकिन, इसके साथ-साथ यह निर्देश ऐसे आविष्कारों को पेटेंटपात्रता की श्रेणी में मानता है जिनका उपयोग किसी एक किस्म तक सीमित न हो। इसके अलावा यह निर्देश ईपीसी और ट्रिप्स के तर्ज पर किसी आविष्कार की पेटेंटपात्रता को रोकने के पक्ष में है अगर उसके व्यावसायिक दोहन के चलते सार्वजनिक शांति भंग हो रही या नैतिकता का उल्लंघन हो रहा हो। इस प्रतिबंध के दायरे में मानव-क्लोनिंग और जीव-जंतुओं की जेनेटिक पहचान बदलने की प्रक्रियाएँ भी आती हैं, खास तौर से तब जब इन कामों से मानव या जीव-जंतु को किसी तरह का मेडिकल लाभ न हो रहा हो और उन्हें अनावश्यक कष्ट होने का अंदेशा हो।

ट्रिप्स समझौते की खास बात यह है कि वह पेटेंट का दायरा विस्तृत करने के बजाय वह जीवन रूपों की पेटेंटपात्रता सभी सदस्य देशों पर लागू करता है, उन देशों पर भी जहाँ नब्बे के दशक की शुरुआत में किसी तरह का जैवप्रौद्योगिकी उद्योग नहीं था। ट्रिप्स के तहत पेटेंटपात्रता के जो अपवाद हैं उनमें माइक्रोबायोलॉजिकल प्रक्रियाएँ शामिल नहीं की गई हैं। इससे पता लगता है कि यह समझौता ब्रीडिंग और सुधार के पारंपरिक तरीकों तक ही अपवादों को सीमित करना चाहता है।

## ब. प्लांट ब्रीडर अधिकार

पारंपरिक रूप से वनस्पति की किस्मों के प्रबंधन के साथ बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का ताल्लुक नहीं रहा है। समझा जाता रहा है कि खेती हर एक की बुनियादी खाद्य जरूरतें पूरी करती है, इसलिए नई वनस्पति-किस्मों को पेटेंट प्रणाली जैसे मुनाफा केंद्रित बंदोबस्तों से दूर रखा जाना चाहिए। बीसवीं सदी के आखिरी सालों में अमेरिकी और यूरोपीय देशों में यह समझ धीरे-धीरे बदली। एक आर्थिक गतिविधि के तौर पर कृषि का महत्त्व घटने के साथ ही अनुसंधान में सरकारी भूमिका घट गई। निजी क्षेत्र में बीज उद्योग का विकास हुआ। चूँकि बीजों को एक बार खरीदने के बाद किसानों द्वारा कई-कई बार इस्तेमाल किया जा सकता था, इसलिए वनस्पति की किस्मों के कानूनी संरक्षण का आग्रह शुरू हुआ ताकि इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र को विकास के लिए प्रोत्साहन मिल सके। इसका कई नजरियों से विरोध किया गया। जीवन रूपों को पेटेंट कराने को ऊसूलन गलत मानने वालों ने और किसानों के अधिकारों की कीमत पर बीज उद्योग के निजीकरण का विरोध करने वालों ने इस पर आपत्ति की। इसके अलावा पेटेंट प्रणाली के पैरोकारों ने भी इसका विरोध यह कह कर किया कि इससे आविष्कारों का महत्त्व घट जाएगा क्योंकि वनस्पति की नई किस्म खोजना वैज्ञानिक आविष्कार न हो कर दरअसल पहले से मौजूद किस्म में सुधार ही होता है।

इसी विरोध और उसके आधारभूत तर्कों से निबटने के लिए संकर किस्म के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का विकास किया गया जिन्हें प्लांट ब्रीडर अधिकार कहते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इंटरनेशनल कन्वेंशन फार दि प्रोटेक्शन ऑफ न्यू वेराइटीज़ ऑफ प्लांट्स (यूपीओवी कन्वेंशन) के रूप में इन अधिकारों को मान्यता दी गई। १९६१ के बाद से १९७८ और १९९१ में इस बंदोबस्त में संशोधन किए जा चुके हैं। अगर कोई नया देश इसका सदस्य बनना चाहता है तो उसे १९९१ वाला कानून मानना पड़ेगा, पर पहले से सदस्य देशों के लिए यह जरूरी नहीं है। इस तरह कुछ देश १९७८ का एक्ट मानते हैं, और कुछ १९९१ का। पहले इस कन्वेंशन की सदस्यता पश्चिमी यूरोपीय देशों और ओईसीडी देशों तक ही सीमित थी, लेकिन ट्रिप्स समझौते ने इस हालत को काफी-कुछ बदल दिया, क्योंकि प्लांट ब्रीडर अधिकारों को अंगीकार करके ट्रिप्स समझौते के पालन की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है।

यूपीओवी के तहत वनस्पति की किस्मों का संरक्षण किया जा सकता है, बशर्ते वे किस्में नवीनता, भिन्नता, स्थिरता और समरूपता की कसौटियों पर खरी उतरती हों। यहाँ नवीनता की अवधारणा पेटेंट कानून की अवधारणा से अलग है। उस कानून में नवीनता का संबंध आविष्कार से है, पर यूपीओवी के संदर्भ में इसका मतलब केवल उस किस्म के व्यवसायीकरण से है। यूपीओवी कन्वेंशन वनस्पति की किसी किस्म को नवीन मानने के लिए जरूरी समझता है कि आवेदन से एक साल पहले तक उस देश में और चार साल पहले तक अन्य सदस्य देशों में उस किस्म का व्यवसायीकरण न हुआ हो। पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के संदर्भ में नवीनता का यह विचार प्रश्नांकित होने योग्य है। भिन्नता का मतलब है कि वनस्पति की किस्म किसी और प्रचलित किस्म से स्पष्ट रूप से अलग तरह की होनी चाहिए। स्थिरता का मतलब है बार-बार उत्पादन और प्रसार के बावजूद उसकी बनावट वैसी की वैसी ही रहनी चाहिए। और, समरूपता का मतलब है कि प्रसार के बावजूद संबंधित वनस्पति के गुणों में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

यूपीओवी कन्वेंशन ब्रीडर को कुछ अधिकार देता है जिनमें पेटेंटधारक जैसी इजारेदारी शामिल नहीं होती। लेकिन, ब्रीडर को आम तौर पर संरक्षित किस्मों को उत्पादन और पुनः उत्पादन, प्रसार के लिए उनके अनुकूलन, उन्हें बिक्री के लिए पेश करने, व्यवसायीकरण करने, आयात-निर्यात करने और इन्हें सब मकसदों से उनका भंडारण करने का अधिकार होता है। १९९१ का एक्ट कुछ खास परिस्थितियों में संरक्षित किस्म से हुई फसल से मिली सामग्री तक संरक्षण का विस्तार कर देता है। १९७८ के एक्ट के अनुसार कोई किस्म किसी ऐसे देश में ले जाई जा सकती थी जहाँ नई किस्मों के लिए कानूनन संरक्षण मुहैया नहीं है, और वहाँ उसकी पैदावार करके उसे उद्गम वाले देश को निर्यात किया जा सकता था। १९७८ के एक्ट में ब्रीडर को इस तरह के दोहन का कोई मेहनताना नहीं मिलता था जिसे देने की व्यवस्था नए एक्ट में कर दी गई है। १९७८ के कानून में संरक्षण की अवधि १५ और १८ वर्ष थी, जबकि १९९१ के एक्ट में यह अवधि बढ़ा कर १५ से २० और २५ वर्ष तक कर दी गई है। संरक्षण के दायरे में भी परिवर्तन हुए हैं। मसलन, १९९१ का एक्ट ब्रीडर को ऐसे हालात से बचाता है जिसके तहत उनकी किस्मों में सीमित परिवर्तन करके उनका दोहन किया जा सकता था। यह एक्ट पुराने सदस्य देशों पर कई तरह की किस्मों के संरक्षण के लिए पाँच

साल के भीतर-भीतर कार्यान्वयन का दबाव डालता है। यह समय सीमा नए सदस्य देशों के लिए बढ़ा कर दस साल कर दी गई है। ब्रीडर के अधिकार सीमित करने के मामले में भी ये दोनों एक्ट अलग-अलग प्रावधान करते हैं। १९७८ के एक्ट के तहत यह व्यापक समझ बनती थी कि ब्रीडर अधिकारों की सीमा किसानों के लिए विशेषाधिकार की गुंजाइश खोलती है। यानी किसान पिछले साल की फसल की सामग्री का इस्तेमाल कर सकते थे और संरक्षित बीजों का दूसरे किसानों से मुक्त आदान-प्रदान किया जा सकता था। दूसरे, ब्रीडर अधिकार निजी तौर पर की गई गैर-व्यावसायिक प्रयोगधर्मी ब्रीडिंग गतिविधियों पर और किसी संरक्षित किस्म का इस्तेमाल करके कोई अन्य किस्म ब्रीड करने पर लागू नहीं होते हैं। पर १९९१ के एक्ट ने ब्रीडरों के अधिकार और मजबूत किए हैं। अब ब्रीडरों को फसल से प्राप्त सामग्री पर पूरा अधिकार दे दिया गया है और खोज व विकास के बीच फर्क खत्म कर दिया गया है। निजी तौर पर की गई गैर-व्यावसायिक प्रयोगधर्मी ब्रीडिंग गतिविधियाँ और किसी संरक्षित किस्म का इस्तेमाल करके कोई अन्य किस्म ब्रीड करना ही इस एक्ट के लिए अपवाद की श्रेणी में आता है। बीज बचाने की किसानों को मिली सुविधा ऐच्छिक बना दी गई है।

पेटेंट और प्लांट ब्रीडर अधिकारों में फर्क के लिहाज से किसानों के विशेषाधिकारों का प्रश्न महत्वपूर्ण है। अमेरिका में इससे संबंधित दो रुझान देखे जा सकते हैं। वहाँ एक बीज कंपनी ने किसानों पर मुकदमा किया कि उन्होंने संरक्षित बीजों द्वारा पैदा की गई फसल को दूसरे किसानों को बेचा ताकि वे उसका बीज के रूप में इस्तेमाल कर सकें। प्लांट वेराइटी प्रोटेक्शन एक्ट के तहत किसानों का बचाव हो सकता था, पर अदालत ने कहा कि बचाए हुए बीजों को फिर से इस्तेमाल करने के मकसद से बिक्री हेतु नहीं उगाया जा सकता। इस तरह किसानों का विशेषाधिकार काफी सीमित हो गया। दूसरे, अस्सी के दशक में जीवन रूपों के पेटेंट की शुरुआत होने के बाद से पेटेंट अधिकारों और ब्रीडर अधिकारों के बीच अंतर घटता जा रहा है। अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में पुष्टि की है कि वनस्पति की नई किस्मों का आविष्कार करने वाले पेटेंट के लिए अर्जी लगा सकते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी देखें तो १९७८ के एक्ट में वनस्पति की किस्म या तो पेटेंट अधिकार के जरिए या फिर ब्रीडर अधिकार के जरिए संरक्षित की जा सकती थी। पर १९९१ के एक्ट दोनों तरह के संरक्षण एक साथ पाने का अधिकार देता है।

फिलहाल ट्रिप्स के तहत भी वनस्पति की किस्मों और दूसरे जीवन रूपों में फर्क उसूलन कायम है। ट्रिप्स की एक प्लांट वेराइटी प्रोटेक्शन प्रावधान ने यूपीओवी को १९९४ के मुकाबले अंतर्राष्ट्रीय रूप से अधिक अहम बना दिया है। यूपीओवी अंगीकार करके सदस्य देश ट्रिप्स के अनुच्छेद २७(३)बी के तहत अपनी वचनबद्धताएँ पूरी कर सकते हैं, इसलिए कई देशों ने उसे अंगीकार करना स्वीकार कर लिया है। इस तरह ट्रिप्स की न्यूनतम कसौटियों के कारण प्लांट ब्रीडर अधिकार पहले से कहीं अधिक देशों तक फैल गए हैं, जबकि शुरुआत में यूपीओवी में अत्यधिक यंत्रिकृत और बड़े स्तर पर खेती करने वाले देशों को ही दिलचस्पी थी। चूँकि यूपीओवी में नए आने वाले देशों को १९९१ का ही एक्ट मानना पड़ता है, इसलिए विकासशील देशों के लिए १९७८ के एक्ट के प्रावधान प्रासंगिक नहीं रह गए हैं। यह अलग बात है कि अगर डब्ल्यूटीओ का कोई सदस्य देश ट्रिप्स के मुताबिक घरेलू स्तर पर कानूनी ढाँचा विकसित कर रहा है तो फिर उसे किसी अन्य अंतर्राष्ट्रीय संधि का सदस्य बनने की जरूरत नहीं रह जाती। मसलन, भारत ने १९७८ और १९९१ के कानूनों के कई पहलुओं को मिला कर अपना संबंधित घरेलू कानून विकसित करने की कोशिश की है।

आज स्थिति यह है कि जेनेटिक इंजीनियरिंग के इस युग में वनस्पति-किस्मों की सटीक परिभाषा की आवश्यकता महसूस की जा रही है। यह जरूरत भारत जैसे विकासशील देशों के लिए भी उतनी ही है (क्योंकि उसने वनस्पति-किस्मों को पेटेंटपात्रता से अलग रखा है), जितनी ईपीसी को। इनलार्ड बोर्ड ऑफ अपील के अनुसार किसी भी तरह से उत्पादित वनस्पति की किस्म को अनुच्छेद ५३(बी) के तहत पेटेंटपात्रता से अलग रखा जाना चाहिए।

कुल मिला कर प्लांट ब्रीडर अधिकार प्रणाली दो नजरियों से समझी जा सकती है। एक तरफ वे देश हैं जो पिछले बीस साल से जेनेटिकली बनाए गए बीजों के उत्पादन में लगे हैं और जिन्हें पेटेंट किया जा सकता है। ऐसे देशों को प्लांट ब्रीडर अधिकारों में वहाँ दिलचस्पी हो सकती है जहाँ उसकी वजह से उन्हें दुहरे संरक्षण का फायदा मिल सकता है। लेकिन अमेरिका जैसे देश को इन अधिकारों में कुछ कम ही दिलचस्पी होगी, क्योंकि वहाँ जेनेटिक इंजीनियरिंग तो बहुत विकसित है ही, साथ ही पारंपरिक बीज कंपनियाँ जैवप्रौद्योगिकी वाली कंपनियों के साथ तेजी से एकाकार होती जा रही हैं। दूसरी तरफ विकासशील देशों के बीच प्लांट ब्रीडर अधिकार बहुत लोकप्रिय हुए हैं क्योंकि ये देश वनस्पति की किस्मों को पेटेंटपात्र बनाने के लिए तैयार नहीं हैं। वे यूपीओवी के जरिए एक वैकल्पिक प्रणाली चाहते हैं। यूपीओवी बंदोबस्त जेनेटिक इंजीनियरिंग में दिलचस्पी न रखने वाली पारंपरिक बीज कंपनियों के लिए केंद्रीय महत्त्व का है।

जैसा कि हम जानते हैं कि १९९१ का यूपीओवी निजी क्षेत्र के दबदबे वाले विकसित देशों की प्राथमिकताओं को ध्यान में रख कर बनाया गया था। यह अपने ही १९७९ वाले संस्करण के मुकाबिले एक तरफ तो प्लांट ब्रीडरों को और ज्यादा अधिकार देता है, और दूसरी तरफ पेटेंटधारकों को ब्रीडर अधिकारों की कीमत पर दुहरे संरक्षण का प्रावधान करता है।

विकासशील देशों ने प्लांट वेराइटी प्रोटेक्शन पर सन् २००० के बाद ही अमल शुरू किया है। अफ्रीका में केवल केन्या, दक्षिण अफ्रीका और जिम्बाब्वे ने ट्रिप्स से पहले प्लांट वेराइटी प्रोटेक्शन अंगीकार किया था। केन्या ने तो सत्तर के दशक में ही यह बंदोबस्त अपना लिया था। १९९४ के बाद स्थापित प्लांट ब्रीडर्स राइट्स ऑफिस में १९९७ से २००३ के बीच ५७८ अर्जियाँ दाखिल की गईं जिनमें ४६ फीसदी आवेदन स्थानीय लोगों की तरफ से किए गए थे। प्लांट वेराइटी प्रोटेक्शन की शुरुआत होने से पब्लिक सेक्टर ब्रीडिंग में भारी कमी आई है। यूपीओवी देशों में प्लांट ब्रीडर अधिकारों का इस्तेमाल ज्यादातर फलों की खेती में हुआ है। अनाज वगैरह की खेती के लिए इसका प्रयोग आंशिक ही है। इसलिए खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से ब्रीडर अधिकारों की भूमिका कम आश्चर्यदायक ही है।

## स. किसानों के अधिकार

ऐतिहासिक रूप से किसानों के अधिकार उस अंतर्राष्ट्रीय बहस का परिणाम हैं जो जेनेटिक संसाधनों के दाताओं और प्रौद्योगिकी दाताओं को मिलने वाले फायदों के असंतुलन पर होती रही है। व्यावसायिक प्लांट ब्रीडिंग के मुकाबिले किसानों की गतिविधियों को कमतर मानने का सवाल भी इस बहस का अंग रहा है। व्यावसायिक ब्रीडरों को तो कानूनी संरक्षण के फायदे थे, पर किसानों के लिए किसी फायदे या किसी



मुआवजे की कोई व्यवस्था नहीं थी। लेकिन किसानों के अधिकारों का सवाल इसलिए विवादास्पद हो गया कि उनके कारण व्यावसायिक अनुसंधानकर्ताओं के लिए जेनेटिक संसाधनों का मुक्त इस्तेमाल मुश्किल हो जाने का अंदेशा माना जाता है। अगर किसानों को कोई अधिकार न भी दिया जाए, तो भी अगर उनका योगदान मान लिए जाने की सूरत में फायदों में भागीदारी का प्रश्न पैदा हो जाता है। तीसरे, अगर किसानों के अधिकारों को बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की तरह देखा जाएगा तो वह अन्य बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से होड़ करने लगेगा। जाहिर है कि इन तीनों नजरियों से प्लांट ब्रीडिंग उद्योग को किसानों के अधिकारों की अवधारणा पर शक होना स्वाभाविक ही है।

इस समय अंतर्राष्ट्रीय कानून कई बुनियादी अधिकार देता है जिनमें बीज बचाना और उनका विनिमय शामिल है। प्लांट ब्रीडर अधिकारों के तहत उन्हें कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं जिनकी ऊपर चर्चा की जा चुकी है। किसानों के अधिकारों को छोटे किसानों के समुदायों द्वारा किए गए योगदान के मुआवजे के रूप में भी देखा जा सकता है। पीजीआरएफए ट्रीटी के देश इस नजरिए को प्राथमिकता देते हैं। चौथे, कानून के मुताबिक किसानों के अधिकारों को संपूर्ण बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की तरह भी कल्पित किया जा सकता है। चूंकि पीजीआरएफए ट्रीटी किसानों के अधिकारों की सम्पत्ति अधिकारों की तरह स्पष्ट व्याख्या नहीं करती, इसलिए यह अवधारणा जेनेटिक संसाधनों के संदर्भ में संरक्षण और विकास के लिए कृषक समुदायों द्वारा योगदान को मान्यता दिलवाने के नीतिगत औजार की तरह ही रह जाती है। लेकिन यह ट्रीटी जोर देती है कि किसानों के अधिकारों को राष्ट्रीय स्तर पर बन रहे कानूनी ढाँचे के तहत ठोस रूप दिया जाना चाहिए।

प्लांट जेनेटिक संसाधनों के बारे में इंटरनेशनल अंडरटेकिंग का नजदीकी सरोकार किसानों के अधिकारों से है। यह अंडरटेकिंग इन अधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने का यत्न करती है, लेकिन उसकी परिभाषा ठोस न हो कर सामान्य रह जाती है। वह अधिकारों का स्पष्ट सूत्रीकरण नहीं करती। अगर इस परिभाषा को पढ़ा जाए तो पता चलता है कि किसानों की बौद्धिक सम्पदा पर उनके अधिकारों को इसमें शामिल ही नहीं किया गया है। वह कृषि-जैवविविधता की सुरक्षा करने में कृषक समुदायों के सामूहिक योगदान को मान्यता देने से थोड़ा आगे ही जा पाती है।

इस मान्यता को कार्यरूप में बदलने का एकमात्र व्यावहारिक तंत्र प्लांट जेनेटिक संसाधनों के लिए बनाए गए अंतर्राष्ट्रीय कोष के रूप में है। यह कोष मान कर चलता है कि किसानों के अधिकार उनमें निजी तौर पर या सामुदायिक तौर पर निहित न हो कर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में निहित हैं। इसलिए किसानों को जो भी मिलना है, वह कोष उन्हें या उनके समुदायों को न दे कर उनकी सरकारों को दिया जाना है। कुल मिला कर कोष की भूमिका कृषि जेनेटिक इंजीनियरिंग में विभिन्न देशों को अनुसंधान क्षमता निर्माण के लिए आर्थिक मदद देने की ज्यादा है। किसानों को व्यक्तिगत या सामुदायिक रूप से सीधे कोई फायदा नहीं पहुंचने वाला।

कुल मिला कर स्थिति यह है कि इंटरनेशनल अंडरटेकिंग में किसानों के अधिकारों की प्रणाली जेनेटिक इंजीनियरिंग के दायरे में कुछ प्रोत्साहन और मुआवजे की व्यवस्था तो करती है, लेकिन पारंपरिक ज्ञान पर किसानों के व्यक्तिगत और सामुदायिक अधिकार को परिभाषित नहीं करती। कोष द्वारा दिए गए आर्थिक फायदों का अभी तक कोई ठोस रूप नहीं बन पाया है, क्योंकि दाता देशों ने अभी तक व्यावहारिक रूप से कोष को धन उपलब्ध ही नहीं कराया है।

पीजीआरएफए ट्रीटी पर जिस समय चर्चा हो रही थी, कई अन्य प्रश्नों के साथ-साथ किसानों के अधिकारों का मुद्दा भी केंद्र में था। आखिर में ट्रीटी के महत्वपूर्ण पहलू के तौर पर किसानों के अधिकार उसके अंग बनाए गए, लेकिन इस ट्रीटी ने भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इन अधिकारों की विस्तृत परिभाषा नहीं दी। यह ट्रीटी किसानों के लिए आर्थिक मुआवजे का प्रावधान करने से आगे नहीं जाती, और उनके सम्पत्ति संबंधी अधिकारों को मान्यता नहीं देती। पर यह ट्रीटी सदस्य देशों को राष्ट्रीय स्तर पर किसानों को उनके अपने तरह का संरक्षण देने के लिए कानूनी ढाँचा विकसित करने का अधिकार जरूर देती है। ट्रीटी किसानों को कोई नया अधिकार देने के बजाय केवल किसानों द्वारा बीज बचाने, इस्तेमाल करने, विनिमय करने और बेचने के पहले से मौजूद अधिकारों की सुरक्षा ही करती है। वह किसानों की बौद्धिक सम्पदाओं पर उनके किसी भी तरह के निजी या सामूहिक अधिकारों को मान्यता नहीं देती। यह जिम्मेदारी वह उसूलन राष्ट्रों पर डाल देती है, और कुछ प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की तरफ इंगित करती है। मसलन, ट्रीटी के मुताबिक कृषि जैवविविधता, लाभों में साझेदारी, कृषि-जैव संसाधनों के प्रबंधन की निर्णय प्रक्रिया में किसानों की भागीदारी के संदर्भ में पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण पर जोर दिया जाना चाहिए।

व्यावहारिक स्थिति यह है कि इंटरनेशनल अंडरटेकिंग और पीजीआरएफए ट्रीटी किसानों के अधिकारों के प्रश्न पर केवल नीतिगत वक्तव्य की भूमिका निभा कर रह जाती हैं। एक मात्र व्यावहारिक बात किसानों के योगदान के बदले मुआवजे के भुगतान के रूप में कही गई है, पर इसके लिए बनाए गए कोष में धन ही नहीं है।

एफएओ के इन दोनों कानूनी बंदोबस्तों में किसानों के अधिकारों का सीमित विकास एक तरह से विकासशील देशों के लिए फायदेमंद भी साबित हो सकता है। पीजीआरएफए ट्रीटी की अपेक्षाओं का लाभ उठा कर वे अपनी नीतिगत जरूरतों के हिसाब से किसानों के अधिकारों को बाकायदा परिभाषित कर सकते हैं। मसलन, भारत ने इस सिलसिले में कुछ प्रगति भी की है, पर बहुत से अन्य देश कानून बनाने की प्रक्रिया में हैं।

पीजीआरएफए ट्रीटी ऐसे कई पहलुओं की तरफ साफ इशारा करती है जिन पर विचार करके सदस्य देश यह कानूनी ढाँचा विकसित कर सकते हैं। मसलन, वे अगर चाहें तो किसानों के अधिकारों को उनकी बौद्धिक सम्पदाओं के संरक्षण के औजार की तरह देख सकते हैं। यह प्रतिरक्षात्मक या सकारात्मक नजरिए से भी किया जा सकता है। इसका जोर निजी और/अथवा सामूहिक अधिकारों पर हो सकता है। इसके अलावा किसानों को अपने ज्ञान के प्रयोग से होने वाले फायदों में भागीदार के रूप में भी देखा जा सकता है, भले ही वे इस सूरत में हों कि किसी सकारात्मक अधिकार या ज्ञान के व्यावसायिक इस्तेमाल की स्थिति में न हों। साथ ही किसानों के अधिकार प्रासंगिक राष्ट्रीय निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी के संदर्भ में भी सूत्रबद्ध किए जा सकते हैं।

किसानों के अधिकारों का बाकायदा सूत्रीकरण कई नजरियों से अहम है। कृषि में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के लागू होने से पैदा हुई चुनौतियों से निबटने के लिए तो इनकी जरूरत है ही, साथ ही खाद्य सुरक्षा का मुद्दा भी इनके साथ आसानी से जोड़ा जा सकता है। इनका संबंध

आविष्कार, ज्ञान पर अधिकार, जैवविविधता संरक्षण और कृषि-जैवविविधता के टिकाऊ इस्तेमाल से है। ज्ञान के निजी विनियोग के स्वीकार और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के चलते उसे प्रोत्साहित करने के जमाने में विस्तृत कानूनी ढाँचे के अंग के रूप में किसानों के अधिकारों के महत्त्व से इनकार करना मुश्किल है।

## ८ सुइ जेनरिस वनस्पति किस्मों का संरक्षण

खेती में पेटेंट प्रणाली लागू करने के सवाल पर हुए व्यापक मतभेदों के कारण वनस्पति-किस्मों के संरक्षण की सुइ जेनरिस प्रणाली से संबंधित प्रावधान ट्रिप्स समझौते में जोड़ने की नौबत आई। कई नजरियों से यह एक महत्त्वपूर्ण प्रावधान है। यह प्रणाली बताती है कि ट्रिप्स समझौते के तहत वनस्पति-किस्मों के संरक्षण के लिए सदस्य देशों को ऐसी प्रणाली का सहारा भी लेना पड़ सकता है जो प्रचलित पेटेंट प्रणाली या प्लांट ब्रीडर अधिकारों से अलग हो। दूसरे, सुइ जेनरिस का विचार विकासशील देशों को गुंजाइश देता है कि वे अपनी जरूरतों के अनुसार कुछ खास तरह के आविष्कारों को संरक्षण की स्थापित श्रेणियों से परे जा कर सोच सकें। तीसरे, इसके जरिए बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और टिकाऊ विकास की धारणा के बीच सूत्र कायम करने का आधारभूत तर्क मिल सकता है। वैसे भी सम्पदा अधिकारों का विचार टिकाऊ विकास की अवधारणा के बहुत पहले सूत्रबद्ध किया गया था। चौथे, सुइ जेनरिस प्रणाली कुल मिला कर वनस्पति-किस्मों के संरक्षण के परे जा कर पारंपरिक ज्ञान के संदर्भों में इस्तेमाल की जा सकती है। अत्यल्प-विकसित देशों का अनुभव बताता है कि निजीकरण और बाजार को बढ़ावा देने वाली पेटेंट प्रणाली से गरीब देशों में न तो आविष्कारों को प्रोत्साहन मिलता है, और न ही टिकाऊ विकास को। किसानों के अधिकारों और पारंपरिक ज्ञान की सुरक्षा भी इससे नहीं होती। इस लिहाज से व्यवसायीकरण के इस युग में सुइ जेनरिस प्रणाली खाद्य सुरक्षा के सवाल को बौद्धिक सम्पदा संरक्षण की धारणा से जोड़ सकती है।

### अ. सुइ जेनरिस संरक्षण

चूँकि ट्रिप्स वार्ता के दौरान खेती में पेटेंट के सवाल पर विकसित देशों के बीच भी मतभेद थे, और विकासशील देश तो पेटेंट प्रणाली का जम कर विरोध कर ही रहे थे, इसलिए एक समझौता निकालना पड़ा और वनस्पति-किस्मों के संरक्षण के लिए पेटेंट अनिवार्य नहीं रह गए। अनुच्छेद २७(३)बी ने माना कि वनस्पति-किस्मों का संरक्षण पेटेंटों के साथ-साथ सुइ जेनरिस प्रणाली या किन्हीं प्रणालियों के संयोग के माध्यम से किया जा सकता है। इस समझौते ने ट्रिप्स के सदस्य देशों को इस संबंध में अपने अलग-अलग तरीके अपनाने की काफी गुंजाइश दे दी। दरअसल, ट्रिप्स से पहले ही विकसित देश तो अपने-अपने यहाँ संबंधित पेटेंट या प्लांट ब्रीडर अधिकार सूत्रबद्ध कर चुके थे। ट्रिप्स के बाद डब्ल्यूटीओ के सदस्य विकासशील देशों के सामने समस्या यह आई कि या तो वे प्लांट ब्रीडर अधिकार अंगीकार करें या फिर अपने हालात के मुताबिक कोई संरक्षण प्रणाली अपनाएँ। इसके लिए कई देशों ने यूपीओवी बंदोबदस्त की तर्ज पर कानून बनाए। बहुत से देशों ने प्लांट ब्रीडर अधिकार अपनाए और उनके साथ-साथ किसानों के अधिकारों को भी जोड़ा। वास्तव में मौजूदा सुइ जेनरिस प्रणाली इसी संयोग के आधार पर विकसित हुई है।

वैसे कानूनी नजरिए से अभी तक यह ठीक तरह से परिभाषित नहीं हो पाया है कि प्रभावी सुइ जेनरिस प्रणाली क्या है। केवल इस बात पर सहमत हैं कि ट्रिप्स के तहत यूपीओवी द्वारा दिया जाने वाला संरक्षण सुइ जेनरिस है। जहाँ तक इस प्रणाली के प्रभावी होने की समझ है, यह ट्रिप्स के सदस्य देशों के अलग-अलग स्वार्थों और उनकी संकीर्ण समझ पर निर्भर करता है। प्रभावकारिता की कसौटी इस बात पर भी निर्भर करती है कि संरक्षण प्रणाली वनस्पति-किस्मों के मामले में व्यावसायिक तत्त्वों और खेती में भूमिका निभाने वाले तत्त्वों को भी संरक्षण देता हो।

व्यवहार में सभी विकासशील और अत्यल्प-विकसित देशों को २००५ तक कोई न कोई वनस्पति-किस्मों के संरक्षण की प्रणाली अंगीकार कर लेनी थी। साथ ही प्रभावी सुइ जेनरिस प्रणाली विकसित करने पर बहस भी चलती रहनी थी, क्योंकि कई देशों ने वनस्पति-किस्मों का संरक्षण अंगीकार करने के नतीजों पर पूरी तरह विचार ही नहीं किया था। बहस के दौरान ही उन्हें यह महसूस हो सकता था कि उनके संबंधित कानून में क्या-क्या संशोधन किए जाने चाहिए। इसके अलावा पारंपरिक ज्ञान की संरक्षा के नजरिए से भी सुइ जेनरिस प्रणाली का अलग से महत्त्व समझा जा रहा है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय तौर से इस प्रणाली के इस पहलू में खासी दिलचस्पी देखी गई है।

सुइ जेनरिस प्रणाली एक ऐसा कानूनी ढाँचा है जो केवल आविष्कारकों के हितों की संरक्षा ही नहीं करता, बल्कि वनस्पति-किस्मों के संरक्षण के संदर्भ में बौद्धिक सम्पदा संरक्षण को खाद्य सुरक्षा प्रोत्साहित करने से जोड़ देता है। यह कानूनी ढाँचा बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के विचार को टिकाऊ विकास के साथ आंतरिक संबंध बनाने की तरफ ले जाता है। अंतर्राष्ट्रीय कानून की वचनबद्धताओं के तहत यह ढाँचा टिकाऊ विकास को एक कर्तव्य की तरह पेश करता है। कुल मिला कर सुइ जेनरिस प्रणाली के जरिए न केवल किसान अपने आविष्कारों के बदले लाभान्वित हो सकते हैं, बल्कि जैवविविधता का संरक्षण करने और वनस्पति-किस्मों के प्रबंधन में सुधार के प्रयासों को भी प्रोत्साहित किया जा सकता है जिनके बिना आगे आविष्कार करना संभव भी नहीं होगा।

ट्रिप्स समझौते और टिकाऊ विकास से जुड़ी अन्य अंतर्राष्ट्रीय संधियों में कई तरह के फर्क हैं। ट्रिप्स अपने सदस्य देशों पर न्यूनतम वचनबद्धताएँ लागू करता है, जबकि अन्य संधियों का रुझान व्यापक दिशा-निर्देश उपलब्ध कराना ही है। जाहिर है कि अन्य संधियों के मुकाबले ट्रिप्स के मामले में सदस्य देशों को उसकी व्याख्या अपनी संवैधानिक और नीतिगत जरूरतों के हिसाब करने की कम गुंजाइश मिलती है। ट्रिप्स के कारण डब्ल्यूटीओ के सदस्य देश वनस्पति-किस्मों के संरक्षण की व्यवस्था अपनाने के लिए मजबूर हैं। लेकिन, इस मामले में ट्रिप्स के प्रावधान उन्हें कुछ लचीलापन भी मुहैया कराते हैं, जो ट्रिप्स समझौते के बाध्यकारी स्वभाव को देखते हुए महत्त्वपूर्ण हैं। अनुच्छेद २७(३)बी के तहत सुइ जेनरिस संरक्षण का प्रावधान एक ऐसी ही व्यवस्था है। इसकी एक धारा के अनुसार बौद्धिक सम्पदा अधिकार के धारकों के हितों और समाज कल्याण की व्यापक जरूरतों के बीच एक संतुलन बैठाया जाने को एक बुनियादी उसूल की तरह मान्यता

मिलनी चाहिए। इसका सीधा मतलब होता है कि खेती में बौद्धिक सम्पदा अधिकार लागू करते समय न केवल राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा का आग्रह उसके साथ जोड़ा जाना चाहिए, बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर भी खाद्य सुरक्षा का ध्यान रखा जाना चाहिए। एक अन्य धारा के अनुसार सदस्य देश ट्रिप्स की सीमाओं के भीतर अपने देश में जनता की पोषण संबंधी जरूरतों का भी ध्यान रख सकते हैं, और सामाजिक-आर्थिक और प्रौद्योगिकीय विकास के संदर्भ में जनहित पर जोर दिया जा सकता है। जाहिर है कि यह धारा सदस्य देशों को अपनी बुनियादी जरूरतों को केंद्रस्थ करने का मौका देती है। पेटेंटपात्रता के दायरे और पेटेंटों की अवधि के मामले में भी समझौते के अनुच्छेद ७ और ८ सदस्य देशों को अपनी वचनबद्धताएँ अपनी बुनियादी जरूरतों के हिसाब से तय करने का मौका देते हैं।

अनुच्छेद ७ की इस तरह की व्यापक व्याख्या का डब्ल्यूटीओ के भीतर विरोध भी हो सकता है, पर मंत्रिस्तरीय कॉफ्रेंस ने मेडिकल पेटेंटों के मामले में ट्रिप्स के भीतर लचीलेपन की व्यवस्था की है। पेटेंट अधिकारों के स्तर पर भी अलग-अलग पेटेंटों के बारे में लचीलापन उपलब्ध है। अनुच्छेद २७(३) वनस्पतियों और जीव-जंतुओं को पेटेंटपात्रता से अलग रखने की गुंजाइश देता है। पेटेंट अधिकारों के स्तर पर भी कुछ सीमित अधिकार उपलब्ध हैं। अनिवार्य लाइसेंसिंग भी इसी तरह का एक प्रावधान है जो खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए भी अनपाया जा सकता है।

## ब. मौजूदा कानूनी ढाँचे के परे

दिवक्त यह है कि ट्रिप्स समझौते में निहित इस लचीलेपन के बावजूद खाद्य सुरक्षा, टिकाऊ विकास और जैवविविधता संरक्षण जैसे लक्ष्यों की पूर्ति इस तरह के बाध्यकारी कानूनी ढाँचे से नहीं हो सकती। इसके लिए इससे परे जा कर विचार करना जरूरी है।

सबसे पहले तो विकासशील देशों को पेटेंट प्रणाली में ट्रिप्स द्वारा दी जाने वाली खाद्य सुरक्षा से संबंधित गुंजाइशों का अधिकतम इस्तेमाल करने के बारे में सोचना चाहिए। वे प्रयोग के उद्देश्य से अपने अनुसंधानरत समुदायों को पेटेंटशुदा आविष्कारों का इस्तेमाल करने की छूट दे सकते हैं। दूसरे, गरीब देशों की सरकारें सुनिश्चित कर सकती हैं कि खेती में बौद्धिक सम्पदा अधिकार लागू होते समय उनके सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यों का विशेष ध्यान रखा जाए और गरीबों की आवश्यकताओं का ध्यान रखने वाली जेनेटिक फसलें विकसित करने पर जोर हो और प्रौद्योगिकी स्थानांतरण उसी के मुताबिक किया जाए। सरकारें ऐसी फसलों के बारे में जेनेटिक अनुसंधान पर जोर दे सकती हैं जिनमें भले ही निजी क्षेत्र की दिलचस्पी न हो, पर जो जनता के पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हों। निजी क्षेत्र उपेक्षापूर्ण रवैया अपना कर कुछ फसलों के साथ सोतेला व्यवहार करता है, और इस समस्या का सामना विकासशील देशों को तो करना ही पड़ता है, कुछ विकसित देशों ने भी इसे झेला है और वे इसके समाधान की कोशिश कर रहे हैं। इसी तरह से औषधियों के क्षेत्र में कुछ दवाओं के साथ सोतेला व्यवहार किया जाता है, क्योंकि वे मुनाफा कमाने के लिए आकर्षक नहीं मानी जातीं। अमेरिका ने तो निजी क्षेत्र को ऐसी औषधियों में निवेश करने के लिए प्रोत्साहन देने की नीति तक अख्तियार की है। अनुदान देने, करों में छूट देने, सब्सिडी देने और अन्य सुविधाएँ दे कर वहाँ निजी क्षेत्र को ऐसे क्षेत्रों में अनुसंधान करने की तरफ ले जाया जा रहा है। हालाँकि उपेक्षित औषधियों का उदाहरण विकासशील देशों के लिए इतना प्रासंगिक नहीं है, पर इसी मॉडल का उपेक्षित फसलों के मामले में इस्तेमाल करके निजी क्षेत्र का ध्यान इस ओर खींचा जा सकता है, और सीजीआईआर सेंट्रों जैसे पब्लिक सेक्टर हलकों को गरीब और छोटे किसानों के लिए प्रासंगिक क्षेत्रों में शोध कार्य करने की तरफ ले जाया जा सकता है।

ट्रिप्स समझौता पेटेंट प्रणाली में भू-क्षेत्रीयता की इजाजत देता है जिसका फायदा विकासशील देश काफी उठा सकते हैं। चूँकि ट्रिप्स की वचनबद्धताएँ न्यूनतम किस्म की हैं, इसलिए जाहिर है कि पेटेंटपात्रता में हर देश के लिहाज से फर्क रहेगा ही। जरूरी नहीं कि अगर कोई आविष्कार किसी विकसित देश में पेटेंट करा लिया गया है, तो उसे विकासशील देश में भी पेटेंट होना चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर पेटेंटधारक के अधिकारों का उल्लंघन किए बिना उस आविष्कार का इस्तेमाल किया जा सकता है। द्विपक्षीय संधियाँ विकासशील देशों को इसी तरह की कार्रवाईयों करने से रोकने की भूमिका निभाती हैं।

कभी-कभी मुनाफा न होने के अंदेश के कारण पेटेंटधारक भी कुछ खास देशों में अपने आविष्कार को पेटेंट नहीं कराते। विकासशील या अत्यल्प-विकसित देश मौका पड़ने पर इसका लाभ भी उठा सकते हैं। वे सीजीआईआर सेंट्रों पर भी दबाव डाल सकते हैं कि उनकी गतिविधियाँ राष्ट्रीय कानूनी प्रावधानों के अनुसार होनी चाहिए, न कि विकसित देशों के मुताबिक।

इसके अलावा विकासशील देश उपयुक्त प्रौद्योगिकियों की अवधारणा का प्रयोग करके अपने फायदे को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर जेनेटिक इंजीयरिंग उद्योग विकसित करने की कोशिश कर सकते हैं। कृषि को टिकाऊ बनाने और वनस्पति जेनेटिक संसाधनों के तर्कसंगत इस्तेमाल को बढ़ावा देने के मकसद से विकसित की गई यह अवधारणा वनस्पति जेनेटिक इंजीनियरिंग के बारे में बनी अंतर्राष्ट्रीय आचरण संहिता के शुरुआती मसविदे में अंगीकार की गई है। ध्यान रहे कि उपयुक्त प्रौद्योगिकियों की अवधारणा लागू करने के लिए पब्लिक सेक्टर रिसर्च की भूमिका महत्वपूर्ण है। ग्लोबल शक्तियाँ उनका निजीकरण करने का दबाव डालती हैं, पर जनहित प्रोत्साहित करने के लिए जरूरी है कि इस दबाव का मुकाबला किया जाए।

चूँकि किसानों के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का कानूनी ढाँचा विकसित करने का कोई अंतर्राष्ट्रीय मॉडल मौजूद नहीं है, इसलिए विकासशील देशों को यह काम अपने हाथ में ले लेना चाहिए। जैसा कि हम जानते हैं कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय, द्विपक्षीय और क्षेत्रीय संधियाँ हावी हैं, इसलिए किसानों के अधिकारों के प्रश्न पर राष्ट्रीय स्तर की पहलकदमी इस क्षेत्र में एक नई बात होगी। किसानों के अधिकारों पर जोर देने का सबसे बड़ा फायदा तो यह होगा कि केवल व्यवसायीकरण ही नहीं, बल्कि खाद्य सुरक्षा के सवाल पर भी रोशनी पड़ेगी। जैवविविधता कन्वेंशन, पीजीआरएफए ट्रीटी और कन्वेंशन ऑन डेजर्टिफिकेशन जैसी संधियों के बीच तालमेल और एकीकरण की प्रक्रिया आगे बढ़ेगी। स्थानीय जलवायु के हिसाब से पौधों की किस्में विकसित करने को बढ़ावा मिलेगा। पेटेंट और प्लांट ब्रीडर अधिकारों से परे जाने का मौका प्राप्त होगा। इस प्रकार किसानों के अधिकारों को कानूनी रूप दे कर विकासशील देश ट्रिप्स के तहत अपनी वचनबद्धताएँ पूरी करते हुए खाद्य सुरक्षा के मानवाधिकार संबंधी सरोकार बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के साथ जोड़ सकते हैं।

किसानों के ज्ञान की संरक्षा कई तरह से की जा सकती है। उन्हें विस्तृत अधिकार भी दिए जा सकते हैं, और उनके ज्ञान का बाहर वालों द्वारा विनियोग रोकने के प्रतिरक्षात्मक उपायों तक भी सीमित रहा जा सकता है। ध्यान रहे कि ट्रिप्स में तो इन अधिकारों का जिन्न ही नहीं है, इसलिए उसका ढाँचा इनका आधार नहीं बन सकता। इनका आधार तो पीजीआरएफए ट्रीटी ही बन सकती है जो कम से कम खेतिहर पारंपरिक ज्ञान को व्यापक कृषक अधिकारों का हिस्सा मानती है। साथ ही यह ट्रीटी सदस्य देशों को अपने हिसाब से कृषक अधिकारों का कानूनी ढाँचा बनाने की इजाजत भी देती है।

चूँकि ज्यादातर कृषक ज्ञान सार्वजनिक दायरे में रहता है, इसलिए बाजार की ताकतों द्वारा उसका विनियोग रोकने के लिए गोपनीयता या दस्तावेजीकरण जैसे प्रतिरक्षात्मक उपायों की जरूरत पड़ती है। वेनेजुएला में ये दोनों तरीके अपनाए गए हैं। वहाँ पारंपरिक ज्ञान का डेटाबेस भी तैयार किया गया है, और उसे तक गोपनीय रखने का फैसला भी किया गया है जब तक पारंपरिक ज्ञान की सुरक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानूनी ढाँचा न विकसित हो जाए। इसी तरह से लाभों के बँटवारे और ज्ञान के विनियोग के बदले मुआवजा देने का बंदोबस्त भी एक प्रतिरक्षात्मक उपाय की तरह देखा जाना चाहिए। पेटेंट प्रणाली में अगर पूर्वसूचना सहमति के प्रावधान के अनुपालन पर जोर हो, तो उससे भी गारंटी मिलती है कि पारंपरिक ज्ञान को बिन घोषित किए हुए पेटेंट आविष्कारों का घटक नहीं बनाया जा सकेगा।

किसानों के अधिकारों की संरक्षा का एक अन्य नजरिया सकारात्मक अधिकारों यानी ज्ञान पर उनके नियंत्रण को बाकायदा सम्पदा अधिकारों के संदर्भ में परिभाषित करने का है। इसके जरिए किसान न केवल दूसरों को अपने ज्ञान के व्यवसायीकरण से रोकेंगे, बल्कि खुद अपने ज्ञान का व्यवसायीकरण कर सकेंगे। इस नजरिए का बुनियादी आधार यह मान्यता है कि सभी तरह के आर्थिक कर्ताओं को अपने ज्ञान पर व्यावसायिक अधिकार की दावेदारी स्वीकार की जानी चाहिए। किसानों के अधिकारों का प्रश्न कई नजरियों से चुनौतीपूर्ण है। पहली बात तो यह है कि तकनीकी तौर से किसानों द्वारा विकसित की जाने वाली वनस्पति की किस्मों की शिनाख्त अपने-आप में समस्याग्रस्त है। दूसरे, किसानों के अधिकारों को व्यापक और सुपरिभाषित बनाने का एक परिणाम जनहित, खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण और पारंपरिक ज्ञान की सुरक्षा आदि आधारों पर पेटेंट अधिकारों और प्लांट ब्रीडर अधिकारों को सीमित करने में भी निकल सकता है। कई देशों में ऐसा होने भी लगा है। मसलन, थाइलैंड में जनकल्याण और पर्यावरण सुरक्षा के नाम पर संबंधित मंत्री प्लांट वेराइटी एक्ट के तहत अधिकारों को सीमित कर सकता है। भले ही विदेशी कानून पहुँच से बाहर हों, पर पूर्वसूचना सहमति जैसे प्रावधानों पर जोर दे कर पेटेंट आविष्कारों में किसानों के ज्ञान का विनियोग नियंत्रित किया जा सकता है।

किसानों को दिए जाने वाले अधिकारों में किसी भी संरक्षित किस्म के विकास, उत्पादन, बिक्री और निर्यात का अधिकार शामिल किया जा सकता है। होंगे तो ये पेटेंट जैसे अधिकार ही, पर फर्क यह होगा कि ये इजारेदारी या विशिष्ट किस्म के अधिकार नहीं होंगे। अन्य स्थानों पर भी अगर वही किस्में मौजूद हैं, तो वहाँ के किसान ये अधिकार ले सकेंगे। किसानों को अलग-अलग बाजारों में अपने उत्पाद बेचने के अधिकार देने के बारे में भी सोचा जा सकता है। अधिकारों की समयावधि तय करना उचित नहीं होगा, क्योंकि कृषक समुदाय अपने आविष्कार धीरे-धीरे लंबी अवधि के दौरान करता है। किसानों को उनके योगदान के हिसाब से व्यक्तिगत स्तर पर भी अधिकार दिए जा सकते हैं, और अगर किसी किस्म के विकास में कई लोगों का हाथ है या समुदाय की भूमिका है, तो इन अधिकारों की कई लोगों में सहभागिता भी हो सकती है, इनका चरित्र सामुदायिक भी हो सकता है। ऐसा लगता है कि किसानों के अधिकार अधिकांश मामलों में सामुदायिक ही होंगे, इसलिए पेटेंट अधिकारों का पैटर्न इनके लिए काम नहीं करेगा। इनका सूत्रीकरण नए तरीके से करना होगा। पंचायतों या लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित स्थानीय निकायों को अधिकार देने पर विचार किया जा सकता है। २००२ के जैवविविधता एक्ट में पंचायत स्तर पर जैवविविधता प्रबंधन कमेटियाँ बनाने का प्रावधान भी है। वेनेजुएला ने इस चुनौती का सामना करने की कोशिश अपने तरीके से की है। वह निजी स्तर पर दिए जाने वाले बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और क्रमशः विकसित किए जाने वाले उस ज्ञान पर अधिकारों को अलग तरह से देखता है जो दरअसल पारंपरिक ज्ञान की संरचनाओं पर आधारित होता है। इस तरह वेनेजुएला किसानों को मुआवजा वगैरह देने की सीमाओं के परे जाते हुए देशज और स्थानीय समुदायों के अधिकारों को भी संबंधित परिप्रेक्ष्य में शामिल करता है।

इसी तरह एक विचार यह भी है कि अधिकारों की दावेदारी सुनिश्चित करने के लिए किसानों को अपने अधिकारों के पंजीकरण की सुविधा दी जानी चाहिए, पर रजिस्ट्रेशन को अपने-आप में एक शर्त नहीं बनाया जाना चाहिए। तकरीबन सभी कानूनी और नीतिगत दस्तावेज मानते हैं कि जैवविविधता के संरक्षण और प्रबंधन में किसानों की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण होती है। सम्पदा अधिकारों के संदर्भ में इस मुद्दे को व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है। इसका एक संदेश यह भी है कि जैवविविधता के संरक्षण का भार केवल किसानों, बीज बेचने वाली स्थानीय कंपनियों और समुदायों पर ही नहीं डालना चाहिए। इस संरक्षण से तो सभी लाभ उठाते हैं, इसलिए राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय रहने वाले आर्थिक अभिनेताओं, जैसे सरकारों, अनुसंधान संस्थानों और निजी बीज कंपनियों को भी जिम्मेदारी में हाथ बँटाना चाहिए। इसी तरह जैव सुरक्षा का प्रश्न भी अहम है। चूँकि ट्रांसजेनिक वनस्पतियों के पर्यावरणीय असर के बारे में अभी कुछ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, इसलिए किसानों के अधिकारों की सुरक्षा इन वनस्पतियों को पर्यावरण के आधार पर कुछ खास जगहों पर न इस्तेमाल करने से भी जुड़ी हुई है।

ट्रिप्स समझौते के बाद जब अफ्रीकी देशों को बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से संबंधित न्यूनतम वचनबद्धताएँ पूरी करने की जरूरत पड़ी तो कुछ देशों ने राष्ट्रीय स्तर पर कानूनी ढाँचा बनाने की कोशिश की, और कुछ ने प्रचलित क्षेत्रीय ढाँचों को अपनाया। लेकिन, सभी को यह भी लगा कि अगर उनके पास उनकी जरूरतों के मुताबिक एक मॉडल ढाँचा होता तो ठीक रहता। यह जरूरत पूरी करने का काम अफ्रीकी एकता संगठन ने किया। सन् २००० में एक अफ्रीकी मॉडल कानून अंगीकार किया गया जिसका मकसद स्थानीय समुदायों, किसानों और ब्रीडरों के अधिकारों की सुरक्षा करना और जैविक संसाधनों तक पहुँच को विनिमित्त करना था। यह मॉडल कानून उद्गम देश के संप्रभु अधिकारों की पुष्टि करते हुए संबंधित देश और संबंधित समुदायों की पूर्वसूचना पर आधारित सहमति पर जोर देता है। यह जीवन रूपों के पेटेंट पर रोक लगाता है। यह जिन तीन तरह के सम्पदा अधिकारों को मान्यता देता है, उनमें समुदायों का सामूहिक अधिकार और उसी आधार पर व्यावसायिक फायदों का कम से कम पचास फीसदी प्राप्त करने का अधिकार। इसके मुताबिक समुदाय अपने ज्ञान तक बाहरी लोगों की पहुँच रोक सकते हैं अगर उस पहुँच से उनकी प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत को खतरा पहुँच सकता है। फायदों के बँटवारे की जिम्मेदारी सरकारों पर डाली गई है। मॉडल कानून समुदायों के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को भी मान्यता देता है जिसके मुताबिक समुदाय अपने दायरे में आविष्कार कर सकते हैं और ज्ञान परंपरा को आगे बढ़ा सकते हैं। यह कानून रजिस्ट्रेशन को शर्त नहीं बनाता, और समुदायों के सम्पदा

अधिकारों का संपूर्ण ढाँचा बनाने की जिम्मेदारी सरकारों पर डालता है। मॉडल कानून एक हद तक समुदायों के और किसानों के अधिकारों को बाकायद परिभाषित करने की कोशिश भी करता है। वह यूपीओवी कन्वेंशन के मुताबिक प्लांट ब्रीडरों के अधिकार भी परिभाषित करता है, और इस प्रक्रिया में व्यापक अपवादों की गुंजाइश प्रदान करता है। यह कानून सरकारों के लिए ऐसी कई गुंजाइशें छोड़ता है जिनके अनुसार वे जनहित में व्यावसायिक प्लांट ब्रीडरों के अधिकारों को सीमित कर सकती हैं। ट्रिप्स समझौते के अनुच्छेद २७(३)बी द्वारा आरोपित अहंताओं की पूर्ति करने के अलावा यह मॉडल कानून ऐसा अकेला कानून है जिसके जरिए वनस्पति-किस्मों के संरक्षण को अन्य सरोकारों से एकीकृत करने की कोशिश की गई है। यह अलग बात है कि अफ्रीका में राष्ट्रीय स्तर पर यह मॉडल कानून कोई खास अंगीकार नहीं किया गया है, क्योंकि व्यवसायीकरण पर प्रतिबंध लगाने की इजाजत देने के कारण यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विवाद का शिकार हो गया है। हालाँकि यह कानून अफ्रीकी देशों की जरूरतों का खास तौर पर ध्यान रखता है, पर ऐसा लगता है कि अंतर्राष्ट्रीय दबाव में इन देशों को उसे अपनाने में मुश्किल पेश आ रही है। अगर ऐसा न होता तो मॉडल कानून आने से पहले ही अफ्रीकन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी आर्गनाइजेशन (ओएपीआई) के कई देश यूपीओवी कन्वेंशन को अपना आधार बनाने का फैसला न कर लेते, जबकि ओएपीआई के १५ में से ११ सदस्य देश अत्यल्प-विकसित की श्रेणी में आते हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि वनस्पति-किस्मों के संरक्षण की अनिवार्यता विकासशील देशों पर ट्रिप्स समझौते द्वारा थोपी गई है, और इसका टिकाऊ विकास की धारणा से कोई ताल्लुक नहीं है। समष्टिगत आर्थिक नजरिए से हो सकता है कि इन देशों को इस संरक्षण से लाभ न हो। यह जरूर है कि अगर यूपीओवी शैली से परे जा कर व्यापक तरीके से वनस्पति-किस्मों का संरक्षण करने की कोशिश की जाए तो खाद्य सुरक्षा और टिकाऊ विकास के लक्ष्यों को वेधने में मदद मिल सकती है।

विकासशील और अत्यल्प-विकसित देशों के सामने मुख्य चुनौती यह है कि वनस्पति-किस्मों का संरक्षण लागू करते समय वे अपनी खाद्य सुरक्षा को सामूहिक और निजी स्तर पर कैसे सुनिश्चित करें। प्लांट ब्रीडर अधिकारों से व्यावसायिक क्षेत्र का विस्तार होने के कारण कुछ लाभ हो सकता है, जैसा कि केन्या के फल और उद्यान क्षेत्र में दिखाई पड़ा है। दुनिया के ज्यादातर देशों में आबादी बढ़ रही है, और खेतीयोग्य जमीन का रकबा कम हो रहा है। इसलिए जरूरी है कि निर्यात के लिए बोई जाने वाली फसलों के लिए जमीन का इस्तेमाल करने का फैसला खाद्य सुरक्षा और खाद्य संप्रभुता की कीमत पर न लिया जाए।

ट्रिप्स समझौते के कारण विकासशील देश वनस्पति-किस्मों के संरक्षण से नहीं बच सकते। पर, सुइ जेनरिस विकल्प का इस्तेमाल करके वे एक ऐसा कानूनी ढाँचा विकसित कर सकते हैं जिससे उनकी अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताएँ भी पूरी हो सकती हैं, और नई प्रौद्योगिकियों का बुनियादी खाद्य संबंधी जरूरतों पर बुरा असर पड़ने से भी रोका जा सकता है। चूँकि उन पर दबाव विकसित देशों के तर्ज पर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का कानूनी ढाँचा अंगीकार करने का है, इसलिए उनके कहा जा रहा है कि वे अपना सुइ जेनरिस प्रणाली का ढाँचा यूपीओवी कन्वेंशन के आधार पर बना लें। अगर विकासशील देश ऐसा करते भी हैं, तो भी उन्हें कृषि संबंधी पारंपरिक ज्ञान की संरक्षा का पहलू कानूनी ढाँचे में मूर्तिमान करना ही होगा। यह एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि ऐसा कानून बनाने का मॉडल उपलब्ध नहीं है। उन्हें ध्यान रखना होगा कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित ढाँचे में केवल ऐसे आविष्कारों को पेटेंट करने का प्रावधान है जो मौजूदा प्रौद्योगिकी के स्तर से परे जाते हैं। जबकि, होना यह चाहिए कि खेती के क्षेत्र में सम्पदा अधिकारों से कृषि प्रबंधन में लगे सभी तत्त्वों को फायदा पहुँचना चाहिए। समझने की बात यह भी है कि किसानों के अधिकारों के कानूनी ढाँचे का विकास न केवल कृषि प्रबंधन में अहम भूमिका निभाने वाले छोटे किसानों, स्थानीय समुदायों और पब्लिक सेक्टर संस्थानों के लिए लाभप्रद है, बल्कि उनके देशों के लिए भी खाद्य सुरक्षा के नजरिए से फायदेमंद है। इसके लिए जरूरी नहीं है कि किसानों के अधिकारों को मौजूदा सम्पदा अधिकारों के खिलाफ ही कल्पित किया जाए। पेटेंट प्रणाली और प्लांट ब्रीडर अधिकारों के साथ उनका सहयोगात्मक और परस्परव्यापी संबंध भी हो सकता है। कृषक अधिकार सीजीएआईआर केंद्रों के जरिए होने वाले जर्मप्लाज्म के मुक्त प्रवाह की बची-खुची गुंजाइशों को भी प्रोत्साहित करने की भूमिका अदा कर सकते हैं।

## स. वनस्पति-किस्मों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय कानूनी ढाँचा

अन्य देशों की तरह भारत पर भी १९९१ के यूपीओवी कन्वेंशन के तर्ज पर प्लांट ब्रीडर अधिकारों का कानूनी ढाँचा अंगीकार करने का दबाव डाला गया है। लेकिन, भारत में डब्ल्यूटीओ से संबंधित मुद्दों के बारे में दूसरे देशों के मुकाबिले बेहतर जागरूकता है, इसलिए यहाँ की संसदीय प्रक्रिया से एक ऐसा कानूनी ढाँचा निकला है जो यूपीओवी बंदोबस्त के परे जाता है।

भारत के २००१ में पारित किए गए प्रोटेक्शन ऑफ प्लांट वेराइटीज एंड फार्मर्स राइट्स एक्ट को समझने के लिए हमें अध्याय दो में वर्णित १९७० के पेटेंट एक्ट पर एक बार फिर नजर डालनी होगी। लंबी नीतिगत बहसों के बाद अंगीकार किया गया यह कानून खेती और फलों की खेती को पेटेंटपात्रता से बाहर रखता है। यह ऐसी प्रणाली को बढ़ावा देता है जो जेनेटिक सामग्री और संबंधित ज्ञान में साझेदारी को कृषि प्रबंधन का आधार बनाती है, और निजी उद्यमों को हतोत्साहित करते हुए पब्लिक सेक्टर की उपस्थिति को प्रोत्साहित करती है। अस्सी के दशक में भारत पर भी निजीकरण का दबाव पड़ना शुरू हुआ। ट्रिप्स समझौते के बाद उसे भी न्यूनतम वचनबद्धताओं के कार्यान्वयन की समय सीमा का सामना करना पड़ा। इसके बावजूद २००१ का प्लांट वेराइटी एक्ट केवल इस दबाव का परिणाम ही नहीं माना जा सकता। इसे अंगीकार करने के पीछे कुछ अन्य पहलू भी काम कर रहे थे। ये थे खाद्य सुरक्षा के तर्क के आधार पर व्यावसायिक ब्रीडरों, किसानों और कृषि-जैवविविधता संरक्षण के पहलू।

इस एक्ट के मौजूदा संस्करण को एक सुइ जेनरिस ढाँचे की तरह भी देखा जा सकता है, हालाँकि १९९९ में संसद में पेश किया गया विधेयक मुख्यतः प्लांट ब्रीडर अधिकारों के नजरिए से तैयार किया गया था। कई सुनवाईयों के बाद एक संयुक्त संसदीय समिति ने इसे दोबारा लिखा और मुख्य प्रावधानों को कायम रखते हुए कृषक अधिकारों का एकदम नया अध्याय जोड़ दिया। एक्ट २००१ में पारित हुआ, २००३ में उसके नियम बने, पर प्लांट वेराइटी एथारिटी स्थापित न होने के कारण इसका कार्यान्वयन शुरू नहीं हो पाया। दरअसल, भारत ने मई, २००२ में ही १९७८ के यूपीओवी कन्वेंशन का सदस्य बनने का आवेदन करने का फैसला किया जिसके कारण यह एक्ट कन्वेंशन के सचिवालय के पास



समीक्षा करने के लिए भेजना पड़ा। तभी से यह एक्ट वहीं लटका हुआ है। अगर सचिवालय ने इसे खारिज कर दिया तो यह भारत के लिए राष्ट्रीय पैमाने पर और यूपीओवी के लिए अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर विनाशकारी साबित होगा। अगर स्वीकार कर लिया तो इसका मतलब होगा प्लांट ब्रीडर अधिकार व्यवस्था को नरम करना। यूपीओवी चाहता है कि भारत इस एक्ट में कुछ संशोधन करे। दूसरी तरफ वह उसे १९७८ वाले अपने संस्करण की सदस्यता देने की विशेष सुविधा भी मुहैया कराने के लिए तैयार हो सकता है, जबकि नए देशों को १९९१ वाले कहीं कड़े संस्करण की सदस्यता ही मिलती है।

२००१ का प्लांट वेराइटी एक्ट दो मकसद हल करने की कोशिश करता है। पहला, किसानों के अधिकारों को मान्यता देना और उनकी सुरक्षा करना। दूसरा, अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देने के लिए पब्लिक और प्राइवेट सेक्टर में प्लांट ब्रीडर अधिकारों की सुरक्षा करना। एक हद तक यह एक्ट दोनों तरह के अधिकारों को समान दर्जा देता है, लेकिन कुल मिला कर यह कानून खेतिकर्ता विकास की मुख्य जिम्मेदारी प्लांट ब्रीडर अधिकारों पर ही डालता है। एक्ट का पहला अध्याय वनस्पति की किस्मों के रजिस्ट्रेशन के बारे में है। इसकी तीन शर्तें बताई गई हैं। कोई भी ब्रीडर, किसान, किसानों का समूह, विश्वविद्यालय या पब्लिक सेक्टर का संस्थान किसी नई किस्म के रजिस्ट्रेशन के लिए आवेदन कर सकता है, बशर्ते वह प्रजाति केंद्र सरकार की सूची में दर्ज हो। प्रजाति नई, भिन्न, समरूप और स्थिर होनी चाहिए। ये तमाम कसौटियाँ यूपीओवी कन्वेंशन के पहले बताए जा चुके नियमों के मुताबिक ही रखी गई हैं।

दूसरे, यह एक्ट १९६६ के बीज कानून के तहत अधिसूचित किस्मों के लिए अलग से रजिस्ट्रेशन की व्यवस्था करता है, बशर्ते वे भी ऊपर बताई कई कसौटियों पर खरी उतरती हों। इन्हें केवल नवीनता के मामले में छूट दी गई है। तीसरे, यह कानून यूपीओवी के १९९१ के संस्करण के मुताबिक अनिवार्यतः प्राप्त किस्मों के पंजीकरण का प्रावधान भी करता है। इसमें भी रजिस्ट्रेशन की शर्तें वही हैं।

यह एक्ट यूपीओवी की कानूनी दायरे के परे जा कर वनस्पति की किस्मों के पंजीकरण को प्रतिबंधित भी करता है। यह एक्ट व्यापक जनहित को नुकसान पहुँचाने के अंदेश के तहत और पर्यावरण को हानि पहुँचाने के अंदेश के तहत रजिस्ट्रेशन प्रतिबंधित करता है। यह जेनेटिक यूज रेस्ट्रिक्शन प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल को रोकता है। दरअसल, प्लांट वेराइटी एक्ट के तहत रजिस्ट्रेशन का प्रावधान उसका सबसे उल्लेखनीय और विवादास्पद पहलू है। इन प्रगतिशील प्रावधानों का सूत्रीकरण करते हुए भारतीय विधायिका ने ट्रिप्स की बाध्यताओं से निर्देशित होने से इनकार कर दिया। उसने ट्रिप्स के तहत जरूरतों को पूरा करने और सुइ जेनरिस प्रणाली लागू करने पर तो ध्यान दिया ही, साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बदलते हुए नीतिगत प्रतिमानों का फायदा उठाते हुए स्थानीय और राष्ट्रीय ज्ञान को अधिकतम सुरक्षा देने की कोशिश की। घुमा फिरा कर इस एक्ट ने मान लिया कि केवल व्यावसायिक प्लांट ब्रीडरों के अधिकारों का संरक्षण खेती के क्षेत्र में भूमिका निभाने वाले सभी तत्त्वों के अधिकारों की सुरक्षा का पर्याय नहीं हो सकता।

इस कानूनी ढाँचे में कुछ समस्याएँ भी हैं। सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि किसानों द्वारा अपनी किस्में पंजीकृत कराना बहुत मुश्किल है। आखिरकार उन्हें भी यूपीओवी कन्वेंशन की शर्तों पर खरा उतरना ही है। ज्यादातर किसानों द्वारा विकसित वनस्पति की किस्में इन भिन्नता, समरूपता और स्थिरता की कसौटियों पर नहीं कसी जा सकती। एक्ट का दुहैरापन अनिवार्य रूप से प्राप्त किस्मों के संदर्भ में भी देखा जा सकता है। ऐसा लगता है कि एक्ट के इरादे तो उसूलन नेक हैं, पर व्यवहार में वह १९९९ के विधेयक पर जोर देता लगता है जिसके कारण संभावना यही है कि इसका फायदा मुख्यतौर से व्यावसायिक ब्रीडरों को मिलेगा। साथ में १९६६ के बीज कानून के तहत अधिसूचित किस्मों का रजिस्ट्रेशन कराने वाले सार्वजनिक संस्थानों को भी इस एक्ट से फायदा हो सकता है।

पंजीकरण कराने वालों को यह एक्ट यूपीओवी कन्वेंशन के तर्ज पर ही अधिकार देता है। १९६६ के बीज कानून के तहत अधिसूचित किस्मों के मामले में अधिकार सरकार के पास चले जाते हैं, अगर किसी ब्रीडर ने खुद को दावेदार न साबित कर पाया। अधिकारधारक दूसरे व्यक्ति को लाइसेंस भी दे सकता है। इन अधिकारों की एक समयसीमा है जो रजिस्ट्रेशन की तारीख के बाद यूँ तो १५ साल तक जाती है, पर वृक्षां और अंगूर की बेलों के मामले में १८ साल होती है। यूपीओवी के प्लांट ब्रीडर अधिकारों की ही तरह यह एक्ट भी अनुसंधानकर्ताओं को विशेष गुंजाइश देता है। इन अधिकारों को रजिस्ट्रेशन के तीन साल बाद अनिवार्य लाइसेंसिंग के जरिए भी सीमित किया जा सकता है, अगर प्लांट वेराइटी एथारिटी के आकलन में पंजीकृत किस्म के बीज या अन्य संबंधित सामग्री वाजिब दामों में जनता को उपलब्ध नहीं हो पा रही है।

## द. किसानों के अधिकार

जैसा कि हम जानते हैं कि संयुक्त संसदीय कमेटी का मुख्य योगदान इस कानून में किसानों के अधिकारों पर एक पूरा अध्याय जोड़ना रहा है। इसकी पहली खूबी यह है कि यह किसानों को न केवल आविष्कारक, बल्कि कृषि-जैवविविधता का संरक्षक मानता है। इसके हिसाब से किसानों को वित्तीय लाभ मिलना चाहिए, अगर उनके द्वारा संरक्षित जेनेटिक संसाधनों के जीन एक्ट के तहत संरक्षित किस्मों में प्रयोग किए गए हैं। व्यवहार में यह वित्तीय लाभ नेशनल जीन फंड वितरित करता है। जाहिर है कि एक्ट केवल वनस्पतियों की ही चर्चा करता है, पर संरक्षण और प्रयोग के बीच संबंध स्वीकार करने के लिहाज से उसका यह योगदान उल्लेखनीय है। दूसरे, प्लांट वेराइटी एक्ट १९९९ के विधेयक में किसानों को दिए गए अपने उत्पादों को बचाने, इस्तेमाल करने, बोनो, दोबारा बोनो, आदान-प्रदान करने या बेचने के न्यूनतम अधिकार सुनिश्चित करता है। पीजीआरएफए ट्रीटी की ही भाँति यह प्रावधान इस आधार पर किसानों के लिए कोई नए अधिकारों का रचना नहीं करता। एक्ट में लाभों में साझेदारी का प्रावधान भी है।

प्लांट वेराइटी एक्ट का संबंध पेटेंट एक्ट और जैवविविधता एक्ट से भी है। पेटेंट एक्ट में वनस्पति की किस्मों की पेटेंटपात्रता का प्रावधान तो नहीं है, पर ट्रिप्स के तहत वह माइक्रो-ऑर्गनिज्म को पेटेंटपात्र मानता है। चूँकि आगे चल कर जेनेटिक इंजीनियरिंग के क्षेत्र में आविष्कारों के लिए इस्तेमाल की जाने वाली जैविक सामग्री पर भी पेटेंट की दावेदारियाँ की जाएँगी, इसलिए हो सकता है कि पेटेंट एक्ट और प्लांट वेराइटी एक्ट के बीच टकराव की नौबत आ जाए।



इन तीनों एक्टों के बीच संबंध की एक उल्लेखनीय बात यह है कि इनके कार्यक्षेत्र काफी परस्परव्यापी हैं। इनके बीच समन्वय के लिए कुछ प्रावधान होने चाहिए थे। लेकिन, हकीकत यह है कि जैवविविधता एक्ट का बाकी दोनों एक्ट जिक्र भी नहीं करते। जैवविविधता एक्ट में प्लांट वेराइटी एक्ट का जिक्र कार्यक्षेत्रों के अलग-अलग सीमांकन के मामले में जरूर है।

हालाँकि नई वनस्पति किस्मों के विकास के लिए प्रोत्साहन देने के मकसद से वनस्पति की किस्मों का संरक्षण और पर्यावरण को केंद्र बनाने वाले जैवविविधता एक्ट की प्राथमिकताओं में अंतर है, फिर भी जैवविविधता के तहत वनस्पति की किस्मों भी आती हैं। इसके अलावा जैवविविधता एक्ट सम्पदा अधिकारों और लाभों के बँटवारे पर भी ध्यान देता है। इस लिहाज से दोनों एक्टों में टकराव की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। ऊपर से दोनों एक्टों के अलग-अलग राष्ट्रीय प्राधिकार भी हैं।

ध्यान रखने की बात यह है कि जैसे ही तीनों एक्टों का कार्यान्वयन होगा, वैसे ही लाभों में बँटवारे का प्रश्न समझाएँ पैदा करने लगेगा। पेटेंट एक्ट में तो लाभों के बँटवारे का प्रावधान नहीं है, पर बाकी दोनों एक्टों में इसका अलग-अलग बंदोबस्त किया गया है।

इन कानूनों के बीच तालमेल के अभाव के कारण राष्ट्रीय भी हैं और अंतर्राष्ट्रीय भी। अंतर्राष्ट्रीय तौर से ट्रिप्स समझौता और जैवविविधता कन्वेंशन सदस्य देशों द्वारा अलग-अलग अंगीकार किया गया है, और दोनों का कानूनी अस्तित्व एक दूरे से स्वतंत्र है। ट्रिप्स में पर्यावरण संबंधी संधि का कोई जिक्र नहीं है, पर जैवविविधता कन्वेंशन सम्पदा अधिकारों और जैवविविधता प्रबंधन के बीच सूत्र मानता है। दोनों के बीच तालमेल का कोई बंदोबस्त नहीं है। इसका एक कारण अंतर्राष्ट्रीय कानून के विकेंद्रित चरित्र भी है। राष्ट्रीय स्तर पर तालमेल का अभाव का कारण विभिन्न मंत्रालयों का होना है। पेटेंट कानून वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के हाथों में है, वनस्पति की किस्मों की जिम्मेदारी कृषि मंत्रालय के पास है, और जैवविविधता का काम पर्यावरण और वन मंत्रालय देखता है। तालमेल की यह कमी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इतनी नहीं खलती, पर राष्ट्रीय स्तर पर, जहाँ वास्तविक कार्यान्वयन होना है, इसके कारण काफी समस्याएँ आती हैं।

तीनों कानून मिल कर जो कानूनी ढाँचा बनाते हैं, उसका सम्पदा अधिकारों और जैवविविधता प्रबंधन पर खास असर पड़ा है। इनमें सम्पदा अधिकारों का एक तरह का पुनर्वितरण हो गया है, और निजी सम्पदा अधिकारों व जैविक संसाधनों पर संप्रभुता के मुद्दों को नए ढंग से व्यक्त करने की जरूरत पैदा हो गई है। जैवविविधता एक्ट पर्यावरण संरक्षण और टिकाऊ इस्तेमाल प्रोत्साहित करना अपना लक्ष्य मानता है, पर पेटेंट एक्ट और प्लांट वेराइटी एक्ट को इन कामों में दिलचस्पी नहीं है। इस असंतुलन की वजह से भी परिस्थिति कठिन हो गई है।

जून, २००४ के बाद प्रकाश में आई पीजीआरएफए ट्रीटी के कारण इस तालमेल की जरूरत पर और भी रोशनी पड़ती है, क्योंकि यह ट्रीटी बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और जैवविविधता कन्वेंशन के साथ अपने निकट संबंधों के कारण इन तीनों एक्टों के कटान बिंदु पर मौजूद है।

कुल मिला कर इस कानूनी ढाँचे को दो भिन्न नजरियों से देखा जा सकता है। पहली बात तो यह है कि प्लांट वेराइटी एक्ट एक प्रगतिशील सुइ जेनरिस संरक्षण प्रदान करता है, और दूरदेशी दिखते हुए व्यावसायिक ब्रीडर और किसान के अधिकारों को समान स्तर पर रखता है। यह एक्ट बताता है कि किसानों के अधिकारों को भी बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की तरह कल्पित किया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि हो सकता है किसानों के अधिकारों का कार्यान्वयन ही न हो पाए, क्योंकि उन्हें यूपीओवी के उन मानकों के साथ बाँध दिया गया है जो व्यावसायिक ब्रीडरों के हितार्थ बनाए गए हैं। उधर सरकार भी यूपीओवी में शामिल होने जा रही है, इसलिए हो सकता है कि प्लांट वेराइटी एथारिटी पर किसानों को व्यावसायिक ब्रीडरों पर प्राथमिकता देने का दबाव पड़े, और वह औपचारिक या अनौपचारिक रूप से किसानों के अधिकारों का कार्यान्वयन न करने की तरफ चली जाए।

## पारंपरिक ज्ञान

### ९ पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण

बौद्धिक सम्पदा अधिकार संरक्षण प्रणाली इस मायने में एक समस्याग्रस्त प्रणाली है कि वह उसूलन सार्वजनिक दायरे में मौजूद ज्ञान का संरक्षण नहीं करती। यानी ऐसा ज्ञान जिसमें एक से ज्यादा लोग भागीदार हैं, इस प्रणाली द्वारा संरक्षित नहीं किया जा सकता। दूसरे, जिन आविष्कारों को अति-आधुनिक और परिष्कृत नहीं माना जाता, उनके बदले लाभ पहुँचाने के प्रावधान इस प्रणाली के कानूनी ढाँचे के पास नहीं हैं। इससे होता यह है कि ग्रामीण क्षेत्र में टिकाऊ विकास में योगदान देने वाले ऐसे योगदानों को इस प्रणाली का लाभ नहीं मिल पाता जो ऊँची प्रौद्योगिकी की कसोटियों पर खरे नहीं उतरते। जाहिर है कि यह प्रणाली एक खास तरह के ज्ञान को ही संरक्षण योग्य समझती है। यह एक बहुत बड़ा असंतुलन है, क्योंकि जिसे संरक्षण योग्य ज्ञान समझा जाता है, दरअसल वह पहले से मौजूद उस ज्ञान पर टिका होता है जिसे सम्पदा अधिकार संरक्षण प्रणाली संरक्षण के लायक नहीं मानती। इसी सिलसिले में पारंपरिक ज्ञान का सवाल महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि सम्पदा अधिकारों का यह संरक्षण न तो स्थानीय स्तर पर आविष्कारों को प्रोत्साहित करने में समर्थ है, और न ही मौजूद ज्ञान को बचाए रखने की कोशिश करता है।

#### अ. संदर्भ

पश्चिमी विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रतिमान में फिट न होने वाले स्थानीय ज्ञान के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाली बहसों में आम तौर पर पारंपरिक ज्ञान जैसी अभिव्यक्ति का इस्तेमाल किया जाता है। निरंतर विकसित होते रहने वाला यह ज्ञान देशज और आदिवासी समुदायों का ज्ञान तो है ही, साथ ही यह जंगल से संबंधित या खेती से जुड़ी सभी तरह की जैवविविधता के बारे में किसानों की जानकारी और व्यवहार को अपने दायरे में समेट लेता है। जड़ी-बूटियों और स्थानीय दवा-दारू के विशेषज्ञ वैद्यों, हकीमों, ओझाओं और दूसरे किस्म के चिकित्सकों की

विद्या भी इसी दायरे में आ जाती है। समुदायों और व्यक्तियों की सांस्कृतिक विरासत संबंधी विभिन्न संरचनाओं को भी पारंपरिक ज्ञान का अंग समझा जाता है। इसका विस्तार वाचिक परंपरा, प्रदर्शनकारी कलाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों आदि पहलुओं तक होता है।

इसी बात को इस तरह भी कहा जा सकता है कि पश्चिमी कानूनी प्रणालियों द्वारा विकसित विधिक उपादानों से पारंपरिक ज्ञान और विद्या संरक्षित नहीं हो सकती। प्लांट ब्रीडर अधिकारों और किसानों के अधिकारों के बीच द्विभाजन से हम इस समस्या को समझने की शुरुआत कर सकते हैं। पश्चिमी प्रौद्योगिकीय माहौल में वनस्पति की किस्मों में किए गए सुधार को संरक्षित करने के लिए प्लांट ब्रीडर अधिकार विकसित किए गए हैं। लेकिन, किसानों द्वारा विकसित की गई किस्मों का तकनीकी और प्रौद्योगिकीय आधार भिन्न होता है। इसीलिए, इस तरह के आविष्कार अति-आधुनिक प्रौद्योगिकी की कसौटियों पर खरे नहीं उतरते, और उन्हें कानूनी संरक्षण के दायरे से बाहर माना जाता है।

ज्यादा से ज्यादा यह प्रणाली सार्वजनिक दायरे में मौजूद और अलग तरीके से विकसित हो रहे ज्ञान के अनधिकृत प्रयोग को रोकने के लिए नकारात्मक किस्म के संरक्षण मुद्देया करता है। असल में मौजूदा सम्पदा अधिकार पारंपरिक ज्ञान धारकों के फायदे के लिए दो तरह से इस्तेमाल किए जा सकते हैं। पहला तरीका तो यह है कि मौजूदा प्रणाली को थोड़ा बदल कर पारंपरिक ज्ञान की जरूरतों और चरित्र के अनुकूल बना लिया जाए। दूसरा तरीका वही है कि पारंपरिक ज्ञान को नकारात्मक संरक्षण दिया जाए जिसके मुताबिक दूसरे लोग उसका बिना इजाजत विनियोग न कर सकें।

संरक्षण के साथ-साथ पारंपरिक ज्ञान अपने सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संदर्भ की तरफ भी ध्यान देने की माँग करता है। यह परिप्रेक्ष्य माँग करता है कि पारंपरिक ज्ञान स्थावर नहीं होता। उसे भी आगे विकसित होने के लिए प्रोत्साहन और आर्थिक सहयोग की जरूरत होती है। इसलिए उसके संरक्षण हेतु केवल दस्तावेजीकरण जैसे उपायों से काम नहीं चलने वाला।

पारंपरिक ज्ञान को आम तौर पर सामूहिक प्रकृति का समझा जाता है। इसलिए अक्सर उसके बारे में देशज और जनजातीय समुदायों के संदर्भ में बात की जाती है। एक सरलीकृत तरीके से मान लिया जाता है कि पारंपरिक ज्ञान सामूहिक है, और पश्चिमी आधुनिक ज्ञान का रुझान वैयक्तिक है। पर असल में यह एक अपर्याप्त धारणा है। पारंपरिक ज्ञान का ताल्लुक व्यक्तिगत स्तर पर किसानों के आविष्कारों और बौद्धिक सम्पदाओं से भी है। पारंपरिक ज्ञान जरूरी नहीं कि केवल इलाके में ही सीमित हो। पारंपरिक ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दिए जाने वाले ज्ञान और समाज में प्रचलित ज्ञान के रूप में भी देखा जाना चाहिए। इसी के एक उदाहरण के रूप में इस अध्याय में हल्दी के उपचारात्मक प्रयोग से जुड़े विवाद की चर्चा की गई है।

## ब. पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के लिए मौजूदा अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्थाएँ और प्रस्तावित पहलकदमियाँ

जेनेटिक इंजीनियरिंग के विकास के कारण पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण बहस के केंद्र में आ गया है, इस प्रक्रिया में विकसित और विकासशील देश आमने-सामने आ गए हैं। विकासशील देशों के पास अधिकतर पारंपरिक ज्ञान है, और विकसित देश उसका ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल करना चाहते हैं। इसके अलावा विकासशील देशों की सरकारों और पारंपरिक ज्ञान के उन्हीं देशों में मौजूद धारकों के बीच भी अंतर्विरोध है। सरका विदेशियों के मुकाबले पारंपरिक ज्ञानधारकों के अधिकारों की दावेदारी तो करती हैं, पर इस बात पर ज्यादा ध्यान नहीं देती कि ज्ञानधारक देश के भीतर ही व्यक्तियों या राज्य के मुकाबले अपने अधिकारों का दावा कर सकें।

अंतर्राष्ट्रीय कानून में पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के लिए कोई बाध्यकारी प्रावधान नहीं है। ट्रिप्स समझौता तो इसका जिम्मेदार नहीं करता। अगर पारंपरिक ज्ञान के आधार पर किए गए आविष्कार सम्पदा अधिकारों की मौजूदा श्रेणियों में फिट बैठते हैं तो ही उन्हें संरक्षण लायक माना जाता है, पर इस तरह के ज्ञान की विशिष्ट प्रकृति को कोई मान्यता नहीं दी जाती है। जाहिर है इन्हीं कारणों से पारंपरिक ज्ञान पर ज्यादातर बहस पर्यावरण और मानवाधिकार संबंधी मंचों पर ही होती है।

जैवविविधता कन्वेंशन के अनुच्छेद ८(जे) का ताल्लुक पारंपरिक ज्ञान से है। यह प्रावधान जैवविविधता प्रबंधन के लिए पारंपरिक ज्ञान को बचाए रखना बहुत जरूरी मानता है। इस अनुच्छेद का कार्यक्षेत्र तय करने के लिए बने वर्किंग ग्रुप ने एक गैर सम्पदा अधिकार आधारित सुइ जेनरिस प्रणाली पर गौर करना प्रारंभ किया है जिसमें पारंपरिक ज्ञान के स्वामित्व और पहुँच समेत पूर्वसूचित सहमति, लाभों के बँटवारे और रजिस्ट्रेशन सिस्टम पर भी विचार किया जाएगा। कांफ्रेंस ऑव पार्टीज़ ने इसके भी आगे जा कर २००४ में एक निर्देशिका बनाई जिसने पर्यावरण पर पड़ने वाले असर के आकलन में सांस्कृतिक और सामाजिक आकलन को भी शामिल कर लिया। इन निर्देशों के अनुसार पर्यावरण पर पड़ने वाले असर पर किए जाने वाले किसी भी आधारभूत अध्ययन में पारंपरिक ज्ञान को एक अनिवार्य घटक मान कर चलना होगा, चाहे समुदाय पर पड़ने वाले असर का आकलन हो या संसाधनों की आर्थिक कीमत का गणना का प्रश्न हो।

पारंपरिक ज्ञान से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करने के लिए जैवविविधता कन्वेंशन सर्वाधिक जीवंत मंचों में से एक है। इसके अलावा डेजर्टिफिकेशन कन्वेंशन भी संरक्षण और लाभों के उचित बँटवारे की चर्चा करता है। इसी तरह देशज लोगों के अधिकारों की उद्घोषणा का मसविदा इन समुदायों के लिए अपनी बौद्धिक और सांस्कृतिक सम्पदा पर संपूर्ण स्वामित्व, नियंत्रण और संरक्षण को मान्यता देता है। इसके अलावा डब्ल्यूआईपीओ ने पिछले एक दशक में ऐसे क्षेत्रों में भी बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की बहस पहुँचाई है जो ट्रिप्स समझौता वार्ता के समय उसके दायरे में शामिल नहीं थे। नब्बे के दशक के आखिर से ही इंटरगवर्नमेंटल कमेटी ऑन इंटेलेक्चुअल प्रापर्टी एंड जेनेटिक रिसोर्सिज, ट्रेडीशनल नॉल्लिज एंड फोकलोर के जरिए डब्ल्यूआईपीओ पारंपरिक ज्ञान के क्षेत्र में प्रमुख भूमिका के साथ उभरा है।

हालाँकि इंटरगवर्नमेंटल कमेटी ने बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के जरिए पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने के लिए काफी बहस की है, और बहुत सी रपटें जारी की हैं, पर अभी तक उसे किसी तरह की आमसहमति बनाने में कामयाबी नहीं मिली है। इसका एक प्रमुख कारण विकसित देशों द्वारा किए जा रहे विरोध में निहित है। ये देश पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण की कोई अंतर्राष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा प्रणाली विकसित करने के लिए राजी नहीं है। दूसरी समस्या यह है कि विभिन्न सदस्य देशों को यह तय करने में दिक्कत आती है कि वे पारंपरिक ज्ञान के मोर्चे पर सक्रिय संस्थाओं और मंचों के बीच अपनी प्राथमिकता कैसे तय करें। हर संस्था अपने-अपने तरीके से अपने दायरे को बढ़ाते हुए इस अंतर्राष्ट्रीय वार्ता

में भाग लेना चाहती है। सरकारों के प्रतिनिधि भी हर संस्था में अलग-अलग हैं। चूँकि वे अलग-अलग मंत्रालयों से आते हैं, इसलिए उनकी प्राथमिकताएँ और रणनीतियाँ भी भिन्न हैं। इंटरगवर्नमेंटल कमेटी ने अभी तक पारंपरिक ज्ञान संबंधी वार्ता के लिए कोई ठोस प्रस्ताव सामने नहीं रखा है, और वार्ता का भविष्य पूरी तरह सदस्य देशों के हाथ में ही है। यह जरूर है कि डब्ल्यूपीआईओ के संदर्भ में कुछ मुख्य नीतिगत उपादानों और विधिक सिद्धांतों की तरफ इशारा जरूर किया गया है। इसमें ऐसे सम्पदा अधिकारों की रचना भी शामिल है जो पारंपरिक ज्ञान धारकों को अपने ज्ञान पर पूरा कानूनी नियंत्रण दिला सकने में सक्षम हों। इसमें पूर्वसूचित सहमति, मुआवजा देने और अनुचित होड़ रोकने का धारणा और मौजूदा रिवाजी कानून को मान्यता देना भी शामिल है। मुआवजे को छोड़ कर बाकी सभी बातें प्रचलित बौद्धिक सम्पदा अधिकार के ढाँचे से परे जाती हैं। इससे समझा जा सकता है कि कुछ देश पारंपरिक ज्ञान पर चर्चा करने के लिए डब्ल्यूआईपीओ जैसे मंच को संदिग्ध क्यों मानते हैं।

## स. बौद्धिक सम्पदा संरक्षण का पारंपरिक ज्ञान पर असर

हालाँकि पारंपरिक ज्ञान के लिए कोई कानूनी संरक्षण उपलब्ध नहीं है, पर उसका इस्तेमाल करके जेनेटिक इंजीनियरिंग द्वारा बनाए गए उत्पादों के कारण बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और पारंपरिक ज्ञान के बीच एक अप्रत्यक्ष सा सूत्र जरूर कायम हुआ है। इसका पारंपरिक ज्ञान के स्वामित्व पर प्रभाव पड़ा है। सम्पदा अधिकारों के प्रचलित ढाँचे के कारण हुआ यह है कि मुक्त रूप से उपलब्ध पारंपरिक ज्ञान सार्वजनिक दायरे में मान लिया गया है, इसलिए उस पर कोई दावा नहीं कर सकता। लेकिन, पारंपरिक ज्ञान आधारित उत्पादों के कारण पारंपरिक ज्ञानधारकों के अधिकार बौद्धिक सम्पदा अधिकार धारकों के हाथ में जा रहे हैं। पारंपरिक ज्ञानधारकों पर सम्पदा अधिकारों की भू-क्षेत्रीयता का भी सीधा असर पड़ रहा है। ट्रिप्स के न्यूनतम मानकों का मतलब ही यह है कि अलग-अलग देशों में पेटेंटपात्रता अलग-अलग होगी। कुछ देशों में पेटेंटपात्रता का स्तर दूसरे देशों से ऊँचा हो सकता है। कुछ देशों में, खासकर उद्गम वाले देशों में पारंपरिक ज्ञान पेटेंट करने पर प्रतिबंध हो सकता है, पर दूसरे देश उस पर पेटेंट देने की इजाजत दे सकते हैं। तीसरे, पारंपरिक ज्ञान के आधार पर बनाए गए उत्पादों के संरक्षण के कारण पारंपरिक ज्ञान के प्रति व्यावसायिक नजरिया अपनाने का रवैया पैदा हुआ है। अर्थात्, जेनेटिक इंजीनियरिंग के कारण व्यावसायिक जगत की ऐसे पारंपरिक ज्ञान में अधिक रुचि पैदा हुई है जिसकी बाजार में माँग हो सकती है। चौथे, रजिस्ट्रेशन के जरिए पारंपरिक ज्ञान से संबंधित उत्पादों और प्रक्रियाओं को विनियोग से बचाया जा सकता है। साथ ही रजिस्ट्रेशन का प्रावधान मौजूदा पारंपरिक ज्ञान का क्षरण रोकने में भी मददगार हो सकता है। पारंपरिक ज्ञान के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विनियोग से स्पष्ट है कि पारंपरिक ज्ञान तक पहुँच को विनियमित करने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कानूनी ढाँचा विकसित करना जरूरी हो गया है।

जैसा कि हम जानते हैं कि जेनेटिक इंजीनियरिंग द्वारा पारंपरिक ज्ञान की मदद से बनाए गए उत्पादों और प्रक्रियाओं को पेटेंट किया जाता है, पर पारंपरिक ज्ञान को सार्वजनिक दायरे में मान कर सबके लिए मुक्त रूप से उपलब्ध रहने दिया जाता है। इससे एक असंतुलन पैदा हुआ है जिसका असर पारंपरिक ज्ञान के धारकों पर पड़ा है। स्थिति यह है कि कुछ विकसित देशों में पारंपरिक ज्ञान को भी पेटेंट करने की घटनाएँ प्रकाश में आई हैं, और कुछ देशों में उससे बनने वाले उत्पादों को पेटेंट किया गया है जबकि उद्गम वाले देशों में इस तरह की पेटेंटपात्रता उपलब्ध नहीं है। जाहिर है कि ये दोनों ही मामले बायो-पायरेसी या जैव-चोरी के हैं। पहला मामला तो सो फीसदी चोरी है, और दूसरा कुछ देशों में कानूनी है तो कुछ अन्य देशों में गैर-कानूनी। इसका एक उदाहरण हल्दी के पेटेंट के संबंध में सामने आया है।

यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिसिसिपी मेडिकल सेंटर के दो शोधकर्ताओं सुमन के. दास और हरिहर पी. कोहली ने अमेरिका में हल्दी को पेटेंट कराने के लिए आवेदन किया। भारत में हल्दी के पारंपरिक इस्तेमाल के आधार पर उनका दावा था कि घाव पर लगाने या हल्दी का सेवन करने से शरीर में एंडोथेलाइल सेल बढ़ते हैं जिससे घाव भरने, सूजन घटने आदि में बहुत फायदा होता है। १९९५ में पेटेंट के इस आवेदन को मान लिया गया। हल्दी पेटेंट हो गई। पर, बाद में पता चला कि हल्दी से संबंधित यह ज्ञान तो भारत में सार्वजनिक दायरे की सम्पत्ति है। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद ने अमेरिका में ही इस पेटेंट के खिलाफ मुकदमा किया, और दोबारा जाँच के बाद २८ मार्च १९९९ को पेटेंट खारिज कर दिया गया।

हल्दी के पेटेंट का मामला उद्गम वाले देश में पारंपरिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण की जरूरत पर रोशनी डालता है। अगर हल्दी से संबंधित ज्ञान के दस्तावेज लिखित रूप में मौजूद होते तो अमेरिकी पेटेंट दफ्तर अर्जी देने वाले के दावों की ठीक से जाँच कर पाता। इस मामले से यह भी पता चलता है कि पारंपरिक ज्ञान के विनियोग रोकने के लिए विदेशी जमीन पर मुकदमा लड़ना कितना मुश्किल है। जहाँ तक पारंपरिक ज्ञान के आधार पर बनाए गए उत्पादों और प्रक्रियाओं के पेटेंट का सवाल है, उन्हें तो विदेशी जमीन पर कानूनी रूप से चुनौती तक नहीं दी जा सकती क्योंकि उस देश के न्यायक्षेत्र में वह पेटेंट पूरी तरह वैधानिक होता है।

विभिन्न देशों में बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के स्तर अलग-अलग हैं। कुछ देश ट्रिप्स के तहत मिली गुंजाइशों का लाभ उठाते हुए पेटेंटपात्रता को सीमित रखते हैं, और कुछ देश न्यूनतम मानकों से परे जाते हुए पेटेंटपात्रता ज्यादा बड़े दायरे में लागू करते हैं। इसके कारण ज्ञान पर नियंत्रण और संप्रभु अधिकारों का सवाल उठता है। पारंपरिक ज्ञान से जुड़े संसाधनों को उद्गम देश से बाहर ले जाने के मामले में पहुँच का प्रश्न शामिल है। जैवविविधता कन्वेंशन और पीजीआरएफए ट्रीटी साफ करती हैं कि सरकारों को अपने संसाधनों तक पहुँच नियंत्रित करने का अधिकार है। इसी सिलसिले में एक स्थिति यह भी देखने में आई है कि विकासशील देशों की सरकारें दूसरे देशों के मुकाबले पारंपरिक ज्ञानधारकों के हितों की जम कर तरफदारी करती हैं, पर अपने देश के भीतर उनकी रवैया व्यावसायिक ब्रीडरों के पक्ष में ही झुका रहता है।

इस तरह की समस्याओं से निबटने का एक तरीका यह समझा गया है कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाभों के बँटवारे का एक कानूनी ढाँचा बनाया जाए। इस सुझाव के तहत पारंपरिक ज्ञान को सम्पदा अधिकारों से अलग मान कर समझ लिया गया है कि ऐसे ज्ञान के धारकों को अपने ज्ञान पर नियंत्रण नहीं है इसलिए उन्हें इसका कुछ न कुछ मुआवजा जरूर मिलना चाहिए। जैव-चोरी रोकने दूसरा तरीका सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली का विकास है जो फिलहाल धीरे-धीरे हो रहा है। तीसरा तरीका गलत विनियोग को कानूनी रूप से चुनौती देने का ही हो सकता है, लेकिन जैसा कि हल्दी के मामले में देखा गया, इसमें भारत जैसे बड़े देश को भी विदेशों में इस तरह की कानूनी लड़ाई लड़ने में काफी

दिवक्तों आती हैं। कुल मिला कर इस समस्या का सबसे अच्छा समाधान यही है कि पारंपरिक ज्ञानधारकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक कानूनी ढाँचा बनाया जाए और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे नए उसूल और नियम सूत्रबद्ध किए जाएँ जिससे मौजूद कानूनी ढाँचे की खामियाँ दूर हो सकें।

पारंपरिक ज्ञान के आधार पर बनाए गए उत्पाद को किसी दूसरे न्यायक्षेत्र में पेटेंटपात्र मान कर विनियोग के उदाहरण बहुत से हैं। इनमें नीम का उदाहरण खास तौर से दिलचस्प है। नीम की घरेलू और कृषि संबंधी खूबियों से तकरीबन सारा भारत परिचित है। व्यावसायिक अनुसंधानकर्ताओं का ध्यान नीम की पत्तियों से जैवकीटनाशक बनाने की तरफ गया है। उनके सामने दिक्कत यह रही है कि कुछ दिन के बाद नीम से बना यह कीटनाशक खराब हो जाता है। अमेरिका और यूरोप में भारतीय और विदेशियों कंपनियों और आविष्कारकों को नीम संबंधी कीटनाशक के कई पेटेंट दिए गए हैं। १९९२ में अमेरिकी पेटेंट और ट्रेडमार्क ऑफिस ने नीम के कीटनाशक घटक एज़ाडिराक्टिन को टिकाऊ बनाने की विधि का पेटेंट डब्ल्यू.आर. ग्रेस को दिया। इसके बाद अमेरिकी पर्यावरण संरक्षण एजेंसी (ईपीओ) ने ग्रेस के एज़ाडिराक्टिन घोल को नामिक्स नाम से पंजीकृत कर लिया। १९९४ में ईपीओ ने ग्रेस को नीम के एंटी-फंगल प्रोडक्ट का पेटेंट दे दिया। इसे चुनौती दी गई और कहा गया कि इसे बनाने के लिए अपनायी गई नीम का सत निकालने की प्रक्रिया नई नहीं है, बल्कि पारंपरिक है। २००० में ईपीओ ने माना कि यह आविष्कार नवीनता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। लेकिन, पेटेंट खारिज करने के फैसले के खिलाफ कुछ क्रिया-विधि संबंधी मसले के आधार पर अपील कर दी गई जिसे २००५ में मान लिया गया।

नीम के पेटेंट से जुड़े विवाद से कई सबक सीखे जा सकते हैं। अगर नीम के पेटेंटों के खिलाफ लड़ना है तो सारी दुनिया में अलग-अलग देशों में कानूनी विवाद में उतरना होगा। व्यावसायिक कीटनाशक बनाने के लिए नीम के मूल कीटनाशक पहलुओं में कुछ परिवर्तन करना जरूरी है। इसके लिए भारी मात्रा में नीम के बीज चाहिए। इस जरूरत की पूर्ति के चक्कर में होगा यह कि भारत में नीम के बीज महंगे हो जाएँगे। पिछले बीस सालों में नीम के बीजों की महंगाई बहुत बढ़ भी गई है। अहम बात यह भी है कि अपील सुनने वाली एथारिटी ने यह नहीं माना कि नीम के उत्पाद को पेटेंट कराने से लोगों की आजीविका पर असर पड़ रहा है, क्योंकि पेटेंट का आवेदन नीम के पेड़, बीज या नीम के तेल को पेटेंट कराने से जुड़ा हुआ नहीं था। इसके अलावा पेटेंट की अर्जी देने वालों में भारतीय नागरिक और कंपनियाँ भी हैं। यानी पारंपरिक ज्ञान के विनियोग का सवाल केवल गरीब-अमीर देश का ही झगड़ा नहीं है।

वैसे तो जैव-चोरी की समस्या सभी विकासशील देशों के लिए चिंता का विषय है, पर हल्दी के पेटेंट से जुड़े विवाद के बाद भारत ने कानूनी नजरिए से इस ओर विशेष ध्यान दिया है। सरकार ने पारंपरिक ज्ञान का डेटाबेस बनाने का फैसला किया है ताकि विदेशों में इस ज्ञान का अन्यायपूर्ण ढंग से विनियोग न किया जा सके। अलिखित रूप में मौजूद पारंपरिक ज्ञान का रजिस्ट्रेशन करने का फैसला भी किया गया है। जैवविविधता एक्ट को अंगीकार करना और नेशनल बायोडायवर्सिटी एथारिटी की स्थापना इसी दिशा में उठाया गया कदम है।

कुल मिला कर पारंपरिक ज्ञान संबंधी विवाद ने एक बात तो प्रमाणित कर ही दी है कि मौजूदा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को ऐसा ही नहीं छोड़ा जा सकता। अगर इस प्रणाली में परिवर्तन नहीं किए गए या लाभों के बँटवारे के मसले को नहीं सुलझाया गया तो पारंपरिक ज्ञान का विनियोग नहीं रोका जा सकेगा।

## द. पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण कैसे करें

सारी समस्याओं का नतीजा यह निकला है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के दायरे में नीति निर्माता पारंपरिक ज्ञान के मुद्दे पर विचार करने में विफल रहे हैं। दूसरी ओर ज्ञानधारकों को भी औपचारिक कानूनी प्रणाली पर काफी-कुछ अविश्वास है। उन्हें सम्पदा अधिकारों के क्षेत्र में हो रहे विकास में दिलचस्पी ही नहीं है। इस हालत में जेनेटिक इंजीनियरिंग के विकास से कुछ तब्दीली आनी शुरू हुई है। अब विकासशील देश और पारंपरिक ज्ञान के धारक मान्यता, मुआवजे और संरक्षण की दावेदारियाँ करने लगे हैं। इसी प्रक्रिया में यह भी स्पष्ट हुआ है कि पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के लिए बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का प्रतिमान ही एकमात्र विकल्प नहीं है।

इस बारे में तीन पहलुओं का ध्यान रखना जरूरी है। पारंपरिक ज्ञान की रक्षा, उसके धारकों के अधिकारों और हितों की सुरक्षा। ध्यान रहे कि जैविक संसाधनों पर राष्ट्रों के संप्रभु अधिकारों के उसूल के मुताबिक ही संसाधनों तक पहुँच का सवाल तय होता है। इसी के साथ उद्गम देश की पूर्वसूचना सहमति का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। दो देशों के बीच के संबंधित मसलों में तो पूर्वसूचना सहमति का सिद्धांत स्थापित हो गया है, पर समस्या यह है कि इससे राष्ट्रीय स्तर पर पारंपरिक ज्ञान के धारकों को लाभ पहुँचने की गारंटी नहीं होती। इस बारे में चुनौती यह है कि ज्ञानधारकों से भी पूर्वसूचना सहमति ली जाए ताकि वे अपने ज्ञान तक पहुँच को नियंत्रित कर सकें, उसके व्यवसायीकरण और इस्तेमाल की प्रक्रिया अपने हाथ में रख सकें। अगर पारंपरिक अधिकारों को सम्पदा अधिकारों की तरह मान्यता नहीं भी दी गई है, तो उस सूरत में पूर्वसूचना सहमति ही अधिकारों पर उनके नियंत्रण की सीमा बन जाती है। इस तरह की परिस्थितियों में ज्ञान के व्यावसायिक दोहन से हुए फायदों का ज्ञान के मूल धारकों के बीच एक हद तक बँटवारा करने की प्रणाली अपनाने पर एक तरह की रजामंदी होती जा रही है।

बिना इजाजत विनियोग रोकने के लिए मौजूदा ज्ञान का प्रकाशन करना भी एक विकल्प है। सबकी समझ में आने वाली भाषा और प्रारूपों का इस्तेमाल करते हुए रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया भी इसमें शामिल है ताकि पेटेंट अफसरों के सामने ज्ञान के पहले से उपलब्ध रूपों को सुनिश्चित किया जा सके और संभावित विवाद की सूरत में ज्ञानधारक अपने स्वामित्व का दावा कर सकें। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह समझ बनी है कि अगर हल्दी के पेटेंट जैसे प्रकरणों का दोहराव रोकना है तो पारंपरिक ज्ञान के रजिस्ट्रेशन को अपनाना होगा। हालाँकि, रजिस्ट्रेशन से ज्ञान के केवल उन्हीं रूपों का विनियोग रोका जा सकता है जो पहले से सार्वजनिक दायरे में हैं। कुछ अन्य विकल्प भी हैं। जैसे ज्ञान पर बिना पूरे अधिकार को मान्यता दिए बिना मुआवजा देने का प्रावधान।

चूँकि पारंपरिक ज्ञान की संरचना और प्रकृति खास तरह की होती है इसलिए उसके संरक्षण की विधियाँ एक-दूसरे से भिन्न भी हो सकती हैं। अगर कोई विदेशी यह ज्ञान प्राप्त करना चाहता है तो पारंपरिक ज्ञानधारक पहुँच पर नियंत्रण से संतुष्ट हो सकते हैं। स्थानीय सरकारी संस्था या

सरकार को बीच में डालने से उनकी सौदेबादी की ताकत बढ़ सकती है, बावजूद इसके कि इस विनियम में सरकार का स्वार्थ कुछ और भी हो सकता है। एक अहम बात यह है जिसका ध्यान रखना आवश्यक है कि पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण की कोई भी प्रक्रिया लोकतांत्रिक होनी चाहिए और सहभागिता पर आधारित होनी जरूरी है। इसमें समस्या यह आती है कि पारंपरिक ज्ञानधारकों का राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नीति संबंधी बहसों में ठीक से प्रतिनिधित्व ही नहीं होता। अगर नीतिगत लक्ष्यों के सूत्रीकरण के समय ही पारंपरिक ज्ञानधारकों की सहभागिता सुनिश्चित कर दी जाए तो बनने वाला कानूनी ढाँचा उनकी स्थानीय परंपराओं और ज्ञान के मौजूदा उपयोग के लिए नुकसानदेह साबित नहीं होगा। कुल मिला कर यह मामला देशज लोगों के मानवाधिकारों और आत्मनिर्णय से भी जुड़ा है और अलग-अलग देशों और हालात के मुताबिक भिन्न रवये अख्तियार करने की चुनौती पेश करता है।

कई देशों ने अपने स्तर पर पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण और इस्तेमाल के लिए कानूनी ढाँचे अंगीकार किए हैं। भारत में मोटे तौर पर यह प्रक्रिया अभी विकसित होने के दौर में है। इस सिलसिले में प्लांट वेराइटी एक्ट और जैवविविधता एक्ट के तहत पहुँच और लाभों में बँटवारे के प्रावधानों पर नजर डाली जा सकती है। प्लांट वेराइटी एक्ट में किसानों के अधिकारों पर एक पूरा अध्याय ही जोड़ा गया है जिसका मकसद पारंपरिक कृषि संबंधी ज्ञान को कुछ संरक्षण मिल सकता है।

पारंपरिक ज्ञान के विनियोग को रोकने के लिए पेटेंट एक्ट में एक महत्वपूर्ण प्रावधान है कि न तो पारंपरिक ज्ञान के पेटेंट की इजाजत दी जाएगी, और न ही किसी पारंपरिक घटक के पहले से ज्ञात खूबियों की नकल करने दी जाएगी। दूसरी तरफ इन प्रावधानों का असर यह भी पड़ा है कि मौजूदा पेटेंट प्रणाली के जरिए पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण और कठिन हो गया है, हालाँकि इस कानूनी ढाँचे में पारंपरिक ज्ञानधारकों द्वारा पेटेंट की अर्जी लगाने पर रोक नहीं है।

लेकिन, ये सारे बंदोबस्त नकारात्मक किस्म के हैं। जहाँ तक सकारात्मक उपायों का सवाल है, जैवविविधता एक्ट स्थानीय लोगों के सम्मान करने और उसकी सुरक्षा करने की केंद्र सरकार से अपील भर करता है। बायोडायवर्सिटी एथारिटी से भी उम्मीद की जाती है कि वह पारंपरिक ज्ञान का डेटाबेस विकसित करेगी। हालाँकि निजी तौर पर सरकार के सामने कुछ प्रस्ताव रखे गए हैं, पर सुइ जेनरिस कानूनी ढाँचा बनाने की तरफ अभी तक सकारात्मक प्रयास नहीं किए गए हैं। भारत के अलावा एक उदाहरण कोस्टारिका का है जहाँ सामुदायिक स्तर पर सुइ जेनरिस संरक्षण का प्रावधान किया गया है। इस कानून की खास बात यह है कि इसमें एक ही ज्ञान के लिए अगर एक समूह ने रजिस्ट्रेशन कराया हुआ है, तो इससे दूसरे समूह पर उसी ज्ञान के लिए रजिस्ट्रेशन कराने पर पाबंदी नहीं लगती। कोस्टारिका का जैवविविधता एक्ट बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और सामुदायिक सम्पदा अधिकारों को अलग-अलग करके देखता है। वहाँ सुइ जेनरिस प्रणाली के तहत संरक्षित किसी भी ज्ञान के लिए कोई सम्पदा अधिकार नहीं दिए जा सकते। फिलीपींस ने देशज लोगों के अधिकार के लिए विस्तृत प्रावधान अंगीकार किए हैं, जिसमें उनकी जमीन, मानवाधिकारों, स्व-शासन और सांस्कृतिक आयामों का तो ख्याल रखा ही गया है, साथ ही उन्हें अपने ज्ञान पर नियंत्रण और स्वामित्व भी दिया गया है। पेरू ने एक ऐसी प्रणाली अंगीकार की है जिसका जोर जैविक संसाधनों से संबंधित सामूहिक पारंपरिक ज्ञान पर है। सामूहिक ज्ञान कानून केवल यह गारंटी करता है कि पारंपरिक ज्ञान के बाहरी लोगों द्वारा इस्तेमाल की सूरत में ज्ञानधारकों के साथ निष्पक्षता बरती जाए। यह देशज लोगों को अपने ज्ञान के व्यावसायिक इस्तेमाल का अधिकार नहीं देता, बल्कि उनके प्रतिनिधि संगठनों की सहमति के आधार पर उनके ज्ञान तक पहुँच का प्रावधान करता है।

कानून पारंपरिक ज्ञान तक पहुँच के समय उसके सार्वजनिक दायरे में होने या न होने के बीच फर्क करता है। अगर ज्ञान सार्वजनिक दायरे में नहीं है, तो उसके आधार पर बने उत्पाद से हुई आमदनी का दस फीसदी देशज लोगों के हितार्थ खर्च किए जाने का प्रावधान है। अगर ज्ञान के सार्वजनिक दायरे में आए बीस साल से कम अवधि ही हुई है तो भी अब तक अनिश्चित प्रतिशत को देशज लोगों के विकास के लिए स्थापित फंड में दिए जाने की व्यवस्था है। पर, अगर ज्ञान सार्वजनिक दायरे में बीस साल से अधिक समय से है, तो किसी भी मुआवजे का प्रावधान नहीं है।

कुछ विकसित देशों ने भी पारंपरिक ज्ञान की संरक्षा के लिए कुछ कानूनी प्रावधान किए हैं। जैसे पुर्तगाल ने वनस्पति की किस्मों के रजिस्ट्रेशन की व्यवस्था की है ताकि उनका विनियोग न हो सके।

## १० पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के लिए कुछ और विकल्प

पिछले अध्याय से जाहिर है कि अपने ज्ञान के संरक्षण के मामले में पारंपरिक ज्ञानधारकों की राह कठिन है। बौद्धिक सम्पदा अधिकार संरक्षण की मौजूदा प्रणाली उनके आविष्कारों के बदले उन्हें लाभान्वित करने की स्थिति में नहीं है। यह प्रणाली ज्ञानधारकों द्वारा अपने ज्ञान के बाहर वालों द्वारा विनियोग को नियंत्रित करने की संभावनाएँ भी कमजोर कर देती है।

इस अध्याय में विचार किया गया है कि मौजूदा सम्पदा अधिकार संरचनाओं को थोड़ा फेर-बदल करके पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है या नहीं। जाहिर है कि तब्दीलियों के बाद भी जो गुंजाइशें बनेंगी, वे पारंपरिक ज्ञान की जरूरतों के लिहाज से पर्याप्त नहीं होंगी, क्योंकि सम्पदा अधिकारों का मौजूदा ढाँचा बुनियादी रूप से उनके अनुकूल नहीं है। दरअसल, इसका जो भी लाभ उठाया जा सकता है, वह सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली के जरिए ही संभव है, क्योंकि इसके साथ समतामूलकता और ज्ञान को बचाए रखने के सरोकार भी जुड़े हुए हैं।

### अ. मौजूदा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को पारंपरिक ज्ञानधारकों के अनुकूल बनाने का सवाल

हम देख चुके हैं कि अपनी बुनियादी मान्यताओं के कारण पेटेंट प्रणाली पारंपरिक ज्ञान की संरचनाओं के अनुकूल नहीं है। साथ ही पेटेंट के लिए आवेदन करना और फिर दिए गए अधिकारों को कायम रखना भी अपने-आप में खासा खर्चीला काम है। पारंपरिक ज्ञानधारक इस तरह की महंगी प्रक्रिया में नहीं जा सकते।

इसके बावजूद पेटेंट प्रणाली के तीन पहलू विचारणीय हैं। पहला, कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी होती हैं जिनमें इस प्रणाली के भीतर से पारंपरिक ज्ञान के लिए गुंजाइश निकल सकती है। दूसरे, पेटेंट प्रणाली का महंगा होना अन्य छोटे आविष्कारकों के लिए भी मुश्किलें पैदा करता है। तीसरे, भौगोलिक सूचकों की श्रेणी में पारंपरिक ज्ञानधारकों के लिए कुछ स्पेस मौजूद है।

जैसा कि हम देख चुके हैं पारंपरिक ज्ञान के प्रति अपनी प्रतिकूलताओं के बावजूद पेटेंट प्रणाली सार्वजनिक दायरे में मौजूद इस तरह के ज्ञान को बाहरी लोगों द्वारा पेटेंट करने से रोकती है। कुछ ऐसे तरीके भी हैं जिन्हें अपना कर यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि पेटेंट प्रणाली के जरिए भविष्य में भी पारंपरिक ज्ञान का बाहर वाले लोग विनियोग न कर सकें।

इनमें एक तरीका है प्रायर आर्ट सर्च यानी ज्ञान के बारे में पेटेंट का आवेदन देने के पहले से उपलब्ध ज्ञान संबंधी सूचना जिसके बारे में अलग-अलग देशों के अपने-अपने कानून हैं। पेटेंट ऑफिस किसी भी आविष्कार की नवीनता की जाँच करने के लिए पता लगाता है कि उससे जुड़ा हुआ कितना ज्ञान सार्वजनिक दायरे में मौजूद है। कई जगहों पर पारंपरिक ज्ञान के प्रायर आर्ट के साथ समस्या यह होती है कि उसके केवल मौखिक रूप ही मौजूद होते हैं जिन्हें अमेरिका जैसे देश में प्रामाणिक नहीं माना जाता। दूसरे, एक भू-क्षेत्रीयता की स्थिति भी है जिसके तहत एक देश में किसी आविष्कार की प्रायर आर्ट दस्तावेजी रूप में मौजूद हो सकती है, पर पेटेंट की अर्जी किसी दूसरे देश में लगाई जाती है। ऐसी हालत में पेटेंट मंजूर कर लिए जाने के बावजूद उसका विरोध किया जा सकता है। हालाँकि यह विरोध करना काफी महंगा और दिक्कततलब होता है, पर वेनेजुएला जैसे कुछ देशों ने तय किया है कि वे इस रणनीति पर जरूरत के हिसाब से अमल करेंगे।

इस समस्या से निबटने के लिए पारंपरिक ज्ञान का डेटाबेस विकसित किया जा सकता है। इसके जरिए पेटेंट के आवेदनों पर विचार करते समय पेटेंट ऑफिस आसानी से पता लगा सकता है कि किसी आविष्कार के बारे में सार्वजनिक दायरे में पारंपरिक ज्ञान के तहत पहले से जानकारी मौजूद तो नहीं है, और अगर मौजूद है तो किस स्तर की। इस तरीके से वह सुनिश्चित कर सकता है कि आविष्कार निम्न स्तर का है या उच्च स्तर का। लेकिन, यह तरीका कुछ अधिक पेचीदा मामलों में समस्या हल करने से इनकार भी कर सकता है। ओर्याज़ा लॉजिस्टामिनाटा के उदाहरण से इस बात को समझा जा सकता है। भारतीय शोधकर्ताओं ने चावल की यह किस्म माली के किसानों से प्राप्त की थी, पर उन किसानों को यह नहीं पता था कि इसमें एक खास बीमारी का मुकाबला करने के गुण हैं। यह उपलब्धि पूरी तरह अनुसंधानकर्ताओं की ही थी। वे तो उसे एक उपयोग किस्म के बजाय खर-पतवार मानते थे। लेकिन, बाद में यह भी पता चला कि माली का एक भूमिहीन समुदाय इस जंगली किस्म पर निर्भर था और उसे उसकी इन खूबियों की जानकारी भी थी। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि पारंपरिक ज्ञान के मामले में केवल भूस्वामी किसानों के पास उपलब्ध ज्ञान को ही प्रायर आर्ट नहीं माना जा सकता।

प्रायर आर्ट के बाद दूसरा तरीका है आविष्कार में इस्तेमाल किए गए ज्ञान या जैविक संसाधन के उद्गम के बारे में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष जानकारी देना। अंतर्राष्ट्रीय पेटेंट संधियों में इस तरह का प्रावधान नहीं है, और जेनेटिक इंजीनियरिंग के चलन से पहले इस प्रश्न पर बहस भी नहीं होती थी। पारंपरिक ज्ञान के अधिकार के संदर्भ में इसका बड़ा महत्व है, क्योंकि अगर पेटेंट का आवेदक पहले ही इस बात की जानकारी दे देगा कि उसके ज्ञान और जैविक संसाधनों का उद्गम क्या है, तो पेटेंट दफ्तर आसानी से पता लगा सकेगा कि आविष्कार पहले से मौजूद ज्ञान से कितना लाभान्वित हुआ है। पेटेंट कानूनों में आवेदक के लिए आविष्कार के बारे में सारी जानकारी देने का प्रावधान पहले से ही है, पर ज्ञान के भौगोलिक स्रोत के बारे में जानकारी देने का प्रावधान पूरी तरह से नया होगा। इसके तीन फायदे होंगे : आवेदक प्रायर आर्ट के बारे में पहले से पुष्टि कर लेगा, लाभों में बँटवारे या संयुक्त स्वामित्व का रास्ता खुलेगा और यह भी पुष्टि हो जाएगी कि पूर्वसूचना सहमति की आवश्यकता पूरी हुई है या नहीं। जानकारी देने का यह नियम पेटेंट आवेदक का काम बहुत मुश्किल कर देगा। आवेदक को साबित करना पड़ेगा कि उसने ज्ञान तक पहुँच की जरूरतों को पूरा किया है या नहीं न कि उसके विरोधी को। दूसरे, आवेदक को पारंपरिक ज्ञानधारक से इजाजत लेनी पड़ेगी और उस देश से भी लेनी पड़ेगी जहाँ से उसने आविष्कार में इस्तेमाल किया गया जैविक संसाधन उठाया है।

जानकारी देने के प्रावधान का दो तरह से इस्तेमाल किया जा सकता है। पहला, उसे पेटेंट प्रणाली और विभिन्न देशों के पारंपरिक ज्ञान संबंधी कानूनी ढाँचे के बीच सूत्र के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में जानकारी ने देने का असर पेटेंट के आवेदन या पेटेंट के अधिकार पर नहीं पड़ेगा। दूसरे, इस प्रावधान को पेटेंटपात्रता की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शर्त के रूप में भी देखा जा सकता है। अप्रत्यक्ष शर्त का मतलब यह होता है कि पेटेंट की इजाजत देते समय इस शर्त के पालन की पुष्टि नहीं की जाएगी, पर उसके आधार पर पेटेंट को चुनौती दी जा सकेगी कि उसमें इस प्रावधान का पालन नहीं किया गया है। प्रत्यक्ष शर्त का एक मतलब यह भी हो सकता है कि अगर पूर्वसूचना सहमति का पालन नहीं किया गया है तो जेनेटिक संसाधनों या उससे जुड़े ज्ञान के संदर्भ में पेटेंट की इजाजत देने से इनकार भी किया जा सकता है। इसके आधार पर पेटेंट को खारिज किए बिना दूसरे पक्षों को उसके लाइसेंस का हस्तांतरण भी हो सकता है।

पारंपरिक ज्ञान के नजरिए से इस प्रावधान का लाभ निस्संदेह है, पर ट्रिप्स के तहत इस पर आपत्ति की गई है, क्योंकि अनुच्छेद २७ के तहत पेटेंट के आवेदकों पर लगाई जाने वाली शर्तों की एक निश्चित सूची इस संधि के दस्तावेज में दी गई है। लेकिन, ध्यान देने वाली बात यह है कि ट्रिप्स के अनुच्छेद ६२ के तहत सदस्य देश संधि की सीमाओं के तहत वाजिब प्रक्रियाओं और औपचारिकताओं का प्रावधान कर सकते हैं। वैसे भी प्रायर आर्ट की शर्त पहले से ही मौजूद है। कुछ विकासशील देशों में उद्गम वाले देश के बारे में जानकारी देने का प्रावधान जैवविविधता एक्ट में शामिल कर दिया गया है। कोस्टारिका ने ऐसा ही किया है। वहाँ उद्गम का प्रमाणपत्र दिए बिना बौद्धिक सम्पदा अधिकार नहीं दिए जाते। जहाँ तक अंतर्राष्ट्रीय स्तर का सवाल है, डब्ल्यूआईपीओ में इस पर काफी बहस हो चुकी है, पर कोई ठोस नतीजा अब तक नहीं निकल पाया है।

इसी तरह से संयुक्त स्वामित्व की धारणा पर भी गौर किया जा सकता है। पेटेंट कानून में एक से अधिक लोगों द्वारा आवेदन करने का प्रावधान पहले से ही है। इससे संभावना निकलती है कि पारंपरिक ज्ञान का धारक और आविष्कार करने वाला पेटेंट का संयुक्त धारक भी बन सकता है। पारंपरिक ज्ञान का क्षेत्र इस मामले में अमेरिका से सबक सीख सकता है। संयुक्त अधिकारों के दावा करने वालों के लिए जरूरी है कि उन सभी ने आविष्कार में सहभागिता करते हुए योगदान किया हो। उनका योगदान अलग-अलग किस्म का हो सकता है, और कोई जरूरी नहीं कि आविष्कार पर उन्होंने एक ही समय में काम किया हो।



लेकिन, संयुक्त स्वामित्व की यह धारणा पारंपरिक ज्ञानधारक और जेनेटिक इंजीनियरिंग फर्म के संयुक्त स्वामित्व के विचार से अलग तरह की है। लेकिन, अमेरिकी धारणा के आधारभूत सिद्धांतों का इस्तेमाल जरूर किया जा सकता है। संयुक्त स्वामित्व के लिए जरूरी है कि दोनों पक्ष एक-दूसरे के काम से वाकिफ हों। इसलिए, अगर पूर्वसूचना सहमति की स्थिति है तो इस मामले में पेटेंट के सामान्य नियमों का सदुपयोग किया जा सकता है। इस मामले में पारंपरिक ज्ञानधारक के व्यक्ति होने की सूरत में यह तरीका आसानी से लागू हो सकता है, पर अगर पारंपरिक ज्ञानधारक एक समुदाय है तो पेचीदा स्थिति पैदा हो सकती है। इस पेचीदागी की एक मिसाल हल्दी की उपचार संबंधी खूबियों को पेटेंट कराने के रूप में देखी जा सकती है।

अगर पेटेंट कानून में निहित नवीनता की कसौटी की पुनर्वाख्या कर दी जाए तो पारंपरिक ज्ञान उससे लाभान्वित हो सकता है, क्योंकि इस कसौटी की मौजूदा व्याख्या के कारण सभी तरह का पारंपरिक ज्ञान संरक्षण के दायरे से बाहर चला जाता है। इस प्रकार पेटेंट प्रणाली न केवल पश्चिमी विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए नए आविष्कारों को संरक्षण देती रहेगी, बल्कि आधुनिक विज्ञान से असंबंधित ज्ञान प्रणालियों के भी अनुकूल हो जाएगी। जीवन रूपों को पेटेंट कराने के आग्रह के कारण, जैसा कि हम देख चुके हैं, एक बड़ा परिवर्तन यह हुआ है कि एक तरफ आविष्कार और खोज के बीच का फर्क धुंधला हुआ है, और दूसरी ओर पेटेंटपात्रता के लिए निचले स्तर का नवाचार भी काफी मान लिया गया है। नवाचार के स्तर के लगातार नीचे गिरते स्तर का लाभ उठा कर अब हम पारंपरिक ज्ञान के आधार पर हुए आविष्कारों की नवीनता का पेटेंटपात्रता के लिहाज से नए सिरे से आकलन कर सकते हैं। अगर शुद्धीकृत प्राकृतिक पदार्थों को पेटेंट किया जा सकता है, तो पारंपरिक ज्ञान से संबंधित आविष्कारों को क्यों नहीं।

पेटेंट प्रणाली के तहत लंबे अरसे से ऐसे प्रस्तावों पर विचार हो रहा है जिन्हें अगर मान लिया जाए तो पेटेंटपात्रता के मानकों पर पूरी तरह खरे न उतरने वाले पेटी पेटेंटों की इजाजत भी दी जाने लगेगी। इस प्रावधान से पारंपरिक ज्ञान के लिए संरक्षण की गुंजाइशें खुलती हैं। १८४३ का यूके युटिलिटी डिजाइन एक्ट इस दिशा में पहला कानूनी कदम था। कुल मिला कर पेटी पेटेंटों के पीछे इरादा यह था कि अगर औजारों में या किसी अन्य संबंधित चीज में निचले स्तर का कोई कारगर सुधार किया गया है जो पेटेंट कानून की कसौटियों पर फिट नहीं बैठता, तो उसे भी संरक्षित किया जा सके। जाहिर है कि इसमें फॉर्म और डिजाइन पर जोर था न कि उसके आधारभूत विचार या प्रक्रिया पर, ताकि उपकरणों की तकनीकी दक्षता बढ़ सके। पिछली दो सदियों में पेटी पेटेंटों की आलोचना भी हुई है। कहा गया है कि छोटे और मँझोले उद्योगों को इसकी वजह से लागत घटाने का फायदा नहीं पहुँचा है। लेकिन, बीच-बीच में पेटेंट प्रणाली से जुड़ी हुई लेकिन अलग तरह की पेटेंट प्रणालियों की चर्चा भी होती रही है। पारंपरिक ज्ञान के संदर्भ में इसका फायदा यह हो सकता है कि स्थानीय स्तर पर विकसित की गई वनस्पति की किस्म को भी संरक्षण के योग्य माना जा सकता है। किसान उस किस्म के आधार पर किए जाने वाले आविष्कारों पर दावा कर सकते हैं। जहाँ पूरा पेटेंट संरक्षण संभव नहीं हो, वहाँ सरकार कॉपीराइट दे कर सीमित स्तर का संरक्षण संभव बना सकती है। पेटी पेटेंटों के आधारभूत सिद्धांतों और व्यवहार का इस्तेमाल करके नवीनता की कसौटियाँ दोबारा निर्धारित की जा सकती हैं, छोटे उद्यमों के लिहाज से कम लागत वाले बौद्धिक सम्पदा अधिकार कल्पित किए जा सकते हैं और न्यूनतम जॉच-पड़ताल के बाद पेटेंट दिया जा सकता है। वैसे, पेटी पेटेंटों की भी ठीक वही आलोचना की जाती है जो जीवन रूपों के पेटेंटों की होती रही है कि उनके कारण वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय विकास को प्रोत्साहन मिलने के बजाय धक्का लगा है, क्योंकि उनकी वजह से पेटेंटपात्रता का स्तर गिर गया है।

भारत को श्रेय जाता है कि उसने पारंपरिक ज्ञान के आधार पर किए जाने वाले आविष्कारों को संरक्षित करने का व्यावहारिक और संस्थागत प्रयास किया है। १९९० में एक हनी बी नेटवर्क स्थापित किया गया ताकि पारंपरिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण इस प्रकार किया जा सके कि स्थानीय स्तर पर आविष्कार प्रोत्साहित हो सकें। इसी के आधार पर सोसाइटी फॉर रिसर्च एंड इनीशिएटिव फॉर सस्टेनेबिल टेक्नोलॉजी एंड इंस्टीट्यूट्स (एसआरएसटीआई) बनाया गया। २००० में विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा नेशनल इन्वेंशन फाउंडेशन (एनआईएफ) स्थापित किया गया ताकि अनौपचारिक क्षेत्र में आविष्कारों को प्रोत्साहित किया जा सके। इन दोनों संस्थाओं द्वारा की गई खोजबीन से पारंपरिक ज्ञान और अनौपचारिक आविष्कारों के हजारों उदाहरण सामने आए। इसके अलावा, इन संस्थाओं ने अनौपचारिक आविष्कारों को सर्वोच्च स्तर पर ले जाने के लिए पश्चिमी विज्ञान और तकनीक का इस्तेमाल करने को भी प्रोत्साहित किया। आविष्कारों को आत्मनिर्भर गतिविधियों से जोड़ने के लिए १९९७ में ग्रासरूट्स इन्वेंशन ऑगमेंटेशन नेटवर्क (जीआईएएन) स्थापित किया गया ताकि आविष्कारों, निवेश और उद्यम के बीच सूत्र स्थापित हो सके।

इन संस्थाओं की यह भी कोशिश है कि अनौपचारिक आविष्कारक पेटेंट प्रणाली का भी इस्तेमाल कर सकें। ये संस्थाएँ अनौपचारिक आविष्कारकों को पेटेंट का आवेदन करने के लिए मदद भी देती हैं। प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए आविष्कारों और उद्यमियों के बीच लाइसेंसिंग करार करने में भी इनकी सहायता होती है। अगस्त, २००३ तक एनआईएफ गतिविधियों के परिणामस्वरूप भारत और विदेश में ४६ पेटेंट आवेदन दाखिल किए जा चुके थे। दो अर्जियाँ ट्रेडमार्क और एक डिजाइन के लिए भी थी। इनमें से कई आवेदन ऐसे आविष्कारों के लिए थे जो पारंपरिक ज्ञान के दायरे में आते हैं।

यूपीओवी कन्वेंशन के तहत आने वाले प्लांट ब्रीडरों के अधिकार पारंपरिक ज्ञान पर लागू नहीं होते। इसकी एक वजह तो यह है कि पारंपरिक ज्ञानधारकों द्वारा विकसित वनस्पति की किस्में उस तरह से समरूप नहीं होतीं जिस तरह यूपीओवी कन्वेंशन माँग करता है। समरूपता की इस शर्त में तब्दीली की जरूरत है, क्योंकि यह समरूप किस्मों और मोनोक्लर को बढ़ावा देती है जो कृषि-जैवविविधता के संरक्षण के वर्तनाम आग्रह के खिलाफ जाती है। इसी तरह पेटेंट प्रणाली में जिस तरह की तब्दीलियों का सुझाव दिया गया है, उन पर प्लांट ब्रीडर अधिकारों के संदर्भ में भी विचार किया जा सकता है। उद्गम के बारे में जानकारी देना जरूरी बनाने वाले प्रावधान से यूपीओवी के तहत पारंपरिक किसान के अधिकारों की स्थिति बहुत सुदृढ़ हो जाएगी। कुछ देशों ने अपने कानून का आधार यूपीओवी कन्वेंशन को बनाया है, और साथ में पूर्वसूचना सहमति की आवश्यकता भी शामिल की है। प्लांट वेराइटी एक्ट व्यावसायिक ब्रीडरों पर यह साबित करने की जिम्मेदारी डालता है कि उन्होंने शोध में इस्तेमाल की गई जेनेटिक सामग्री कानूनी तौर-तरीकों से हासिल की है। इसी तरह जैवसुरक्षा की शर्त पूरी होने पर ही प्लांट ब्रीडर अधिकार देने का प्रावधान भी किया जा सकता है। इससे भी यूपीओवी के तहत किसानों की स्थिति मजबूत होगी।

इस सिलसिले में भौगोलिक सूचकों की धारणा भी दिलचस्प है। किसी नाम, प्रतीक, मुहावरे, एम्बलम या कहावत के जरिए किसी उत्पाद का भौगोलिक उद्गम बताया जाता है, जिससे उस उत्पाद को एक खास तरह की साख का फायदा होता है। बासमती चावल को इसकी मिसाल के रूप में लिया जा सकता है। इसका मतलब यह भी होता है कि संरक्षित उत्पाद को उसी इलाके में बनाया या उगाया गया हो, यानी उस इलाके से बाहर उस पर लाइसेंस नहीं दिया जा सकता। इस तरह भौगोलिक सूचक स्वयं में संरक्षण योग्य हो जाता है। इसके दुरुपयोग को कानून प्रतिबंधित किया जा सकता है। ट्रिप्स समझौता पेटेंटधारकों को यह सुविधा देता है। संधि का अनुच्छेद २३ शराब और वाइन वगैरह के मामले में और भी कड़ा संरक्षण मुहैया कराता है। आजकल डब्ल्यूटीओ के सदस्य देश ट्रिप्स कौंसिल में इन उत्पादों के लिए अधिसूचना और पंजीकरण की बहुपक्षीय प्रणाली के लिए वार्ता कर रहे हैं। भारत ने जैव-चोरी के मुकाबले अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए १९९९ में जियोग्राफीकल इंडीकेशन ऑव गुड्स (रजिस्ट्रेशन एंड प्रोटेक्शन) एक्ट पास कर रखा है।

भौगोलिक सूचक को पेटेंट या कॉपीराइट के मुकाबले एक कमतर बौद्धिक सम्पदा अधिकार समझा जाता है, क्योंकि उनसे परंपराआधारित व्यावसायिक उत्पाद को फायदा पहुंचता है और उनमें आविष्कारों को हतोत्साहित करने की प्रवृत्ति मानी जाती है। फिर भी पिछले कुछ सालों में भौगोलिक सूचक प्रणाली में लोगों की दिलचस्पी बढ़ी है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में हुई बढ़ोतरी के कारण भी देशों को लगने लगा है कि उन्हें अपने भौगोलिक सूचकों की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि इससे उनके माल की साख विशेष रूप से सुरक्षित रह सकती है। लेकिन, कुछ देशों को इन सूचकों पर सख्ती से अमल की सूरत में बाजार का नुकसान भी हो सकता है।

व्यवहार में प्लांट जेनेटिक संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान से बने उत्पादों के मामले में भौगोलिक सूचक संबंधी संरक्षण अहमियत प्राप्त कर लेते हैं। इससे उत्पाद की क्वालिटी, प्रतिष्ठा और ऐसी अन्य खूबियों का पता चलता है जिनका सीधा संबंध उसके भौगोलिक उद्गम से होता है। इस विधि से उत्पाद का अनुठापन, उसके उद्गम का अनुठापन और उस क्षेत्र के पारंपरिक ज्ञान को संरक्षण मिलता है। पारंपरिक ज्ञान के लिहाज से भौगोलिक सूचक अधिकारों की खास बात यह भी होती है कि वे सामूहिक दायरे के अधिकार होते हैं। इनके इस्तेमाल से एक भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले अनगिनत लोगों को बाहरवालों के मुकाबले संरक्षण मिल सकता है। इसके अलावा भौगोलिक सूचक अधिकार किसी उत्पाद को संरक्षित करने के लिए नवीनता की कसौटी पर खरा उतरने की माँग भी नहीं करते। वे उत्पादन की केवल एक ही विधि को संरक्षित न करके तरह-तरह की उत्पादन विधियों को इजाजत देते हैं। अर्थात्, ये अधिकार पारंपरिक ज्ञान की इस प्रकृति अनुकूल हैं जिसके मुताबिक यह ज्ञान लगातार विकासमान रहता है। भौगोलिक सूचक अधिकार इजारेदारी के भी खिलाफ हैं, और इनकी मान्यता के बावजूद ज्ञान सार्वजनिक दायरे में ही रहता है। इस अधिकार का भौगोलिक दायरे से बाहर स्थानांतरण भी नहीं किया जा सकता। इसमें दावों के परस्परव्यापी होने की समस्या भी आ सकती है, जिसे क्रियाविधि संबंधी नियमों के जरिए हल किया जा सकता है। मसलन, अगर बासमती चावल भारत और पाकिस्तान दोनों में पैदा होता है तो दोनों इलाकों को भौगोलिक सूचक संरक्षण मिल सकता है। भौगोलिक सूचक संरक्षण पारंपरिक अधिकारों के लिए इसलिए भी उपयोगी है कि वह न केवल मौजूदा भौगोलिक क्षेत्र के लिए होता है, बल्कि भविष्य के संभावित क्षेत्र के लिए भी हो सकता है।

भौगोलिक सूचक संरक्षण की कुछ समस्याएँ भी हैं। जैसे, अंततः वह एक सूचक ही है और उसे ज्ञान का संरक्षण नहीं माना जा सकता। दूसरे, जैसे ही उत्पाद जेनरिक माना जाता है, वैसे ही इस तरह के संरक्षण की उपयोगिता समाप्त हो जाती है। अगर बासमती चावल जेनरिक मान लिया जाए तो भारत और पाकिस्तान के उसके उत्पादकों को मिलने वाले फायदे का कोई मतलब नहीं रह जाएगा। फिर, बाहर की शक्तियाँ भी उसी भौगोलिक दायरे में कंपनियाँ खरीद सकती हैं।

भौगोलिक सूचक संरक्षण और सम्पदा अधिकारों के अन्य रूपों के बीच एक सूत्र भी है। प्लांट वेराइटी एक्ट के मुताबिक अगर वनस्पति की कोई किस्म किसी भौगोलिक नाम से पूरी या आंशिक रूप से जुड़ी हुई है तो संरक्षण की अन्य शर्तें पूरी करने के बावजूद उसे रजिस्टर्ड नहीं किया जाएगा। भौगोलिक सूचक संरक्षण का ताल्लुक ट्रेडमार्क से भी है। ट्रेडमार्क किसी खास उत्पाद या सेवा का ही होता है। वह वर्णन पर आधारित नहीं हो सकता, जबकि भौगोलिक सूचक संरक्षण सामान्यतः वर्णन आधारित ही होता है। अगर भौगोलिक सूचक ट्रेडमार्क की तरह पंजीकृत कर लिया गया है तो वह भौगोलिक क्षेत्र के लिए संरक्षण मुहैया कराने की भूमिका निभा सकता है। ट्रेडमार्क और भौगोलिक सूचक संरक्षण के बीच परस्परव्यापिता से पैदा होने वाली समस्याओं से निबटने के लिए ट्रिप्स में नियम यह है कि अगर किसी उत्पाद का उद्गम उल्लिखित भौगोलिक क्षेत्र में नहीं है और उससे जनता भ्रमित हो सकती है, तो उसका ट्रेडमार्क रजिस्टर्ड नहीं किया जाएगा। कहना न होगा कि ट्रेडमार्क किसी खास उत्पाद के लिए पारंपरिक ज्ञान के संदर्भ में संरक्षण प्रदान कर सकता है, पर कुल मिला कर भौगोलिक सूचक संरक्षण पारंपरिक ज्ञान के स्वभाव के अधिक अनुकूल बैठता है।

## ब. पारंपरिक ज्ञान के लिए सुइ जेनरिस संरक्षण की गुंजाइशें

जैसा कि हम जानते हैं कि पारंपरिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण के कई तरह के प्रयास किए गए हैं ताकि इस ज्ञान को अवैध विनियोग से बचाया जा सके। इसके तहत पंचायत स्तर पर जैवविविधता रजिस्टर बनाए गए हैं और राष्ट्रीय स्तर पर केंद्र के तहत कम्प्यूटरीकृत दस्तावेजीकरण भी किया गया है। अब डब्ल्यूपीओ भी सारी दुनिया में पारंपरिक ज्ञान से संबंधित इन प्रयासों को प्रोत्साहित कर रहा है।

पारंपरिक ज्ञान के रजिस्ट्रों में लिखित रूप से या राष्ट्रीय/अंतर्राष्ट्रीय भाषा में दस्तावेजीकरण से पहला फायदा तो यह होता है कि सम्पदा अधिकारों के जरिए उस ज्ञान के विनियोग पर कुछ रोक लग जाती है। सार्वजनिक दायरे में जो ज्ञान नहीं है, वह भी रिकॉर्ड पर आ जाता है। जरूरी नहीं कि ये रजिस्टर सभी लोगों को उपलब्ध कराए जाएँ, पर उनके जरिए सबूत मिलता है कि अमुक ज्ञान पहले से मौजूद है। इनके आधार पर ज्ञान में साझेदारी के उसूल के तहत पड़ोसी समुदायों में या सारे देश भर में उस ज्ञान को प्रोत्साहित किया जा सकता है। साथ ही, लाभों के बँटवारे के ही नहीं, बल्कि जहाँ कानून इजाजत दे वहाँ स्वामित्व के दावे तक किए जा सकते हैं। पेटेंटों की जाँच करने वालों के लिए भी ये रजिस्टर उपयोगी होते हैं। शोधकर्ताओं, प्राइवेट कंपनियों और व्यावसायिक अनुसंधानकर्ताओं के लिए भी ये रजिस्टर उपयोगी हो सकते हैं, बशर्ते वे ज्ञान तक पहुँच के पारदर्शी तौर-तरीके अपनाएँ और कोई विवाद न पैदा हो।

पारंपरिक ज्ञान दर्ज करने वाले रजिस्ट्रों का एक पहलू यह भी है कि वे न केवल ज्ञान के मौजूदा रूपों पर पेटेंट अधिकारों के दावेदारियों को रोक देते हैं, वरन् पारंपरिक ज्ञानधारकों को भी भविष्य में उस ज्ञान के आधार पर किसी नवीनता का दावा नहीं करने देते। इस प्रकार ज्ञानधारक रजिस्टर में दर्ज ज्ञान पर कोई सकारात्मक नियंत्रण करने से वंचित हो जाते हैं। अगर प्लांट वेराइटी एक्ट में उल्लिखित एक्सटेंट वेराइटीज के संरक्षण का प्रावधान लागू कर दिया जाए, तो शायद इस समस्या का कुछ-कुछ समाधान हो सकता है। उस सूरत में एक्टेंट किस्मों के तर्ज पर एक्सटेंट पारंपरिक ज्ञान भी मानना पड़ेगा। दूसरे, इस रजिस्टर को पहुँच संबंधी प्रावधानों से अलग नहीं माना जा सकता। इसके साथ पूर्वसूचना सहमति का पहलू भी जोड़ना जरूरी है। तीसरे, यह भी साफ होता जा रहा है कि पारंपरिक ज्ञान के सभी रूपों के लिए रजिस्ट्रों की उपयोगिता नहीं है। मसलन, आयुर्वेद जैसे पारंपरिक उपचार प्रणाली के लिए रजिस्टर काफी उपयोगी हो सकते हैं। इसके उलट अगर कोई व्यक्ति या समुदाय अपना ज्ञान जाहिर न करना चाहे, तो ये रजिस्टर एक समस्या बन सकते हैं। चौथे, रजिस्टर किसने बनाया, और कौन रख रहा है, इस पर भी काफी-कुछ निर्भर करता है। पंचायत स्तर पर रखा गया रजिस्टर पारंपरिक ज्ञानधारकों के लिए रजिस्टर के प्रबंधन का ज्यादा मौका देता है। इसी तरह राष्ट्रीय स्तर पर रखा गया रजिस्टर पारंपरिक ज्ञानधारकों से काफी दूर रहता है। उसका रख-रखाव करने वालों की प्राथमिकता और सरोकार उनसे काफी अलग हो सकते हैं।

पारंपरिक ज्ञान के रजिस्ट्रों को बनाने और इस्तेमाल करने के तौर-तरीकों के बारे में तीन निम्नलिखित उदाहरणों पर गौर किया जा सकता है :

केरल के कन्नूर जिले के पुडुवम गाँव में पंचायत देश की अन्य पंचायतों की ही तरह अपने इलाके के जैविक संसाधनों का रिकॉर्ड रजिस्टर में दर्ज करती है। लेकिन, इसकी खास बात यह है कि इसका मकसद पीपुल्स बायोडायवर्सिटी डिक्लरेशन से परिभाषित होता है। इसके अनुसार पंचायत इलाके के लोग किसी भी कीमत पर किसी भी तरह के जीवन रूप पर किसी इजारेदारी अधिकार को मान्यता देने के लिए तैयार नहीं हैं। यह रजिस्टर तय करता है कि इलाके से संग्रह किए गए संसाधनों पर प्रयोग की क्या शर्तें होंगी। यह रजिस्टर जैविक संसाधनों पर स्थानीय लोगों की दावेदारी पुष्ट करता है, और इसे गोपनीय रखा जाता है। यह अन्य रजिस्ट्रों की तरह स्थानीय संसाधनों और ज्ञान के व्यावसायिक विनियोग के लिए खुला नहीं है। केवल अपवादस्वरूप ही इसकी जानकारी में बाहरी लोगों को साझेदारी करने दी जाती है।

दूसरे किस्म के रजिस्ट्रों का उदाहरण वह है जो बंगलूर के सेंटर फार इकॉलॉजिकल साइंसेज ने प्रोत्साहित व विकसित किया है। इसका आधार जैवविविधता एक्ट है। इनका रख-रखाव जैवविविधता प्रबंधन कर्मियों द्वारा किया जाना है। ये कर्मियाँ पंचायतों और नगरपालिकाओं की सीमाओं में स्थानीय लोगों के साथ नियमित सलाह-मश्वरे के साथ करेंगी।

तीसरा उदाहरण ट्रेडीशनल नालेज डिजिटल लाइब्रेरी (टीकेडीएल) का है। इसका मुख्य मकसद पेटेंट दफ्तरों को सूचना मुहैया कराना है। टीकेडीएल पारंपरिक ज्ञान को ट्रेडीशनल नालेज रिसोर्स क्लासिफिकेशन के आधार पर श्रेणीबद्ध करती है। इस समय यह आयुर्वेद संबंधी ज्ञान को डिजिटलाइज्ड करने में भी लगी हुई है। इस पर कई तरह के सवाल उठ रहे हैं। पहला तो यह है कि मूल ग्रंथों में यह ज्ञान जिस तरह दर्ज है, उसमें और इंटरनेट पर उपलब्ध कराए गए ज्ञान में गुणात्मक अंतर है। सरकार इस लाइब्रेरी के जरिए दुनिया भर के पेटेंट दफ्तरों को जानकारी न देने वाले करार के तहत यह ज्ञान मुहैया कराने का फैसला कर चुकी है। इसका मतलब यह हुआ कि फिलहाल इस लाइब्रेरी का इस्तेमाल नकारात्मक संरक्षण के लिए हो रहा है। इसके संरक्षण के लिए कॉपीराइट कानून के इस्तेमाल के संकेत भी हैं। बहरहाल, समस्या उस समय और जटिल हो जाएगी जब इस टीकेडीएल को जैवविविधता संबंधी पारंपरिक ज्ञान के लिए भी इस्तेमाल किया जाएगा।

ये तीनों उदाहरण बताते हैं कि पारंपरिक ज्ञान के रजिस्टर मुख्यतः नकारात्मक रणनीति के ही वाहक हो सकते हैं। उनके जरिए पारंपरिक ज्ञानधारकों को संरक्षण नहीं मिल सकता। रजिस्टर नकारात्मक के साथ-साथ सकारात्मक संरक्षण के वाहक तभी हो सकते हैं अगर उन्हें गोपनीय रखा जाए जैसा कि केरल के उदाहरण से स्पष्ट है और उन्हें पारंपरिक ज्ञानधारकों के दावों के आधार की तरह इस्तेमाल किया जाए।

ऊपर किए गए विश्लेषण से जाहिर है कि मौजूदा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का विकास कुछ इस तरह से हुआ है कि पारंपरिक ज्ञान को संरक्षण देने के मामले में उन्हें केवल एक सीमा तक ही अनुकूल बनाया जा सकता है। एसआरआईएसटीआई और एनआईएफ के प्रयास प्रशंसनीय हैं, पर उनका विस्तार पारंपरिक ज्ञान के सभी क्षेत्रों तक करना मुश्किल है। भौगोलिक सूचक संरक्षण एक उपयोगी तरीका है, पर कई परिस्थितियों में वे भी पारंपरिक ज्ञान को संरक्षण देने में नाकाम रहते हैं। यह परिस्थिति विवश करती है कि इस तरह के संरक्षण के बारे में सोचते हुए मौजूदा सम्पदा अधिकारों के प्रतिमान के परे जाया जाए, और इस मकसद से संरक्षण के विस्तृत ढाँचा कल्पित करने की कोशिशों की जाएँ। इसके लिए जरूरी होगा कि पारंपरिक ज्ञान संरक्षण को व्यावसायिकता की सीमा में न बाँधा जाए। व्यावसायिकता का प्रश्न सम्पदा अधिकारों के मौजूदा ढाँचे और पारंपरिक ज्ञान संरक्षण की आवश्यकताओं के बीच तनाव का मुख्य स्रोत है। इस लिहाज से सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली एक रास्ता दिखाती है।

इस प्रणाली पर हुई ज्यादातर बहसों पारंपरिक ज्ञान के व्यावसायिक इस्तेमाल के इर्द-गिर्द ही रही हैं। इनका दायरा प्रतिरक्षात्मक या नकारात्मक संरक्षण से लेकर एक सम्पूर्ण सम्पदा अधिकार प्रणाली कल्पित करने तक फैला हुआ है। प्रतिरक्षात्मक उपायों के बारे में हम पिछले अध्यायों में चर्चा कर चुके हैं। कुछ और भी विकल्प हो सकते हैं जिनके लिए ट्रिप्स समझौते द्वारा आरोपित न्यूनतम मानकों के परे जाना होगा, लेकिन ये उपाय समझौते के अनुच्छेद सात और आठ के मुताबिक वाजिब भी माने जा सकते हैं। दक्षिण अफ्रीका ने औषधियों के मामले में इस तरह के उपाय अपनाए हैं। सुइ जेनरिस प्रणाली के तहत पारंपरिक ज्ञान संरक्षित करने का उपाय भी एक ऐसा ही उपाय है। विकासशील देश इन उपायों का फायदा इस आधार पर उठा सकते हैं कि पारंपरिक ज्ञान को ट्रिप्स के दायरे से बाहर माना जाता है और विभिन्न देश इन नए आयामों के बारे में कानून बनाने के लिए स्वतंत्र हैं। दूसरे, पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण जैवविविधता कन्वेंशन और मानवाधिकार संधियों के तहत स्वीकार की गई वचनबद्धताओं को पूरा करने में भी योगदान करता है। इसका एक मतलब यह भी है कि परिप्रेक्ष्य में पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण करना विकासशील देशों की एक जिम्मेदारी भी बनती है।

पारंपरिक ज्ञान के लिए सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को पर्यावरण, कृषि और टिकाऊ विकास के सरोकारों के साथ जोड़ने की भूमिका अदा कर सकती है। यह प्रणाली पारंपरिक ज्ञान से जुड़े स्वामित्व के सभी तरह के प्रश्नों को हल कर सकती है जिनमें मौजूदा ज्ञान, आविष्कार और जैवसंसाधन वगैरह सभी के स्वामित्व का सवाल शामिल है। सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली को सातवें अध्याय में वर्णित किसानों के लिए सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली के आधार पर भी आवश्यक परिवर्तनों के बाद कल्पित किया जा सकता है। वास्तव में

सुइ जेनरिस कृषक अधिकार उस पारंपरिक ज्ञान के धारकों के अधिकार ही हैं जो खेती में काम आने वाली वनस्पतियों से जुड़ा हुआ है। जिन देशों ने अलग से किसानों के लिए सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली अंगीकार नहीं की है, वे किसानों के लिए और साथ में पारंपरिक ज्ञान के लिए एक ही सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली अंगीकार कर सकते हैं। ऐसा करने से वे प्लांट वेराइटी एक्ट और जैवविविधता एक्ट के बीच परस्परव्यापिता की समस्याओं से बच जाएंगे।

भारत में इस संबंध में दो निजी प्रस्तावों पर विचार चल रहा है। पहला है २००० का ट्रेडीशनल नॉलेज (प्रिजर्वेशन एंड प्रोटेक्शन) बिल। इसका मकसद पारंपरिक ज्ञान को अनधिकृत विनियोग से बचाना और उसके सामूहिक प्रबंधन का रास्ता साफ करना है। प्रतिरक्षात्मक उपायों के बारे में हम ऊपर पर्याप्त चर्चा कर चुके हैं। सामूहिक प्रबंधन एक नई पेशकश है जिसका मकसद है एक बहुस्तरीय प्रबंधन प्रणाली बनाना ताकि पारंपरिक ज्ञान पर स्थानीय लोगों का नियंत्रण बना रहे। बिल का जोर सामूहिक ज्ञान पर ज्यादा है, न कि पारंपरिक ज्ञान के आधार पर होने वाले आविष्कारों पर। यह पंचायत, जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान के प्रबंधन के लिए ट्रस्ट बनाने की वकालत करता है। इसके पीछे मान्यता यही है कि पारंपरिक ज्ञान हमेशा किसी एक समुदाय या पंचायत के स्तर पर ही नहीं होता। हल्दी पेटेंट के मामले से साफ हो गया है कि पारंपरिक ज्ञान की अवस्थिति के स्तर एक से अधिक भी हो सकते हैं। इसमें ट्रस्ट ज्ञानधारकों के प्रतिनिधि के तौर पर कल्पित किए गए हैं, और वे किसी विशेष ज्ञान-संरचना पर निजी दावेदारी में दिलचस्पी नहीं दिखाएंगे। उनके लिए पारंपरिक ज्ञान वही है जो कम से कम सामुदायिक स्तर पर धारण किया जा रहा हो, और जिसका प्रबंधन समुदाय के प्रतिनिधि के तौर पर ट्रस्ट द्वारा किया जा सके। यह बिल पूर्वसूचना सहमति के आधार पर पारंपरिक ज्ञान का व्यावसायिक इस्तेमाल करने वालों को स्थानीय नियंत्रण पर प्राथमिकता देता है। अगर ऐसे व्यक्ति को ट्रस्ट पूर्वसूचना सहमति नहीं देता तो वह राज्य और केंद्र द्वारा इस मकसद के लिए बनाए गए बोर्डों के सामने आवेदन कर सकता है।

दूसरा प्रस्ताव २००३ के बायलाजीकल रिसोर्सिज एंड ट्रेडीशनल नॉलेज (प्रोटेक्शन एंड रेगुलेशन) बिल के रूप में है। इसका मकसद जैवविविधता एक्ट की जगह लेना और प्लांट वेराइटी एक्ट में संशोधन करना है। इसके पारित होने से होगा यह है कि जैवविविधता, वनस्पति की किस्मों और पारंपरिक ज्ञान से संबंधित कानूनी ढाँचों का एकीकरण होने की संभावनाएँ खुल जाएँगी। इस बिल की खास बात यह होगी कि यह जैविक संसाधनों पर राष्ट्र को संप्रभु अधिकार देगा ताकि अन्य देशों के किसी भी प्रयास का मुकाबला किया जा सके, और साथ में यह जैविक संसाधन या पारंपरिक ज्ञान के धारकों को उस पर अविच्छिन्न स्वामित्व से भी सम्पन्न भी कर देगा। इसके मुताबिक समुदाय अपने ज्ञान का व्यवसायीकरण भी कर सकेगा, उसके सदस्य उसका आर्थिक लाभ उठा सकेंगे और वह दूसरों को अपनी शर्तों पर ही उस ज्ञान का इस्तेमाल करने की इजाजत देगा। जहाँ तक पहुँच का सवाल है, यह बिल राष्ट्रीय एथारिटी को शोध और व्यावसायिक इस्तेमाल की इजाजत देने का अधिकार देता है। लेकिन, समुदाय आधारित पारंपरिक ज्ञान के संदर्भ में एथारिटी आवेदक को केवल समुदाय के सामने अर्जी लगाने और उसी से बातचीत करने की अनुमति भर देगी।

## स. व्यापक परिप्रेक्ष्य में पारंपरिक ज्ञान संरक्षण

सामाजिक-आर्थिक नजरिए से सभी स्तरों पर संसाधनों और ज्ञान की मुक्त उपलब्धि गरीब देशों के लिए सबसे ज्यादा लाभकारी हो सकती है। इंटरनेशनल अंडरटेकिंग में इसी तरह की व्यवस्था की गई है, हालाँकि इससे नए आविष्कारों के लिए प्रोत्साहन कुछ कम हो जाता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह विकल्प इच्छुक देशों के लिए व्यावहारिक नहीं रह गया है। इस समय हालत यह है कि अगर किसी देश को सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली की मदद से पारंपरिक ज्ञान पर नियंत्रण और इस्तेमाल का अधिकार नहीं है, तो वह घाटे में माना जाएगा। सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के क्षेत्र में मौजूदा असंतुलन को दुरुस्त करती है जिसके तहत अधिकतर ज्ञान का व्यवसायीकरण हो गया है और पारंपरिक ज्ञान को संरक्षण के दायरे से बाहर छोड़ दिया गया है। सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली जिस तरह का संरक्षण देती है, वह केवल व्यवसायिक मकसदों के लिए ही नहीं है, बल्कि उसके पीछे सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कारण भी हो सकते हैं। इस लिहाज से सुइ जेनरिस संरक्षण प्रणाली पारंपरिक ज्ञान संरक्षण को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखती है। पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण, रख-रखाव, सुरक्षा और विकास भी इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य का अंग है। किसानों द्वारा कृषि जैव-विविधता में बढ़ोतरी पारंपरिक ज्ञान पर ही निर्भर है। इससे स्पष्ट है कि पारंपरिक बौद्धिक सम्पदा के संरक्षण और पर्यावरण और कृषि की संरक्षा के बीच सीधा रिश्ता होता है।

## पर्यावरण और मानवाधिकार

### ११ जैव सुरक्षा और जवाबदेही

ट्रिप्स समझौता मानता है कि पर्यावरण को क्षति होने का अंदेशा पेटेंटपात्रता को प्रतिबंधित करने की परिस्थितियाँ पैदा करता है। बौद्धिक सम्पदा अधिकार जेनेटिक इंजीनियरिंग को प्रोत्साहित करते हैं, और जैव सुरक्षा पर्यावरण कानून का ऐसा पहलू है जिसके आधार पर ध्यान रखा जाता है कि जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म आबो-हवा को नुकसान न पहुँचाएँ। पेटेंट किए हुए जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म इस्तेमाल करने के लिए जरूरी है कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जैव सुरक्षा के मानकों का पालन किया जाए। इस अध्याय में इसी से संबंधित कानूनी पहलुओं पर विचार किया गया है।

### अ. जैव प्रौद्योगिकी और जैव सुरक्षा

कार्टाजेना प्रोटोकॉल ऑन बायोसेफ्टी टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय कानूनी प्रावधान है जो जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म के पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव से संबंधित है। इस प्रोटोकॉल की खास बात यह है कि यह पूर्वसावधानी के सिद्धांत पर

आधारित है जिसका रियो उद्घोषणा में जिक्र किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार पर्यावरण को होने वाली क्षति के अंदेश को वैज्ञानिक रूप से सिद्ध न हो सकने की सूरत में भी उस क्षय को रोकने की पूर्वसावधानी बरती जानी चाहिए। यह प्रोटोकॉल एक ऐसी पर्यावरण संबंधी संधि है जो जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म के आबो-हवा पर संभावित प्रभाव की समस्या से उपजी है। साथ ही यह ट्रीटी एक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते की भूमिका भी निभाती है, क्योंकि इसके जरिए जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म का व्यापार भी विनियमित होता है। इसके जरिए ऐसे उत्पादों के आयात पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है जिनसे पर्यावरण पर हानिकारक असर पड़ने का अंदेशा हो।

प्रोटोकॉल की कुछ सीमाएँ भी हैं। इसके दायरे में केवल पर्यावरण के लिए नुकसानदेह हो सकने वाले जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म ही आते हैं। यह मनुष्यों के लिए प्रयोग की जाने वाली औषधियों पर लागू नहीं होता। जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म जब पहली बार सीमाओं के आर-पार जाते हैं, तभी यह प्रोटोकॉल उन पर लागू होता है, और अगर वे पहले से ही सीमा पार करने की प्रक्रिया में हैं तो यह प्रोटोकॉल उन्हें प्रभावित नहीं करता। अगर उन ऑर्गनिज्म का इस्तेमाल आहार या प्रसंस्करण के लिए होना है, तो भी वे इस प्रोटोकॉल के दायरे में नहीं आते।

अगर किसी जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म का आयात करने वाला देश प्रोटोकॉल द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार जोखिम का आकलन करके समझता है कि उसकी सीमा में आ कर यह उत्पाद पर्यावरण के लिए खतरा पैदा कर सकता है तो उस ऑर्गनिज्म का सीमा में प्रवेश रोका जा सकता है। इस प्रक्रिया को एडवांस्ड इनफॉर्मड एग्रीमेंट का नाम दिया गया है। जाहिर है कि यह एग्रीमेंट केवल उन्हीं उत्पादों पर लागू होता है जो प्रोटोकॉल के दायरे में आते हैं। इस प्रकार व्यावहारिक रूप से यह केवल बीजों और माइक्रो-ऑर्गनिज्म पर ही कार्यान्वित किया जा सकता है जो दरअसल जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म के समस्त व्यापार का एक छोटा हिस्सा ही हैं।

निर्यातक देश पहले आयातक देश को सूचित करता है कि पर्यावरण में शामिल करने के मकसद से जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म का पहला सीमापार गमन शुरू होने वाला है। आयातक देश इस अधिसूचना की पावती स्वीकार करता है और देखता है कि गमन की प्रक्रिया प्रोटोकॉल के मुताबिक उसके अपने कानून के अनुसार है या नहीं। अगर वह पावती नहीं देता तो इसका मतलब यह नहीं माना जाएगा कि उसने आयात की इजाजत दे दी है। इजाजत का फैसला तो प्रोटोकॉल के संलग्नक-३ में उल्लिखित वैज्ञानिक विधि से किए गए जोखिम के आकलन के बाद ही किया जा सकता है। आयातक देश को यह फैसला लेने के लिए नौ महीने का समय मिलता है।

इस पूरी प्रक्रिया की खास बात यह है कि अगर आयातक देश नौ महीने में भी फैसला नहीं बता पाता, तो इसका मतलब यह नहीं निकाला जाएगा कि उसने आयात की इजाजत दे दी है। दूसरे, जोखिम का आकलन पूर्णतः वैज्ञानिक तौर-तरीकों से किया जाना लाजमी है। तीसरे, अगर किसी वजह से आकलन के बावजूद आयातक देश किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पाता है तो भी उसे केवल अंदेशों के आधार पर जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म का आगमन रोकने का अधिकार है। अगर जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म आहार या प्रसंस्करण के लिए मँगाया जा रहा है तो वह इस एग्रीमेंट के नहीं बल्कि अनुच्छेद ११ के तहत आएगा जिसके तहत दोनों देश एक-दूसरे को अपने-अपने नियमों की सूचना देंगे और प्रोटोकॉल के समग्र उद्देश्यों का ध्यान रखते हुए कुल मिला कर अपने कानून के मुताबिक फैसला लेंगे। जिन विकासशील देशों में इस तरह के नियम नहीं हैं, वे अनुच्छेद ११(६) के निर्देशों के तहत आयात संबंधी निर्णय ले सकते हैं। यहाँ भी जोखिम का आकलन करना होगा और उसी के मुताबिक आगे की कार्रवाई की जाएगी।

यह प्रोटोकॉल डब्ल्यूटीओ के एग्रीमेंट ऑन सेनेटरी एंड फायटोसेनेटरी मेजर्स के दायरे से परे जाता है, और आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी के पर्यावरणीय और स्वास्थ्य संबंधी प्रभावों के संबंध में पहले बाध्यकारी अंतर्राष्ट्रीय कानून के तौर पर सामने आता है।

## ब. जवाबदेही और जैव सुरक्षा

चूँकि जैव सुरक्षा और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के बीच कोई सीधा संबंध नहीं है, इसलिए यह काम पर्यावरण कानून के जिम्मे आता है। जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म को पर्यावरण में शामिल करने के कारण अगर कोई क्षति होती है तो पेटेंट कानून में उसकी जवाबदेही और भरपाई की कोई व्यवस्था नहीं है। इसके उलट अगर कोई किसान बिना खरीदे हुए किसी किसी ट्रांसजेनिक बीज को दोबारा बो देता है, तो उसे पेटेंट अधिकारों का अतिक्रमण माना जाता है। यह एक दुहेरा मानक है जो चिंताजनक है।

जवाबदेही का नियम दो तरह से काम करता है। पहला, वह प्रदूषण करने वाले से पर्यावरण की क्षतिपूर्ति के रूप में मुआवजा वसूलता है, और दूसरा, वह मौजूदा पर्यावरण संबंधी नियमों के पालन के लिए प्रोत्साहित करता है। पर्यावरण की क्षतिपूर्ति में क्षतिग्रस्त पर्यावरण की दोबारा स्थापना की कीमत के साथ-साथ उस क्षति के कारण हुए आमदनी के नुकसान की भरपाई शामिल होती है। समस्या यह है कि पर्यावरण की कुछ क्षति इस प्रकार की होती है जिसका वित्तीय तखमीना नहीं लगाया जा सकता। जैसे, जैवविविधता को हुई क्षति का वित्तीय आकलन करना नामुमकिन है। ऐसे में पर्यावरण की दोबारा स्थापना ही एकमात्र हल हो सकता है। अगर ऐसा होना मुमकिन न हो तो या तो किसी अन्य जगह वैसे ही पर्यावरण की सृष्टि की जा सकती है या फिर पर्यावरण की क्षति करने वाले पर आपराधिक प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। जाहिर है कि ये दोनों तरीके अपवादस्वरूप ही आजमाए जाने योग्य हैं।

जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म के मामले में पर्यावरण क्षति होने पर जवाबदेही का ढाँचा खड़ा करना काफी चुनौतीपूर्ण है। इस तरह के ऑर्गनिज्म के पर्यावरण में शामिल होने से अंदेशा यह रहता है कि जेनेटिक सामग्री अस्थिरता की शिकार हो जाए, जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म में और ज्यादा परिवर्तन हो जाएँ, जोस दूसरे ऑर्गनिज्म में चले जाएँ और ट्रांसजेनिक किस्मों के कारण जंगली प्रजातियाँ लुप्त हो जाएँ। इसके अलावा भविष्य में इस तरह के ऑर्गनिज्म के उपयोग से क्या और नुकसान हो सकता है, इसका अंदाजा पहले से लगाना बहुत मुश्किल है। ब्रिटेन में हुए एक अध्ययन के अनुसार खर-पतवार से क्षतिग्रस्त न होने वाली जेनेटिकली परिवर्तित फसलें वन्य जीवन के लिए नुकसानदेह साबित होती हैं, उनके कारण चिड़ियों के लिए दाना कम हो जाता है, आदि।

जवाबदेही का ढाँचा खड़ा करने के लिए सबसे पहले तो यह जरूरी है कि पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाले की सीधे-सीधे शिनाख्त हो। यह काफी दिक्कततलब होती है, क्योंकि जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म जिस पर्यावरण में शामिल किए जाते हैं उनका प्रसार उससे बाहर दूर तक



होता चला जाता है। चूँकि शिनाख्त नहीं हो सकती, इसलिए किसी से मुआवजा नहीं वसूला जा सकता। ऐसे में बीम वगैरह पर निर्भर होना पड़ता है। इस समस्या का एक हल यह समझा जाता है कि पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म को पहली बार पर्यावरण में शामिल करने वाले को ही सारे नुकसान का जिम्मेदार माना जाए। इससे शिनाख्त की समस्या हल हो सकती है क्योंकि ज्यादातर जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म पेटेंट किए हुए होते हैं। अगर पेटेंटधारकों पर जिम्मेदारी नहीं डाली जाएगी तो किसानों के लिए जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म का इस्तेमाल अनाकर्षक हो जाएगा क्योंकि खतरा यह होगा कि उनके पड़ोसी ही उन पर अपने खेतों को प्रदूषित करने के लिए मुकद्दमा कर देंगे। इसके अलावा भी की समस्याएँ हैं। जैसे, क्षति का कोई एक प्रमुख कारण तय करना। इसके आधार पर किसी एक दायरे में क्षति की एक परिभाषा बन जाने पर उस क्षेत्र में जैवप्रौद्योगिकी उद्योग के विकास पर प्रत्यक्ष असर पड़ सकता है। पर्यावरण के लिहाज से सभी तरह की क्षतियों को इस प्रक्रिया में गिना जाना चाहिए।

जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म को पर्यावरण में शामिल करने से पर्यावरण को हुई क्षति की भरपाई का प्रश्न केवल पर्यावरण प्रदूषण से ही जुड़ा हुआ नहीं है। इसके सामाजिक-आर्थिक प्रभाव भी पड़ते हैं, भले ही ऐसा सभी परिस्थितियों में न होता हो। जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म के आधार पर बनाए गए बीज उन किसानों के खेतों में क्रॉस-पॉल्लिनेशन करके या अन्य तरीकों से अपना प्रसार करके उन्हें नुकसान पहुँचा सकते हैं जो ये बीज इस्तेमाल नहीं करते या जो ऑर्गनिक फार्मिंग करते हैं। जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म से दूषित हुए ऑर्गनिक किसानों की फसल कम दामों पर बिकती है, और उन्हें प्रमाणपत्र भी निचले स्तर का मिलता है। उनकी फसल तभी बेहतर दामों में बिकेगी जब वह पूरी तरह जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म से मुक्त हो। ब्रिटेन में ऑर्गनिक मक्का की फसल में ऐसे प्रदूषण से पाँच सौ पाउंड प्रति हेक्टेयर तक का नुकसान होने का अनुमान लगाया गया है। कनाडा में ऑर्गनिक कनोला उगाने वाले किसानों ने तो मोसेंटो और एवेंटिस जैसी कंपनियों पर इसी कारण मुकद्दमा कर दिया था। विकासशील देशों के ऑर्गनिक फार्मर तो इस बात से काफी चिंतित हैं कि जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म द्वारा फैलाए गए प्रदूषण के कारण उन्हें निचले स्तर का प्रमाणपत्र मिलेगा जिसके कारण वे अपना यूरोपीय बाजार खो सकते हैं। इसलिए भी ये देश जेनेटिकली परिवर्तित वनस्पति की किस्मों का इस्तेमाल करने से कतराते हैं। इसके अलावा जेनेटिकली परिवर्तित वनस्पतियाँ वनस्पतियों की स्थानीय किस्मों की जगह ले कर गरीबों के काम आने वाली फसलों में कटौती कर सकती हैं। दूसरे जेनेटिकली परिवर्तित किस्मों समस्योत्पन्न आबो-हवा में भी उग सकती हैं, जबकि अन्य किस्म की नकदी फसलें केवल उष्णकटिबंधीय इलाकों में ही पैदा होती हैं। दोनों के बीच निर्यात के बाजार में होने वाली होड़ से भी गैर-जेनेटिकली परिवर्तित किस्मों को आर्थिक नुकसान झेलना पड़ता है।

जहाँ तक जवाबदेही और भरपाई तंत्रों का सवाल है, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण से संबंधित जवाबदेही के लिए कुछ संधियाँ हैं जो आम तौर से समान उसूलों पर आधारित समझी जाती हैं। आम तौर से हानिकर कूड़े-कचरे, आणुविक ऊर्जा और तेल प्रदूषण से होने वाली पर्यावरण क्षति की जवाबदेही के लिए ये संधियाँ उपयोग में लाई जाती हैं। इनकी बाध्यता युद्ध और कुदरती आफतों के संदर्भ में लागू नहीं होती। इस संबंध में लुगानो कन्वेंशन उल्लेखनीय है जिसे अभी तक कार्यान्वित नहीं किया गया है, पर जो इस संदर्भ में प्रासंगिक है। इसका मकसद पर्यावरण को होने वाले नुकसान की क्षतिपूर्ति दिलवाना है। यह न केवल हो चुके नुकसान की भरपाई का प्रावधान करता है, वरन यह हो सकने वाले नुकसानों की रोकथाम करने वाले उपायों पर होने वाले खर्चों की माँग करता है। खास बात यह है कि इसके दायरे में जेनेटिक परिवर्तन से हुए नुकसान भी आते हैं। यूरोपीय देश लुगानो कन्वेंशन की पुष्टि करने से हिचक रहे हैं। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय पर्यावरण संबंधी जवाबदेही का अंतर्राष्ट्रीय तंत्र बनाने के लिए इतनी जल्दी तैयार नहीं होगा।

जहाँ तक जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म से होने वाले नुकसानों का सवाल है, राष्ट्रीय स्तर पर कुछ ही देशों ने इस संबंध में कोई तंत्र तैयार करने की पहल ली है। इस संबंध में स्विट्जरलैंड का जीन टेक्नोलॉजी लॉ उल्लेखनीय है। यह कानून पर्यावरण क्षति की जिम्मेदारी उसी व्यक्ति पर डालता है जिसने जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म पर्यावरण में लाने की इजाजत ली थी। यह जरूर है कि यह व्यक्ति उन लोगों के खिलाफ कार्रवाई कर सकता है जिन्होंने जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म या उससे संबंधित सामग्री का अनुपयुक्त इस्तेमाल करके पर्यावरण को क्षति पहुँचाई है। यह कानून पर्यावरण की क्षतिपूर्ति भी जिम्मेदार व्यक्ति से ही वसूलने का प्रावधान करता है। कानून के मुताबिक पर्यावरण को क्षति पहुँचने के तीस साल बाद तक या जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म बाजार में लाने के तीस साल बाद तक मुआवजा पाने के दावे किए जा सकते हैं। इसके अनुसार समुदाय शांमलात की जमीन को हुए नुकसान की भरपाई का दावा भी कर सकता है।

काफी बहस के बाद अब यह धारणा बनती जा रही है कि जैवप्रौद्योगिकी के लिए अलग से जवाबदेही और भरपाई का तंत्र विकसित करना जरूरी है। चूँकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मौजूदा नियम पर्याप्त पर्यावरण संबंधी निर्देश देने में कामयाब हैं, इसलिए विभिन्न देशों ने सेक्टर आधारित संधियों के बिना पर जवाबदेही के सेक्टरल तंत्र विकसित कर लिए हैं। यह एक आदर्श स्थिति नहीं है, इसलिए विभिन्न देशों के लिए जरूरी है कि वे एक अंतर्राष्ट्रीय जिम्मेदारी तंत्र के विकास में देर न करें।

राष्ट्रीय स्तर पर भारत का उदाहरण बताता है कि टोटर्स का कानून कुछ परिस्थितियों का हल प्रदान करने में मददगार हो सकता है। रेलैंड बनाम फ्लेचर नजीर का प्रगतिशील पाठ जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म के मामले में टोटर्स कानून की भूमिका महत्वपूर्ण बना सकता है। लेकिन, टोटर्स कानून की भी सीमाएँ हैं। वह रोकथाम का प्रावधान नहीं करता, और न ही जवाबदेही के तंत्र की जरूरत कम करता है। दूसरे, एक अंदेशा यह भी है कि भारत में पर्यावरण को क्षति का मसला कहीं दो भू-स्वामियों का विवाद बन कर न रह जाए और जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म को प्रयोग में लाने का जिम्मेदार व्यक्ति पर उत्तरदायित्व डाला ही न जा सके। इस मामले में स्विस् कानून का विधायी इतिहास ध्यान देने योग्य है। स्विस् संसद ने जवाबदेही तंत्र अलग से बनाने के लिए बहस की और कानून के पहले मसविदे ने तत्कालीन पर्यावरण संरक्षण कानून में कई संशोधन पेश किए। बाद में संसदीय समिति सोच-विचार करके इस फैसले पर पहुँची कि जेनेटिक इंजीनियरिंग से जुड़ा क्षेत्र खास तरह का है जिसके लिए अलग कानून की जरूरत है, क्योंकि उसके कारण मानव और उसका पर्यावरण जोखिम के शिकार होते हैं। बिना अलग कानून बनाए कृषि, वानिकी, उद्योग और अनुसंधानकर्ताओं के हितों का ध्यान नहीं रखा जा सकेगा।

जवाबदेही और भरपाई तंत्र विकसित करने का सबसे बड़ा फायदा तो यह होगा कि उससे जैवविविधता के संरक्षण को प्रोत्साहन मिलेगा, मिट्टी की उर्वरता कायम रहेगी और जीवित ऑर्गनिज्म की अखंडता बनी रहेगी। इससे भोजन के अधिकार और बुनियादी जरूरत के रूप में भोजन तक पहुँच का आश्वासन और पुष्ट होगा। उपभोक्ताओं के लिए ऑर्गनिक और जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म के आधार पर उगाए गए खाद्य



के बीच चुनाव का मौका रहेगा। कुल मिला कर जैव सुरक्षा का प्रश्न जैवप्रौद्योगिकी विनियमित करने और जिम्मेदारी व भरपाई तंत्रिका विकास करने से जुड़ा हुआ है। इन सवालों को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता।

## स. जवाबदेही और बौद्धिक सम्पदा संरक्षण

पर्यावरण को होने वाले नुकसान की जवाबदेही और अनधिकृत रूप से किसी पेटेंट को इस्तेमाल करने की जवाबदेही दो अलग-अलग चीजें हैं। जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म के मामले में ये दोनों जवाबदेहियाँ आपस में टकरा भी सकती हैं। कनाडा और अमेरिका में नियम है कि जब कोई किसान जेनेटिकली परिवर्तित बीज खरीदता है तो उसे करार पर दस्तखत करने पड़ते हैं कि वह एक बार से ज्यादा बीज का इस्तेमाल नहीं करेगा यानी वह बीज नहीं बचाएगा। समस्या तब पैदा होती है जब पेटेंटधारक जेनेटिकली परिवर्तित बीजों को इरादतन पर्यावरण में शामिल करने की हरकत रोकने में नाकाम रहते हैं, और जेनेटिक बीज दूसरों के खेत और आम तौर पर पर्यावरण को प्रदूषित कर देते हैं। ऑर्गनिक खेती करने वाला फार्मर तो यही चाहेगा कि वह उन जेनेटिक बीजों के प्रभाव से अपने खेत को जल्दी से जल्दी मुक्त कर ले, क्योंकि उसका आर्थिक नुकसान हो सकता है। अगर किसी किसान के खेत में उसकी इच्छा न होते हुए भी जेनेटिक बीजों का प्रसार हो जाता है, तो सवाल यह है कि पेटेंटधारक क्या करेगा? मॉसैंटो कंपनी और कनाडा के एक किसान पर्सी शमीज़र के बीच हुए विवाद पर नजर डालने से इस समस्या पर रोशनी पड़ सकती है।

मॉसैंटो कंपनी ने राउंडअप रेडी कनोला नामक जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म के आधार पर एक बीज विकसित किया। यह किस्म ज्यादातर वनस्पतियाँ नष्ट कर देने वाले राउंडअप रेडी खरपतवारनाशक के लिए प्रतिरोधी थी। पर्सी नामक किसान के पड़ोसी किसानों ने इस किस्म का प्रयोग करने का निर्णय किया। मॉसैंटो ने पाया कि बीज पर्सी के खेतों में भी है, जबकि पर्सी ने बीज नहीं खरीदा था। दरअसल, पर्सी बीज का इस्तेमाल करने के पक्ष में नहीं था। मॉसैंटो ने पर्सी पर इल्जाम लगाया कि उसने अनधिकृत रूप से बीज का इस्तेमाल किया, उसका पुनर्जनन किया, और उसके जीन, सेल, प्लांट और बीज तैयार किए। इस तरह कंपनी के पेटेंट अधिकार का उल्लंघन हुआ। मुकद्दमा चला। कनाडा के सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि पेटेंट अधिकार का उल्लंघन तो हुआ है, पर इसकी जवाबदेही और देनदारी पर्सी की नहीं है, क्योंकि पर्सी के खेत में जेनेटिकली परिवर्तित बीज का आगमन कैसे हुआ, यह स्पष्ट नहीं। हो सकता है कि पड़ोस के खेतों में छिड़के जाने पर यह बीज पर्सी के खेतों में भी पहुँच गया हो। सुप्रीम कोर्ट ने यह जाँच भी की कि मॉसैंटो द्वारा किया गया पेटेंट का दावा वैध है या नहीं। कनाडा में वनस्पतियाँ पेटेंटपात्र नहीं मानी जातीं, इसलिए कोर्ट का सवाल था कि क्या वनस्पति के किसी एक घटक का पेटेंट होने पर पूरी वनस्पति पर पेटेंटधारक का अधिकार लागू होता है? क्या बीज में डाला गया जीन उससे पैदा होने वाली वनस्पति को भी पेटेंट के दायरे में ला देता है? जज का कहना था कि पेटेंट के उल्लंघन का फैसला करते समय उससे पैदा हुए पौधे की अनदेखी नहीं की जा सकती। जज को दूसरी बात विचारणीय यह लगी कि क्या पेटेंटिड जीन का किसी के पास पाया जाना ही अधिकारों का उल्लंघन माना जा सकता है? उसूल तो यह है कि अगर इस्तेमाल का इरादा न हो, और किसान यह साबित कर दे कि वह न इस्तेमाल करना चाहता था और न ही उसका उद्देश्य व्यावसायिकरण था, तो उसे अधिकारों के उल्लंघन के आरोप से मुक्त किया जा सकता है। जाँच करने पर जज ने पाया कि पर्सी ने अपनी फसल पर राउंडअप रेडी कनोला का छिड़काव नहीं किया। लेकिन, संभावना यह थी कि जरूरत पड़ने पर वह ऐसा कर सकता था, क्योंकि बीज बोते समय उसे पता था या पता होना चाहिए था कि १९९८ में वह राउंडअप रेडी कनोला बो रहा है। इस आधार पर अदालत इस निर्णय पर पहुँची कि मॉसैंटो के अधिकारों का आंशिक उल्लंघन तो जरूर हुआ है। पर्सी का तर्क था कि जब उसके खेत में किसी तरह पेटेंटिड बीज आ गए तो उन्हें उसकी मिल्कियत उसी प्रकार मान ली जानी चाहिए जिस प्रकार किसी का मवेशी अगर उसकी जमीन पर बच्चा जनता तो वह बच्चा जमीन के मालिक का होता है। अदालत ने पर्सी की यह दलील नहीं मानी, और कहा कि इससे पेटेंट कानून के उल्लंघन का बचाव नहीं होता। इस तरह अदालत ने वास्तविक सम्पत्ति अधिकारों पर पेटेंट अधिकारों को प्राथमिकता दी। लेकिन, सुप्रीम कोर्ट ने यह भी पाया कि पर्सी बीज कंपनी का देनदार नहीं है क्योंकि उसने बीज से कोई फायदा नहीं उठाया। यह निर्णय मॉसैंटो द्वारा निर्धारित मुनाफे की परिभाषा के मुताबिक किया गया। मॉसैंटो ने आविष्कार को हुए नुकसान को आधार न बना कर अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले को हुए फायदे को मुनाफे का आधार बनाया था। चूँकि पर्सी ने अपनी फसल पर राउंडअप रेडी का छिड़काव नहीं किया था, इसलिए माना गया कि उसे उन बीजों का कोई व्यावसायिक फायदा नहीं मिला जो उसने १९९८ में इस्तेमाल किए थे।

जाहिर है कि जज ने केवल पेटेंट अधिकारों के संकीर्ण परिप्रेक्ष्य में ही इस मामले को देखा। उसने न तो जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म द्वारा पर्यावरण को हो सकने वाले नुकसान पर गौर किया, न ही कंपनी पर उसकी जवाबदेही के बारे में सोचा और न ही किसानों के अधिकारों के प्रश्न पर सोचा। अदालत का फैसला विचित्र था, क्योंकि उसने यह भी नहीं सोचा कि जेनेटिकली परिवर्तित ऑर्गनिज्म का इस्तेमाल न करने वाले किसान यह कैसे सुनिश्चित करेंगे कि उनके बीजों में पेटेंटिड जीन नहीं है। आखिर उन किसानों के पास इसका परीक्षण करने की क्या सुविधा है? अदालत के फैसले से यह मतलब भी निकलता है कि जिस इलाके में जेनेटिकली परिवर्तित कनोला उगाया जा रहा है, वहाँ के उन किसानों (जो ऐसा कनोला नहीं उगाना चाहते) की जिम्मेदारी बनती है कि वे या तो प्रयोगशाला में अपने बीजों का परीक्षण करा लें, या फिर अपनी फसल पर राउंडअप रेडी का स्प्रे कराने के लिए तैयार रहें जो जेनेटिकली परिवर्तित कनोला न होने की शकल में उनकी फसल को नष्ट कर देगा।

कुल मिला कर यह फैसला कुछ व्यापक प्रश्न उठाता है। पहला, अगर इसी को नज़र मान लिया जाए तो कनाडा ही नहीं, भारत में भी पेटेंटपात्र जेनेटिकली परिवर्तित उत्पादों और पेटेंट न की जा सकने वाली वनस्पतियों के बीच फर्क धुंधला हो जाएगा, क्योंकि भारत में भी वनस्पतियों को पेटेंट के दायरे से बाहर रखा जाता है। दूसरा सवाल पेटेंट जवाबदेही और पर्यावरण जवाबदेही के बीच संबंध के बारे में है। अगर कनाडा का सुप्रीम कोर्ट उसी मुकद्दमे को जैव सुरक्षा के नज़रिए से भी देखता तो उसे विचार करना पड़ता कि क्या मॉसैंटो ने एक ऐसे जेनेटिकली परिवर्तित उत्पाद को पर्यावरण में शामिल किया जिसमें खुद के पुनरुत्पादन और पुनर्जनन की क्षमता है? तब अदालत यह भी देखती कि मॉसैंटो पर पर्सी की खेती यानी किसान की सम्पत्ति प्रदूषित करने की जिम्मेदारी बनती है? ध्यान रहे कि स्विस कानून स्पष्ट रूप से प्रदूषण की जिम्मेदारी उसी व्यक्ति या संस्था या कंपनी पर डालता है जो जेनेटिकली परिवर्तित उत्पाद पर्यावरण में शामिल करता है। अगर इस स्विस कानून द्वारा प्रदत्त हल के बजाय कोई और विकल्प चुना जाता है तो ध्यान रखा जाना चाहिए कि जिस किसान के खेत प्रदूषित हो रहे हैं, उसके हितों की परवाह

भी हो, न कि केवल जेनेटिकली परिवर्तित बीजों को बाजार में लाने वाली कंपनी के हितों की। अगर ऐसा नहीं होगा तो किसान अपने खेतों को प्रदूषित करने के इल्लजाम में केवल जेनेटिकली परिवर्तित उत्पाद इस्तेमाल करने वाले किसानों के ऊपर ही मुकद्दमा चला जाएगा। भारत जैसे देश के लिए यह एक बेहद दुखपूर्ण स्थिति होगी जहाँ अभी तक जवाबदेही और भरपाई का तंत्र विकसित नहीं हो पाया है।

एक अन्य अहम सवाल किसानों द्वारा अपनी जमीन पर की जाने वाली खेती की किस्म तय करने की स्वायत्तता का भी है। अगर वह पारंपरिक खेती करना चाहते हैं, या ऑर्गेनिक खेती करना चाहते हैं तो उन्हें जेनेटिकली परिवर्तित उत्पादों से पूरी तरह मुक्त रहना होगा। अगर ये उत्पाद उनके खेतों में उनकी मर्जी से घुस आते हैं तो जेनेटिक खेती और दूसरी किस्म की खेतियों के बीच सहअस्तित्व का उसूल भंग हो जाएगा। इस उसूल पर वैज्ञानिक और नीतिगत बहसों में काफी चर्चा हो चुकी है। जब तक पारंपरिक और ऑर्गेनिक खेती के खिलाफ फैसला नहीं हो जाता, तब तक इस तरह की खेती को प्रदूषित करने वालों के खिलाफ जवाबदेही और भरपाई तंत्र का बंदोबस्त होना ही चाहिए।

फिर, किसानों के अधिकारों का प्रश्न भी है। एक तरफ वे किसान हैं जो जेनेटिकली परिवर्तित उत्पाद खरीदते हैं, दूसरी ओर उन किसानों के अधिकार हैं जो उनसे दूर रहना चाहते हैं। जेनेटिक खेती करने वाले किसान पेटेंट अधिकारों से बंधे हुए हैं, पर दूसरे तरह के किसानों को तो अपने पारंपरिक अधिकारों के उपभोग का मौका मिलना चाहिए। उन्हें बीज बचाने और उनका अगली फसल में इस्तेमाल करने की सुविधा हर कीमत पर मिलनी चाहिए। कनाडा के सुप्रीम कोर्ट के फैसला इन स्वाभाविक अधिकारों को भी कई नजरियों से सीमित कर देता है।

भारतीय कानून साफ कहता है कि वनस्पतियाँ और वनस्पतियों की किस्में पेटेंट नहीं की जा सकती। वह मानता है कि जेनेटिकली परिवर्तित उत्पादों के पर्यावरण और मानवीय स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर पड़ सकता है। लेकिन, जवाबदेही और भरपाई के मामले में कानूनी ढाँचा अभी काफी अपर्याप्त है।

#### द. जैव सुरक्षा, बौद्धिक सम्पदा अधिकार और टिकाऊ विकास

भारत ने जैवप्रौद्योगिकी के विकास और जैव सुरक्षा विनियमन की प्रक्रिया प्रोत्साहित करने में अगाऊ भूमिका का निर्वाह किया है। जैव सुरक्षा जैवप्रौद्योगिकी के विकास को पर्यावरण संबंधी सरोकारों और टिकाऊ विकास से जोड़ देती है। जैव सुरक्षा की अवधारणा जेनेटिकली परिवर्तित उत्पादों को पर्यावरण में शामिल होने से मानवीय स्वास्थ्य पर पड़ सकने वाले असर और सामाजिक-आर्थिक प्रभावों की समझ पैदा करती है।

जैव सुरक्षा का ताल्लुक बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से भी है, हालाँकि सम्पदा अधिकार जैव सुरक्षा के प्रश्न की परवाह नहीं करते। लेकिन, दोनों के बीच यह सूत्र कायम किया जाना जरूरी है। अगर जैव सुरक्षा के नियम मानना पेटेंटपात्रता की शर्त बना दिया जाए, तो यह कमी पूरी की जा सकती है। यह शर्त केवल व्यवसायीकरण से पहले होने वाले वैज्ञानिक परीक्षण तक ही नहीं सिमटी रहनी चाहिए, बल्कि जवाबदेही और भरपाई तंत्र की रचना तक जानी चाहिए। चूँकि ज्यादातर देशों ने पहले ही अपने यहाँ जैव सुरक्षा तंत्र खड़े कर लिए हैं, इसलिए अब इस पर कोई लंबी-चौड़ी बहस की जरूरत भी नहीं है। जैव सुरक्षा की गारंटी किए बिना पेटेंट अधिकार मंजूर न करने का आग्रह अब विवादास्पद नहीं रहना चाहिए, क्योंकि सभी संबंधित पक्षों ने इसकी जरूरत महसूस कर ली है। मुश्किल तो जवाबदेही और भरपाई तंत्र विकसित करने के बारे में है। कनाडा के सुप्रीम कोर्ट का फैसला बताता है कि जेनेटिकली परिवर्तित उत्पादों में अपने दायरे से बाहर स्वतः प्रसार करने की प्रवृत्ति होती है। इससे यह भी पता चलता है कि जवाबदेही का एक तंत्र दूसरे से अंतर्विरोध में आ सकता है।

### १२ मानवाधिकारों का प्रश्न

मानवाधिकारों और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का विकास एकदम अलग-अलग हुआ है। सम्पदा अधिकार केवल अपने सामाजिक-आर्थिक प्रभाव का जिक्र करके रह जाते हैं। लेकिन, यह जरूर है कि मानवाधिकार संधियों में सम्पदा अधिकार संबंधी अनुच्छेद शामिल किए गए हैं। दरअसल, भोजन के अधिकार और स्वास्थ्य संबंधी प्रश्नों के उठने के बाद से सम्पदा अधिकारों के संदर्भ में मानवाधिकारों के प्रश्न पर अधिक रोशनी पड़ी है।

#### अ. बौद्धिक सम्पदा संरक्षण और मानवाधिकार

जब से ट्रिप्स संधि ने बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के कार्यान्वयन का दबाव बनाना शुरू किया है, तभी से कई तरह के मानवाधिकारों का प्रश्न उभर कर सामने आ गया है। मसलन, स्वास्थ्य संबंधी मानवाधिकारों के मामले में मेडिकल पेटेंटों और एड्स की बीमारी के आपसी संबंध से इस मसले पर प्रकाश पड़ता है। एड्स का इलाज करने वाली दवाएँ अभी नई हैं और पेटेंट अधिकारों के दायरे में आती हैं। दूसरी तरफ जेनेटिक इंजीनियरिंग के विकास के कारण भोजन के अधिकार का प्रश्न विचारणीय हो गया है क्योंकि पेटेंटों के कारण खाद्य तक पहुँच और किसानों के अधिकारों की सीमा से संबंधित सरोकार पैदा हो गए हैं। समस्या यह है कि इन मसलों पर विचार केवल मानवाधिकार मंचों पर ही होता है। सम्पदा अधिकारों की दुनिया में अभी इस भाषा ने प्रवेश नहीं किया है। संयुक्त राष्ट्र के स्तर पर उसकी एक संस्था सब-कमीशन ऑन प्रमोशन एंड प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स ने २००० में दिए गए एक स्पष्ट वक्तव्य के जरिए स्वीकार किया है कि ट्रिप्स के बौद्धिक सम्पदा अधिकार संबंधी प्रावधानों और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून के बीच स्पष्ट रूप से टकराव है।

सब-सहारा देशों में एड्स की महामारी के प्रसार के संदर्भ में उत्पन्न मानवाधिकार सरोकारों के ख्याल से संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार कमेटी (ईएससीआर कमेटी) ने २००१ में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और मानवाधिकारों के बीच सूत्र पर एक वक्तव्य जारी किया जो सदस्य देशों पर बाध्यकारी तो नहीं था, पर स्पष्ट संकेत करता था कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के तंत्र को मानवाधिकारों को प्रोत्साहित करना चाहिए और उनकी सुरक्षा करनी चाहिए। कमेटी का वक्तव्य अहम ढंग से साफ करता है कि अगर कोई

सम्पदा अधिकार किसी देश को मानवाधिकार संबंधी वचनबद्धताएँ पूरी करने में बाधा डालता है तो वह उस देश के कानूनी ढाँचे के अनुकूल नहीं माना जा सकता।

स्वास्थ्य संबंधी मानवाधिकार का ईएससीआर संधि में स्पष्ट रूप से जिक्र किया गया है। यह संधि राज्य की संस्था से अपेक्षा करती है कि वह न तो इस अधिकार के उपभोग में किसी तरह की बाधा डालेगी, और न ही किसी तीसरे पक्ष को ऐसा करने देगी। साथ ही राज्य की संस्था अपने सभी उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग इस अधिकार के उपभोग लायक परिस्थितियाँ बनाने में खर्च करेगी। इसके लिए राज्य अंतर्राष्ट्रीय सहायता और सहयोग भी ले सकता है। इसका एक मतलब यह भी है कि राज्य ऐसी कोई अंतर्राष्ट्रीय संधि या समझौता करने से बाज आएगा जिससे उसकी जनता का यह अधिकार बाधित होता हो। संधि के अनुसार संबंधित औषधियाँ वाजिब दामों पर उपलब्ध कराना हर राज्य का दायित्व होगा। कमेटी के वक्तव्य में कमजोर वर्गों को स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ मुहैया कराने पर विशेष जोर है। इसके लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को बेहतर बनाने, पौष्टिक आहार और साफ पानी की आपूर्ति करने, साफ-सफाई का ख्याल रखने, छूत की बीमारियों की रोकथाम के लिए टीकों की व्यवस्था करने का उल्लेख है। जहाँ तक एड्स की बीमारी का सवाल है, वर्ल्ड हेल्थ एसेम्बली और मानवाधिकार आयोग ने विस्तृत निर्देश दिए हैं। ईएससीआर कमेटी ऐसे हालात की तरफ भी इशारा करती है जिनके कारण स्वास्थ्य के अधिकार का उल्लंघन हो सकता है। उसका कहना है कि अगर किसी ऐसे कानून को खारिज किया जाता है जो इस अधिकार के उपभोग के लिए जरूरी है, या अगर ऐसा कोई कानून बनाया जा सकता है जो इस अधिकार के खिलाफ बैठता हो या राज्य की संस्था इसी तरह की किसी द्विपक्षीय या बहुपक्षीय संधि पर दस्तखत कर दे।

स्वास्थ्य के अधिकार का मेडिकल पेटेंटों से गहरा ताल्लुक है। पेटेंट संरक्षण एक तरफ तो अनुसंधान और विकास को थोड़ा-बहुत प्रोत्साहित करते हैं, पर दूसरी तरफ उनके कारण दवाओं के दाम भी बढ़ जाते हैं। इसी तरह यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि निजी क्षेत्र के लिए किया गया संसाधनों का पुनर्वितरण और पेटेंटों के दिया गया प्रोत्साहन गरीबों के लिए जरूरी दवाओं के निर्माण का रास्ता साफ करेगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक १९७५ से १९९६ के बीच विकसित किए गए १२२३ रासायनिक मिश्रणों में से केवल ११ ऐसे थे जिनसे उष्णकटिबंधीय बीमारियों का इलाज किया जा सकता था। सारी दुनिया वैसे भी गरीबों तक दवाओं की पहुँच कम होने के संकट की शिकार है। दुनिया की एक तिहाई आबादी को दवाएँ नसीब ही नहीं हैं। भारत में केवल ४९ फीसदी लोगों को ही आवश्यक औषधियाँ मिल पाती हैं। इस संबंध में दवाओं के दामों का भारी महत्त्व है। यह एक हकीकत है कि जेनरिक दवाओं के मुकाबले पेटेंटिड दवाएँ हमेशा ही महंगी होती हैं। ट्रिप्स की वचनबद्धताओं के तहत भारत को भी पेटेंट प्रणाली लागू करनी है। एक अनुमान के अनुसार भारत को लोक-कल्याण के खाते में पेटेंटों के कारण सोलह करोड़ डालर से लेकर सवा अरब डालर तक का नुकसान हो सकता है, जबकि विदेशी निजी क्षेत्र को इसके बदले एक करोड़ डालर से लेकर करीब नब्बे करोड़ डालर तक का मुनाफा हो सकता है।

गरीबों तक दवाओं की पहुँच बढ़ाने के लिए केवल बाजार प्रतियोगिता के जरिए दामों में गिरावट लाना ही काफी नहीं है, बल्कि इसके लिए सबसिडी देना और दाम-नियंत्रण के उपाय करना भी जरूरी है। विकासशील देशों की हालत यह है कि वे औषधियों के क्षेत्र में नई प्रौद्योगिकी का लाभ उठाने के लिए सक्षम भी नहीं हैं। अमेरिका और ब्रिटेन जैसी दवा निर्माता कंपनियाँ किसी गरीब देश में नहीं हैं। केवल भारत ही एक ऐसा विकासशील देश है जिसके पास कुछ क्षमता है। ६० विकासशील देशों में तो एक भी दवा निर्माता कंपनी नहीं है। ८७ विकासशील देश केवल तैयारशुदा उत्पाद ही बना सकते हैं। भारत में औषधि उद्योग के विकास में १९७० के पेटेंट एक्ट की अहम भूमिका है, क्योंकि इसकी वजह से स्वास्थ्य का क्षेत्र पेटेंट के दायरे से बाहर रखा जा सका। १९७० के ड्रग प्राइस कंट्रोल ऑर्डर और १९७८ की नई औषधि नीति ने भी इसमें सकारात्मक भूमिका निभाई। सत्तर के दशक में बना यह पूरा तंत्र जनता तक औषधियाँ पहुँचाने के मकसद से स्थापित किया गया था। धीरे-धीरे इसके तहत निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन बढ़ाया गया। इस समय केवल ७४ दवाएँ ऐसी हैं जो दाम नियंत्रण के तहत रह गई हैं। १९९१ में नई अर्थनीति के लागू होने के बाद १९९४ में निजी कंपनियों को सरकारी बंधनों से मुक्त कर दिया गया। स्वदेशी शोध के जरिए बनी दवाओं को व्यवसायीकरण की तारीख से अगले दस साल तक दाम नियंत्रण से मुक्त रखने की नीति अपनायी गई। फिर स्वास्थ्य के क्षेत्र में पेटेंट की इजाजत देने के लिए संशोधन किए गए। इन तमाम उपायों से औषधि उद्योग को फायदा हुआ। इन प्रयासों की कामयाबी एक जाना-माना तथ्य है। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं निकाला जा सकता कि निजी क्षेत्र की शानदार कामयाबी से गरीबों की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को आवश्यक दवाओं की मुफ्त उपलब्धि की गारंटी हो गई है। पब्लिक सेक्टर में दवाएँ न के बराबर ही बनती हैं। इसी समस्या से निबटने के लिए अब एक कमेटी बनाई गई है जो शिनाख्त करेगी कि किस आवश्यक औषधि को दाम नियंत्रण के तहत रखा जाए। हो सकता है कि इससे दाम नियंत्रण के तहत आने वाली दवाओं की संख्या बढ़ जाए।

मानवाधिकारों के लिहाज से सामुदायिक हितों को आविष्कारकों के हितों के ऊपर प्राथमिकता मिलनी चाहिए। लेकिन, ट्रिप्स समझौता इसकी गुंजाइश नहीं देता। मानवाधिकार परिप्रेक्ष्य बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को खारिज नहीं करता, न ही यह विकासशील देशों को प्राथमिकता का दावा करने का मौका देता है। लेकिन, यह सम्पदा कानून के आधारों पर एक सवालिया निशान जरूर लगाता है। ध्यान रखने की बात यह है कि मानवाधिकार समर्थक नजरिया देशों के आर्थिक विकास के स्तर पर निर्भर नहीं होता। वह तो किसी भी देश में हाशियाकृत व्यक्तियों और समुदायों की परवाह करता है। मानवाधिकारों का सार्वभौम दावा केवल तभी धरती पर उतारा जा सकता है जब ऐसे व्यक्ति और समुदाय उनका उपभोग कर सकें।

मानवाधिकारों के लिहाज से सर्वाधिक जरूरी तो यह है कि सभी आवश्यक औषधियाँ पेटेंट संरक्षण से सर्वथा मुक्त रखी जाएँ। अनिवार्य लाइसेंसिंग संबंधी ब्राजीली राजाज्ञा का आधार तकरीबन यही है। यह राजाज्ञा जनहित की व्यापक और विस्तृत परिभाषा मुहैया कराती है। भारत जैसे देश में, जहाँ स्वास्थ्य के क्षेत्र में पेटेंटपात्रता की मनाही है, वहाँ भी करोड़ों लोगों को आवश्यक दवाएँ उपलब्ध नहीं हैं। ट्रिप्स की वचनबद्धताएँ लागू करने से अगर दवाओं की उपलब्धता घटती है, तो यह ईएससीआर की वचनबद्धता का उल्लंघन माना जा सकता है। इसका अनुच्छेद दो राज्य पर जम्मेदारी डालता है कि वह स्वास्थ्य के अधिकार को धरती पर उतारने के लिए सभी जरूरी उपाय करेगा। अगर ट्रिप्स के इस प्रभाव को सीमित करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया तो मेडिकल क्षेत्र में पेटेंटों की इजाजत देने का मतलब होगा जानबूझ कर उठाया गया प्रतिगामी कदम। जहाँ तक ईएससीआर और ट्रिप्स के बीच संबंधों का प्रश्न है, इस मामले में दोनों तरफ से खासी अस्पष्टता है। केवल यह कहा जा सकता है कि ईएससीआर कोवेनांट स्वास्थ्य संबंधी अधिकार के बारे में कुछ विशिष्ट मानक मुहैया कराता है, जबकि ट्रिप्स

के सरोकार इस विषय को केवल बाहर से ही स्पर्श करते हैं। वैसे तो अंतर्राष्ट्रीय कानून काफी हद तक इस उसूल पर आधारित होते हैं कि विधि के स्रोत और विधि के क्षेत्र के बीच कोई कोटिक्रम नहीं होगा। पर, जैसा कि अध्याय चार में हम देख चुके हैं कि ये कानून कोटिक्रम से मुक्त नहीं हैं। इस लिहाज से अगर मानवाधिकार कानूनों और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के बीच कोटिक्रम तय करना है तो मानवाधिकारों को सम्पदा अधिकारों पर प्राथमिकता मिलनी ही चाहिए।

कुल मिला कर देखें तो सम्पदा अधिकारों और स्वास्थ्य के अधिकार के बीच टकराव टालने के लिए कुछ तरीके अपनाये जा सकते हैं। मसलन, बौद्धिक सम्पदा के सामाजिक आयामों पर जोर दिया जा सकता है। इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय न्यायिक संस्थाओं ने भी कोशिशें की हैं कि वे अंतर्राष्ट्रीय कानून के विभिन्न मानकों के बीच संभावित टकराव हल करने की दिशा में प्रयास कर सकती हैं। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय किसी पुरानी संधि को कानून के क्षेत्र में हुए नए विकास के आधार पर व्याख्यायित करने के पक्ष में भी है। लेकिन, अगर प्राथमिकता देनी ही पड़े तो मानवाधिकारों को ही दी जानी चाहिए। किसी भी देश को इस तरह के टकराव की हालत में मानवाधिकारों के पक्ष में ही झुकना चाहिए। भले ही डब्ल्यूटीओ के विवाद निबटान तंत्र की निगाह में यह रवेया विवादास्पद हो, और सभी देश इस बात को न मानें, फिर भी औचित्य के लिहाज से यही ठीक होगा।

स्वास्थ्य के अधिकार की तरह फैसलों में सहभागिता का अधिकार भी एक मानवाधिकार है। संयुक्त राष्ट्र की दो मानवाधिकार घोषणाओं में इसका जिक्र किया गया है। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के मामले में यह मानवाधिकार अहम है। इसके दो स्तर हैं। पहला, अंतर्राष्ट्रीय संधियों के मामले में जहाँ उसका असर व्यक्तियों और समूहों पर पड़ने वाला हो। और दूसरा, जहाँ राष्ट्रीय स्तर पर उन संधियों के कार्यान्वयन का प्रश्न हो। जैसा कि हम जानते हैं ट्रिप्स समझौता अंगीकार करने के लिए हुई वार्ता में देशों के स्तर पर पारदर्शिता का अभाव था। अंतर्राष्ट्रीय कानून राज्य की संस्था को अपने कानून के हिसाब से अपना काम करने की इजाजत देता है, पर नागरिक के स्तर पर ऐसी स्थिति नहीं है। कई देशों में, भारत समेत, ट्रिप्स की वचनबद्धताएँ अंगीकार करने से पहले आम लोगों की कोई सहभागिता या उनसे सलाह-मशविरा सुनिश्चित नहीं की गई। इसी परिस्थिति को जिनेवा की व्यापार वार्ता में लोकतंत्र की कमी के रूप में चिह्नित किया गया था। भारत में जनता की बात तो जाने ही दीजिए, ट्रिप्स संबंधी फैसले में विधायिका को भी सहभागिता का मौका नहीं मिला।

एक बार जब कोई देश किसी अंतर्राष्ट्रीय संधि अंगीकार कर लेता है, तो फिर कार्यान्वयन का प्रश्न पैदा होता है जिसके लिए संसदीय कार्यवाही से लेकर जमीनी स्तर की सहभागिता की आवश्यकता पड़ती है। भारत की संसद द्वारा ट्रिप्स के मसले पर सरकारी रवेये पर मुहर लगाने से इनकार कर दिया था। यह इस बात का सबूत है कि ट्रिप्स अंगीकार करने के मसले पर सहभागिता की कमी रही। इससे साफ होता है कि भारत की जनता उरुग्वे चक्र की वार्ता के फैसलों के पक्ष में नहीं थी। संसद के इनकार के कारण ही भारत ट्रिप्स से संबंधित वचनबद्धताएँ पूरी नहीं कर पाया।

देखने की बात यह है कि संसद की इस प्रतिक्रिया के बावजूद प्लांट वेराइटी विधेयक और जैवविविधता विधेयक के लिए तैयारी करते समय सरकार के बाहर मौजूद समूहों के हितों का ध्यान रखते हुए नीति-निर्माण संबंधी पहलकदमियाँ तो ली गईं, पर नागरिकों के साथ पूरी तरह सलाह-मशविरा की प्रक्रिया नहीं चलाई गई। प्लांट वेराइटी एक्ट के संबंध में तो यह कमी खुल कर सामने आ गई। १९९९ में संसद में पेश किया गया यह विधेयक देश के किसानों के हितों के प्रति कतई बेपरवाह साबित हुआ। इसके कारण संयुक्त संसदीय समिति बनाई गई जिसने व्यापक सलाह-मशविरा के बाद २००० में इस विधेयक का मसविदा दोबारा तैयार किया। हालाँकि, लगता नहीं कि इसका नतीजा भी संतोषजनक निकलेगा क्योंकि इसमें भी रजिस्ट्रेशन प्रणाली फिर से सूत्रबद्ध नहीं की गई है। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि व्यापक सलाह-मशविरा के कारण इस विधेयक में काफी अवधारणागत परिवर्तन किए जा सके। जैवविविधता विधेयक भी इसी तरह जनता की राय लिए बिना तैयार किया गया। खास बात यह है कि उसी दौरान नेशनल बायोडायवर्सिटी स्ट्रेटजी एंड एक्शन प्लान (एनबीएसएपी) तैयार किया जा रहा था जिसके आधार में भारतव्यापी परामर्श और सहभागिता की प्रक्रिया निहित थी। २००२ में जो जैवविविधता एक्ट पास किया गया, उस पर इस सहभागी प्रक्रिया का कोई असर नहीं दिखता। विधेयक का जो अंतिम रूप कानून के रूप में पास किया गया, वह उसके पहले मसविदे जैसा ही लगता है।

सहभागिता के आधार पर फैसले लेने का आग्रह करने वाली केवल एक अंतर्राष्ट्रीय ट्रीटी है जिसे आरहुस कन्वेंशन के नाम से जाना जाता है। यह यूरोप के लिए बने संयुक्त राष्ट्र आर्थिक आयोग की क्षेत्रीय ट्रीटी है, और इसके दरवाजे संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्यों के लिए खुले हैं। यह संधि न केवल पर्यावरण के क्षेत्र में, बल्कि सामान्य तौर पर भी सहभागिता का अधिकार मुहैया कराने के लिए एक प्रस्थान बिंदु पेश करती है।

## ब. मानवाधिकार के रूप में बौद्धिक सम्पदा संरक्षण

मानवाधिकार विषयक अमेरिका और अफ्रीकी संधियों में सम्पत्ति का अधिकार भी प्रमुखता से दर्ज है। अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून तो निजी सम्पत्ति के अधिकार को पूरी तरह से बुलंद करता है, पर प्राकृतिक अधिकारों से उसके रिश्ते पर खासी बहस है, क्योंकि मानवाधिकार संधियाँ अधिकारों की प्राथमिकता तय करने में आम तौर से नाकाम रही हैं। इसी तरह बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को मानवाधिकार मानने पर पश्चिमी देशों में मतभेद हैं। लेकिन, मानवाधिकार संधियों में ऐसे कई अनुच्छेद हैं जो बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को मानवाधिकार मानने का आधार बन सकते हैं। मानवाधिकारों की सार्वभौम उद्घोषणा और ईसीएसआर कोवेनांट में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से संबंधित सरोकार मिल सकते हैं।

ईएससीआर के अनुच्छेद १५(१) के मूल रूप में सांस्कृतिक जीवन में भागीदारी और वैज्ञानिक प्रगति का लाभ उठाने का अधिकार तो था, पर आविष्कारकों का उल्लेख नहीं था। बाद में जब अनुच्छेद १५(१)सी अंगीकार किया गया तो उसमें लेखकों के अधिकारों का उल्लेख कर दिया गया, क्योंकि कोस्टारिका और उरुग्वे लेखकों को प्रकाशकों द्वारा की जाने वाली अनुचित कार्रवाई के मुकाबले सुरक्षित करना चाहते थे। उरुग्वे का तर्क था कि पश्चिमी देशों के प्रकाशक साहित्यिक और वैज्ञानिक रचनाओं को चुरा लेते हैं और इस तरह उनकी रॉयल्टी का नुकसान होता है।

इसी तरह मानवाधिकारों की सार्वभौम उद्घोषणा के अनुच्छेद २७(२) ने ऊपर वर्णित अनुच्छेद १५(१)सी को प्रभावित किया है। यह मैक्सिको का आग्रह था कि अनुच्छेद २७(२) में बौद्धिक कर्मियों, वैज्ञानिकों और लेखकों के अधिकारों का जिक्र किया जाए। हालाँकि इस सवाल पर हुई बहस में वैज्ञानिक विकास और पेटेंटों का हवाला जरूर दिया गया, पर मुख्यतः परिप्रेक्ष्य कापीराइट का ही रहा। लेकिन, १९४८ और फिर १९५७ में कई देशों ने इस प्रस्ताव को खारिज कर दिया। इनमें अमेरिका, ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया जैसे देश शामिल थे। मोटे तौर पर इनका कहना था कि कॉपीराइट एक अलग अंतर्राष्ट्रीय संधि का अंग है और उसे मूलभूत मानवाधिकार नहीं बनाया जा सकता। तत्कालीन सोवियत संघ का तर्क था कि वह इस मसले पर कोई अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धता नहीं चाहता। इसे विभिन्न देशों पर छोड़ दिया जाना चाहिए, क्योंकि बौद्धिक सम्पदा के सवाल पर विभिन्न देशों का रवैया अलग-अलग है। इस सोवियत तर्क के पक्ष में बहुत से देश थे।

अनुच्छेद १५(१) की विशेषता है कि यह संस्कृति में सहभागिता और विज्ञान के विकास के लाभों के संदर्भ में सामाजिक हितों को केंद्रस्थ करता है, और साथ ही विज्ञान, कला या संस्कृति में विशिष्ट व्यक्तिगत और सामूहिक योगदानों को भी मान्यता देता है। हालाँकि पहले इस अनुच्छेद में राज्य की संस्था और विद्वानों की दिलचस्पी कम थी, पर ट्रिप्स समझौता अंगीकार किए जाने के बाद इसे बौद्धिक सम्पदा अधिकारों और मानवाधिकारों के बीच सूत्र की तरह देखा जाने लगा है। ईएससीआर कमेटी ने इसके आधार पर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के अपने कोवेनांट में स्थिति पर एक आम टिप्पणी तैयार की, जिसे नवंबर, २००४ में पारित किया जाना था, पर कुछ आलोचनाओं के कारण ऐसा नहीं किया जा सका। बहरहाल, अब अनुच्छेद १५(१) को इसी टिप्पणी की रोशनी में पढ़ा जाना चाहिए, भले ही इस टिप्पणी में आगे चल कर कुछ संशोधन क्यों न किए जाएँ। टिप्पणी की पहली आलोचना तो यह है कि यह पूरे अनुच्छेद पर जोर न देकर केवल उसके पैरा-सी पर ही ध्यान देती है। यानी उसकी दिलचस्पी केवल व्यक्तिगत लेखकों और आविष्कारकों में ही है, और वह विज्ञान के विकास से हर व्यक्ति के लाभान्वित होने तथा संस्कृति में हर व्यक्ति की भागीदारी वाले पहलू को नजरअंदाज कर देती है।

कुल मिला कर कमेटी बौद्धिक सम्पदा संरक्षण पर निजी अधिकार को मानव में निहित एक अधिकार मान कर चलती है। वह कहती है कि हर व्यक्ति को अपनी रचना से होने वाले नैतिक और भौतिक लाभों को सुरक्षित रखने का अधिकार है। दूसरे, कमेटी वैज्ञानिक उत्पादन की व्याख्या आविष्कारों के रूप में करती है। अर्थात्, कमेटी के हिसाब से अनुच्छेद १५(१)सी न केवल लेखकों के कॉपीराइट के बारे में है, बल्कि मौजूदा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के तहत संरक्षित पेटेंट अधिकारों के बारे में है। ध्यान रखने की बात यह है कि कमेटी की टिप्पणी आविष्कारकों के साथ निजी संबंध न रखने वाले ट्रेडमार्कों को संरक्षण नहीं देती। दूसरे, उसकी व्याख्या पर जारी बहस बताती है कि अनुच्छेद १५(१)सी में दिए गए अधिकारों और बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के ढाँचे के तहत दिए गए अधिकारों के बीच संगति नहीं है। तीसरे, कमेटी पर यह जिम्मेदारी भी आ जाती है कि वह बौद्धिक सम्पदा संरक्षण पर निजी दावेदारियों और हकीकत के बीच तनाव हल करने की कोशिश करे। आज व्यवहारिक स्थिति यही है कि बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के मुख्य लाभार्थी व्यक्ति नहीं रह गए हैं। इसी लिहाज से कमेटी की टिप्पणी बुनियादी, सार्वभौम और अनुलंघनीय मानवाधिकारों एवं राज्य की संस्था द्वारा संविधानसम्मत ढंग से दिए गए उन बौद्धिक सम्पदा संरक्षण अधिकारों में फर्क भी करती है जिनका विनिमय किया जा सकता है और जिनके उपभोग को सीमित किया जा सकता है। दरअसल, कमेटी की टिप्पणी बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के संदर्भ में व्यक्तियों के अधिकारों और व्यापारिक संस्थाओं के अधिकारों का सीमांकन नहीं करती। वस्तुस्थिति यह है कि आज दुनिया में व्यक्तिगत रूप से ऐसे आविष्कारक बहुत ही कम हैं जो बौद्धिक सम्पदा संरक्षण का व्यावसायिक लाभ उठा रहे हैं। आविष्कारकों को उनकी व्यापारिक संस्थाओं से अलग करके देखना नामुमकिन हो गया है।

अनुच्छेद १५(१) में अन्य मानवाधिकारों के संरक्षण का उल्लेख भी है। संस्कृति और विज्ञान संबंधी अधिकारों के तहत बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के लिए खुलने वाली गुंजाइश तभी सार्थक हो सकती है जब अनुच्छेद १५(१)सी के तहत की गई इन अधिकारों की व्याख्या मानवाधिकारों के समग्र परिप्रेक्ष्य का ध्यान रखे, और उनकी वजह से किसी और के अधिकारों का हनन न हो। कमेटी की टिप्पणी बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के आग्रह को आहार, स्वास्थ्य और शिक्षा से संबंधित मानवाधिकारों के साथ एकीकृत करने और संतुलित करने की कोशिश करती है। इस संतुलन का स्वरूप सामाजिक किस्म का है, यानी यह टिप्पणी बुनियादी मानवाधिकारों को गिरा कर ऐसे बौद्धिक सम्पदा संरक्षण अधिकारों की सीमा तक ले आती है जो मुख्यतः मानवाधिकारों की श्रेणी में नहीं आते।

अनुच्छेद १५(१)सी बौद्धिक सम्पदा संरक्षण को प्राकृतिक मानवाधिकारों के दायरे में ले आता है। इस प्रयास का स्वागत नहीं किया जा सकता। लेकिन, सम्पत्ति का अधिकार तो अधिकतर अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों का अंग है, और उसे सकारात्मक माना जाता है। यही बात बौद्धिक सम्पदा के बारे में कही जा सकती है। हालाँकि मानवाधिकारों के दायरे में इसे शामिल करने पर अवधारणात्मक आपत्ति की जा सकती है, पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के संरक्षण के संदर्भ में इससे बचना अब मुश्किल हो गया है। ईएससीआर संधि के तहत दिए जाने वाले सम्पत्ति अधिकार पेटेंट प्रणाली की तरह इजारेदारी के अधिकार नहीं हो सकते। उसके तहत किसी एक का अधिकार दूसरे के अधिकार को कम नहीं कर सकता। यह प्रावधान पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण को नई रोशनी में देखने के लिए मजबूर कर देता है।

कुल मिला कर स्थिति यह है कि जब तक कमेटी बौद्धिक सम्पदा संरक्षण को बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का पर्याय मानती रहेगी, तब तक वह उन तमाम संबंधित बहसों में कोई अहम उसूलों योगदान नहीं कर पाएगी जो पिछले दस साल से जारी हैं। यहाँ अनुच्छेद १५(१)सी का एक पहलू अवश्य विचारणीय बन जाता है, क्योंकि उसमें जिस बौद्धिक योगदान की चर्चा की गई है उसका संबंध बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के मौजूदा ढाँचे से नहीं है। इस तरह यह अनुच्छेद सुइ जेनरिस बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के लिए प्रभावी कानूनी आधार मुहैया करा देता है। इससे किसानों के अधिकार और पारंपरिक ज्ञान से संबंधित सरोकार पुष्ट होते हैं।

## निष्कर्ष

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का दायरा और महत्त्व पिछले कुछ दशकों में बहुत तेजी से बढ़ा है। इसे पिछले डेढ़ सौ साल से चल रही प्रक्रिया की निरंतरता में देखा जा सकता है। बस, फर्क यह है कि इसकी रफ्तार पिछले दिनों काफी तेज हो गई है। दरअसल, बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के क्षेत्र में इतना जबरदस्त विस्तार हुआ है कि अब इससे निबटना बौद्धिक सम्पदा विशेषज्ञों के हाथ की बात नहीं रह गई है। आज इन अधिकारों



के केवल आर्थिक विकास के लिए तटस्थ किस्म के कानूनी प्रोत्साहन के नजरिए से नहीं देखा जा सकता। इस विकास-क्रम के मुख्यतः दो कारण हैं।

पहली बात तो यह है कि ट्रिप्स समझौते के बाद से अधिकतर विकासशील देश बौद्धिक सम्पदा संरक्षण का अपेक्षाकृत ऊँचा स्तर अपनाते जा रहे हैं। ट्रिप्स की वचनबद्धताओं का पालन करने के चक्कर में ऐसा हो रहा है। पहले भू-क्षेत्रीयता के उसूल के कारण वे पेटेंट प्रणाली से बच निकलते थे, और विकसित देशों में चालू पेटेंट से संबंधित कानूनी ढाँचा अपने आप उन पर लागू नहीं हो पाता था। इस नई परिस्थिति का असर विकासशील देशों के आर्थिक विकास पर तो पड़ा ही, मानवाधिकारों की स्थिति भी प्रभावित हुई, क्योंकि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का प्रश्न कृषि के क्षेत्र से जुड़ा हुआ था जिसका सीधा संबंध गरीबों के भोजन और स्वास्थ्य से था।

दूसरे, बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के बढ़ते दायरे में जीवन रूप भी आ गए। तीस साल पहले तक ऐसा सोचना भी नामुमकिन था। इसका नतीजा यह हुआ कि कृषि प्रबंधन, पर्यावरण प्रबंधन और मानवाधिकारों के क्षेत्र पर पेटेंट प्रणाली अपना असर डालने लगी। जीवन रूपों के पेटेंट का परिणाम यह हुआ कि छात्र, अनुसंधानकर्ता, नीति-निर्माता और इस क्षेत्र में सक्रिय लोग बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को टिकाऊ विकास के व्यापक संदर्भ में देखने लगे। टिकाऊ विकास और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का रिश्ता कुछ दिनों तक ही नकारा जा सकता था, पर आज यह पूरी तरह से साफ हो चुका है कि अगर कोई कंपनी किसी बीज को पेटेंट कराती तो है तो उसका कृषि, पर्यावरण और खाद्य सुरक्षा पर क्या असर पड़ सकता है।

आने वाले सालों में विकासशील देशों को इस यक्ष प्रश्न का उत्तर खोजना ही होगा कि क्या बौद्धिक सम्पदा अधिकार राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और व्यक्तिगत स्तर पर टिकाऊ विकास को प्रोत्साहित करते हैं। इस संबंध में कई तरह की अनिश्चितताएँ हैं। विकसित देशों में पेटेंट प्रणाली अब करीब सौ साल से भी ज्यादा पुरानी हो चुकी है, पर अर्थशास्त्रियों के बीच समूची वैकासिक प्रक्रिया में उसके योगदान के बारे में एकराय नहीं हो पाई है। विकासशील देशों के लिए यह प्रश्न तो प्रौद्योगिकी स्थानांतरण से भी जुड़ा हुआ है। उपनिवेशवाद की पराजय के बाद से ही विकासशील देश प्रौद्योगिकी तक बेहतर पहुँच की माँग कर रहे हैं, पर कई कारणों से आज तक ऐसा नहीं हो पाया है। इन कारणों में मौजूदा बौद्धिक सम्पदा अधिकार तंत्र भी एक कारण है। तीसरे, जीवन रूपों पर पेटेंट जैसे नए प्रावधानों के कारण बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का नया प्रतिमान कुछ ऐसा बन गया है कि विकासशील देशों के लिए उनका संबंध अब केवल आर्थिक विकास तक ही सीमित नहीं है। विकसित देशों से भी ज्यादा कृषि और स्वास्थ्य के क्षेत्र में इसका खराब प्रभाव विकासशील देशों पर पड़ने वाला है जहाँ जन-स्वास्थ्य और कृषि को काफी नुकसान हो सकता है। चौथे, इस बात की भी कोई गारंटी नहीं है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का क्षेत्र विस्तृत होने का सकारात्मक असर टिकाऊ विकास पर पड़ेगा। यह सही है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों ने कुछ खास क्षेत्रों में निजी निवेश प्रोत्साहित किया है, पर बौद्धिक सम्पदा संरक्षण का ढाँचा इस बात की कोई गारंटी नहीं देता कि जीवन रूपों को पेटेंट के दायरे में लाने से ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों के लिए उपयोगी फसलों पर अनुसंधान को बढ़ावा मिलेगा, और वे फसलें शोध की दृष्टि से अनाथ फसलें नहीं रहेंगी।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रणाली के मौजूदा रूप की नए सिरे से रचना करने की जरूरत है, क्योंकि अब वह कानून की ऐसी स्वतंत्र शाखा नहीं रह गई है जिसका काम अपने दायरे में ही चल सकता हो। यह नई कानूनी रचना दो स्तरों पर हो सकती है। पहली बात तो इस मान्यता पर जोर देना होगा कि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का ढाँचा टिकाऊ विकास की प्रक्रिया पर और निजी स्तर पर मानवाधिकारों पर असर डालता है। दूसरे, जहाँ तक अंतर्राष्ट्रीय कानूनी ढाँचे के विकास का सवाल है, बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के ढाँचे को टिकाऊ विकास से संबंधित विमर्श से सीखना होगा और अपने भीतर विभेदकारी व्यवहार का आयाम शामिल करना पड़ेगा। स्वास्थ्य और खाद्य जैसे क्षेत्रों में तो आवश्यक है कि विकासशील देशों को उन न्यूनतम मानकों के कार्यान्वयन करने के लिए मजबूर न किया जाए जो विकसित देशों ने अपना रखे हैं। इससे उनके आर्थिक विकास में योगदान होगा। खास तौर से सब-सहारा अफ्रीकी देशों की हालत तो ऐसी है कि वे बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से मिलने वाले फायदे उठाने की स्थिति में ही नहीं हैं और खाद्य व औषधि के क्षेत्र में इन अधिकारों का उन देशों पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है।

इसका मतलब यह नहीं निकालना चाहिए कि बौद्धिक सम्पदा अधिकार विकासशील देशों को अपनाने ही नहीं चाहिए। हालाँकि सैद्धांतिक नजरिए से सभी विकसित देशों और कुछ विकासशील देशों के लिए बौद्धिक सम्पदा अधिकार एक बेहतर हल मुहैया कराने में सक्षम हैं, पर जरूरी नहीं कि छोटी और मँझोली अर्वाधि के लिहाज से भी इनका कार्यान्वयन उचित हो। दरअसल, विकासशील देशों को चाहिए कि वे घरेलू स्तर पर इस तरह के बौद्धिक सम्पदा अधिकार कानून विकसित करने की कोशिश करें जो उनकी जरूरतों के मुताबिक हों। इसका मतलब यह भी नहीं निकाला जाना चाहिए कि ऐसा करने के लिए विकासशील देशों को अपनी अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं का उल्लंघन करना होगा। अध्याय १२ में हम देख चुके हैं कि मानवाधिकारों के लिहाज से कई तरह के हालात में उन्हें बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में कटौती करने का अधिकार प्राप्त है। इसके अलावा विकासशील देशों के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का ऐसा ढाँचा विकसित करने की कोशिश करनी चाहिए जो उनके नागरिकों को लाभान्वित कर सके। पारंपरिक ज्ञान का क्षेत्र एक ऐसा दायरा है जहाँ मौजूदा बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रणाली कमजोर बैठती है, और जहाँ विकासशील देशों को विशेष प्रयास करने चाहिए। ऐसा लगता है कि सुइ जेनरिस बौद्धिक सम्पदा अधिकार संरक्षण के जरिए तो पारंपरिक ज्ञान का क्षेत्र व्यवसायीकरण के दबाव का शिकार हो सकता है। एक सीमा से इस परिस्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता, लेकिन दूसरी तरफ एक ऐसी दुनिया में जहाँ हर चीज का तेजी से व्यवसायीकरण हो रहा हो, पारंपरिक ज्ञान के कानूनी संरक्षण की जरूरत से इनकार नहीं किया जा सकता।



## परिशिष्ट १

### सरकारी दस्तावेज

#### (१) संधियाँ

- एग्रीमेंट बिटवीन दि वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी ऑर्गनाइजेशन एंड दि वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइजेशन, जिनेवा, २२ दिसंबर १९९५
- एग्रीमेंट स्टब्लिशिंग दि वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइजेशन, मराकेश, १५ अप्रैल १९९४, ३३ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ११४४ (१९९४)
- एग्रीमेंट फॉर दि रिप्रेजेंटेशन ऑफ फॉल्स और डिसेप्टिव इंडीकेशंस ऑफ सोर्स ऑन गुड्स, मेड्रिड, १४ अप्रैल १९५१.
- एग्रीमेंट ऑन दि एप्लीकेशन ऑफ सेनेटरी एंड फाइटोसेनेटरी मेजर्स, मराकेश, १५ अप्रैल १९९४, वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइजेशन, दि लीगल टेक्स्ट - दि रिजल्ट्स ऑफ दि उरुग्वे राउंड ऑफ मल्टी लेटरल ट्रेड निगोसिएशंस (केम्ब्रिज : केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, १९९६)
- एग्रीमेंट ऑन ट्रेड रिलेडेड आस्पेक्ट्स ऑफ इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स, मराकेश, १५ अप्रैल १९९४, ३३ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ११९७ (१९९४)
- एग्रीमेंट रिलेटिंग टु दि इंप्लीमेंटेशन ऑफ पार्ट ११ ऑफ दि यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन ऑन दि लॉ ऑफ दि सी ऑफ १० दिसंबर १९८२, न्यूयार्क, २८ जुलाई १९९४, ३३ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स १३०६ (१९९४)
- एग्रीमेंट टु रिवाइज दि बांगुई एग्रीमेंट ऑन दि क्रिएशन ऑफ एन अफ्रीकन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी ऑर्गनाइजेशन ऑफ २ मार्च १९७७, बांगुई, २४ फरवरी १९९६.
- अमेरिकन कन्वेंशन ऑन ह्यूमन राइट्स, सान जोस, २२ नवंबर १९६६, ६ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ६७३ (१९७०)
- कार्टाजेना प्रोटोकॉल ऑन बायोसेफ्टी टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, मॉंट्रियाल, २० जनवरी २०००, ३६ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स १०२७ (२०००)
- चार्टर ऑन ह्यूमन एंड पीपुल्स राइट्स, बांगुई, १६ जनवरी १९८२, २१ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ५८ (१९८२)
- कन्वेंशन स्टब्लिशिंग दि वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी ऑर्गनाइजेशन, स्टॉकहोम, १४ जुलाई १९६७
- कन्वेंशन फॉर दि प्रोटेक्शन ऑफ इंडस्ट्रियल प्रॉपर्टी, पेरिस, २० मार्च १८८३
- कन्वेंशन फॉर दि प्रोटेक्शन ऑफ लिटरेरी एंड आर्टिस्टिक वर्क्स, बर्न, ६ सितंबर १८८६
- कन्वेंशन फॉर दि सेफगार्डिंग ऑफ दि इटेंजीबल कल्चरल हैरीटेज, यूनेस्को, पेरिस, १७ अक्टूबर २००३
- कन्वेंशन ऑन एक्सेस टु इन्फॉर्मेशन, पब्लिक पार्टिसिपेशन इन डिसिज़न मेकिंग एंड एक्सेस टु जस्टिस इन एनवायरनमेंटल मैटर्स, आरहूस, २५ जून १९९८, ३८ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ५१७ (१९९६)
- कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, रियो दे जेनेरियो, ५ जून १९९२, ३१ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ८१८ (१९९२)
- कन्वेंशन ऑन सिविल लायबिलिटी फॉर न्यूक्लीयर डैमेज, वियना, २१ मई १९६३ एज अमेंडेड बाई दि प्रोटोकॉल ऑफ १२ सितंबर १९६७
- कन्वेंशन ऑन इंटरनैशनल ट्रेड इन एनडेंजर्ड स्पीशीज ऑफ वाइल्ड फॉना एंड फ्लोरा, वाशिंगटन, ३ मार्च १९७३, १२ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स १०८५ (१९७३)
- कन्वेंशन ऑन परसिस्टेंट ऑर्गेनिक पॉल्यूटेंट, स्टॉकहोम, २३ मई २००१, ५५ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ५३१ (२००१)
- कन्वेंशन ऑन दि कंजर्वेशन ऑफ एंथ्रोपिक मैरीन लिविंग रिसोर्सेज, केनबरा, २० मई १९८०, १६ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स (१९८०)
- कन्वेंशन ऑन दि लॉ ऑफ ट्रीटीज, वियना, २३ मई १९६६, ८ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ६७६ (१९६६)
- कन्वेंशन ऑन दि ग्रांट ऑफ यूरोपीयन पेटेंट्स, म्यूनिख, ५ अक्टूबर १९७३
- कन्वेंशन ऑन वेटलैंड्स ऑफ इंटरनैशनल इम्पोर्ट्स स्पेशियली ऐज वाटरफॉल हैबीटेट, रामसर, २ फरवरी १९७१, ११ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ६६३ (१९७२)
- कन्वेंशन टु कॉन्वर्ट डेज़र्टीफिकेशन, पर्टीक्यूलरली इन अफ्रीका, पेरिस, १७ जून १९९४, ३३ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स १३२८ (१९९४)
- फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज, न्यूयार्क, ६ मई १९९२, ३१ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ८४६ (१९९२)

जनरल एग्रीमेंट ऑन टेरिफ्स एंड ट्रेड : मल्टीलेटरल ट्रेड निगोसिएशंस, फाइनल ऐक्ट एमबॉडींग दि रिजल्टस ऑव दि उरुग्वे राउंड ऑव ट्रेड निगोसिएशंस, मराकेस, १५ अप्रैल १९९४

इंस्ट्रुमेंट्स फॉर दि एस्टेब्लिशमेंट ऑव दि रीस्ट्रक्चर्ड ग्लोबल एनवायर्नमेंट फेसिलिटी, जिनेवा, १६ मार्च १९९४, ३३ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स १२७३ (१९९४)

इंटरनैशनल कन्वेंशन फॉर दि प्रोटेक्शन ऑव न्यू वैरायटीज ऑव प्लांट्स, पेरिस / जिनेवा, २ दिसंबर १९६१, २३ अक्टूबर १९७८ एंड १९ मार्च १९९१ (जिनेवा : यूपीओवी डॉक २२१ (ई), १९९६)

इंटरनैशनल कन्वेंशन ऑन सिविल लायबिलिटी फॉर ऑयल पॉल्यूशन डैमेज, लंदन, २७ नवंबर १९९२.

इंटरनैशनल कन्वेंशन ऑन सिविल एंड पॉलिटिकल राइट्स, न्यू यार्क, १६ दिसंबर १९६६, ६ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ३६० (१९६७)

इंटरनैशनल कोव्हेनेंट ऑन इकॉनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स, न्यूयॉर्क, १६ दिसंबर १९६६, ६ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स (१९६७)

इंटरनैशनल ट्रीटी ऑन प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज फॉर फूड एंड एग्रीकल्चर, रोम, ३ नवंबर २००१

इंटरनैशनल ट्रॉपिकल टिम्बर एग्रीमेंट, जिनेवा, २६ जनवरी १९९४, ३३ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स १०१४ (१९९४)

पेरिस कन्वेंशन फॉर दि प्रोटेक्शन ऑव इंडस्ट्रियल प्रॉपर्टी, २० मार्च १८८३ (संशोधित)

पेटेंट कोऑपरेशन ट्रीटी, वाशिंगटन, १९ जून १९७०, ६ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ६७८ (१९७०)

पेटेंट लॉ ट्रीटी, जिनेवा, १ जून २०००, डब्ल्यूआईपीओ डॉक पीटी / डीसी / ४७

प्रोटोकॉल ऑन लायबिलिटी एंड कॉम्पनसेशंस फॉर डैमेज रिजल्टिंग फ्रॉम ट्रांसबाउंड्री मूवमेंट्स ऑव हैज़ार्डस वेस्ट्स एंड देयर डिस्पोजल, बेसल, १० दिसंबर १९९९, यूएन डॉक यूएनईपी / सीएचडब्ल्यू ५ / २९, परिशिष्ट ३ (१९९९)

प्रोटोकॉल ऑन सबस्टेंसेज डैट डिप्लोम दि ओजोन लेयर, मॉंट्रियल, १६ सितंबर १९८९, इन ओजोन सेक्रेटेरिएट - यूएनईपी, हैंडबुक फॉर दि इंटरनैशनल ट्रीटीज फॉर दि प्रोटेक्शन ऑव दि ओजोन लेयर (छठा संस्करण २००३)

ट्रेडमार्क लॉ ट्रीटी, जिनेवा, २७ अक्टूबर १९९४

ट्रीटी ऑन दि इंटरनैशनल रिकॉगनीशन ऑव दि डिपॉजिट ऑव माइक्रोऑर्गेनिज्म्स फॉर दि परपज ऑव पेटेंट प्रोसीजर, बुडापेस्ट, २८ अप्रैल १९७७

यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन ऑन दि लॉ ऑव दि सी, मोंटेगो बे, १० दिसंबर १९८२, २१ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स १२६१ (१९८२)

## (२) जैव विविधता संधि

आकवे : कौन वॉलंटरी गाइडलाइंस फॉर दि कंडक्ट ऑव कल्चरल, एनवायर्नमेंटल एंड सोशल इम्पैक्ट असेसमेंट रिगार्डिंग डेवलेपमेंट्स प्रॉपोज्ड टु टेक प्लेस ऑन, ओर विच आर लाइकली टु इम्पैक्ट ऑन, स्केयर्ड साइट्स एंड ऑन लैंड्स एंड वाटर्स ट्रेडिशनली ऑक्यूपाइड ऑर यूज्ड बाई इंडीजिनस एंड लोकल कम्युनिटीज, इन सेक्शन एच (परिशिष्ट), डिसिजन ८ / १६, आर्टिकल ८ (जे) एंड रिलेटेड प्रोविजन, इन रिपोर्ट ऑव दि सेवन्थ मीटिंग ऑव दि कांफ्रेंस ऑव पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायो डायवर्सिटी, यूएन डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ७ / २१ (२००४)

बॉन गाइडलाइंस ऑन एक्सेस टु जेनेटिक रिसोर्सेज एंड फेयर एंड एक्विटेबल शेयरिंग ऑव दि बेनिफिट्स अराइजिंग आउट ऑव देयर यूटिलाइजेशन, इन रिपोर्ट ऑव दि सिक्स्थ मीटिंग ऑव दि कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, यूएन डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ६ / २० (२००२)

डिसिजन २ / १२, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स, इन रिपोर्ट ऑव दि सेकेंड मीटिंग ऑव दि कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, यूएन डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / २ / १९ (१९९५)

डिसिजन ३ / ८, मेमोरेंडम ऑव अंडरस्टैंडिंग बिटवीन दि कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑव बायोलॉजिकल डायवर्सिटी एंड दि काउंसिल ऑफ दि ग्लोबल एनवायर्नमेंट फेसिलिटी, इन रिपोर्ट ऑव दि थर्ड मीटिंग ऑव कांफ्रेंस ऑव पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी यूएन डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ३ / ३८ (१९९६)

डिसिजन ३ / ११, कंज़र्वेशन एंड सस्टेनेबल यूज ऑव एग्रीकल्चरल बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, इन रिपोर्ट ऑव दि थर्ड मीटिंग ऑव कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, यूएन डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ३ / ३८ (१९९६)

डिसिजन ३ / १७, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स, इन रिपोर्ट ऑव दि थर्ड मीटिंग ऑव दि कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी यूपी डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ३ / ३८ (१९९७)

डिसिजन ४ / १६, इम्प्लीमेंटेशन ऑव आर्टिकल ८ (जे) एंड रिलेटेड प्रोवीजंस, इन डिसिजन एडॉप्टेड बाय दि कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑव बायोलॉजिकल डायवर्सिटी एट इट्स फोर्थ मीटिंग, यूएन डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ४ / २७ (१९९८)

डिसिजन २ / ५, एग्रीकल्चरल बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, इन रिपोर्ट ऑव दि सिक्सथ मीटिंग ऑव दि कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, यूएन डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ६ / २० (२००२)

डिसिजन ७ / १६, आर्टिकल ८ (जे) एंड रिलेटेड प्रोवीजंस, इन रिपोर्ट ऑव दि सेवेंथ मीटिंग ऑव दि कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, सेवेंथ मीटिंग, डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ७ / २१ (२००४)

डिसिजन ८ / १६, एक्सेस एंड बेनीफिट शेयरिंग एज रिलेटेड टु जेनेटिक रिसोर्सेज (आर्टिकल १५), इन रिपोर्ट ऑव दि कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, सेवेंथ मीटिंग, डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ७ / २१ (२००४)

डिसिजन बीएस-१ / ८, एस्टेब्लिशमेंट ऑव एन ओपन एंडेड एडहॉक वर्किंग ग्रुप ऑफ लीगल एंड टेक्निकल एक्सपर्ट्स ऑन लायबिलिटी एंड रिड्रेस इन दि कॉन्टेक्ट ऑव दि प्रोटोकॉल, इन रिपोर्ट ऑव दि फर्स्ट मीटिंग ऑव दि कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज सर्विंग एज दि मीटिंग ऑव दि पार्टीज टु दि प्रोटोकॉल ऑन बायोसेफ्टी, यूएन डॉक यूएनईपी / सीबीडी / बीएस / सीओपी-एमओपी / १ / १५ (२००४)।

प्रोग्राम ऑव वर्क ऑन एग्रीकल्चरल बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, फोर्थ मीटिंग, यूएन डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ४ / ६ (१९९८)।

रेकमेंडेशन फॉर दि कंडक्ट ऑव कल्चरल, एन्वायर्नमेंटल एंड सोशल इम्पैक्ट असेसमेंट रिगार्डिंग डेप्लॉयमेंट्स प्रॉपोज्ड टु टेक प्लेस ऑन, ऑर विच आर लाइकली टु इम्पैक्ट ऑन, सेक्रेड साइट्स एंड ऑन लैंड्स एंड वाटर्स ट्रेडिशनली ऑक्युपाइड ओर यूज्ड बाय इंडीजीनस एंड लोकल कम्युनिटीज, इन एनेक्स २, डिसिजन ५ / १०. आर्टिकल ८ (जे) एंड रिलेटेड प्रोविजन, यूएन डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ६ / २० (२००२)

टर्मस ऑव रेफरेंस फॉर दि एड हॉक ओपन एंडेड वर्किंग ग्रुप ऑन एक्सेस एंड बेनीफिट शेयरिंग, इन रिपोर्ट ऑव दि कांफ्रेंस ऑव दि पार्टीज टु दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, सेवेंथ मीटिंग, डॉक यूएनईपी / सीबीडी / सीओपी / ७ / २१, पेज ३०० (२००४)।

### (३) कन्सल्टेटिव ग्रुप ऑन इंटरनैशनल एग्रीकल्चरल रिसर्च

सीडीसी स्टेटमेंट्स टु आईसीडब्ल्यू २००० ऑन दि नीड टु रिजॉल्व आउटस्टैंडिंग इशूज कन्सर्निंग इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी प्रोटेक्शन रिलेटिंग टु प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज, सीजीआईएआर इंटरनैशनल सेंटर वीक (२०००)

सेंटर्स पोजीशन स्टेटमेंट ऑन जेनेटिक इंजीनियरिंग (१९९८)

सीजीआईएआर सेंटर स्टेटमेंट्स ऑन जेनेटिक रिसोर्सेज, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड जेनेटिक इंजीनियरिंग।

डिक्लरेशन एंड प्लान ऑव एक्शन फॉर ग्लोबल पार्टनरशिप इन एग्रीकल्चरल रिसर्च, ग्लोबल फॉर्म ऑव एग्रीकल्चरल रिसर्च एट दि कंसल्टेटिव ग्रुप ऑन इंटरनैशनल एग्रीकल्चरल रिसर्च, इंटरनैशनल सेंटर वीक, ३१ अक्टूबर, १९९६

इंटरनैशनल प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज इंस्टीट्यूट, की क्वेश्चंस फॉर डिसिजन मेकर्स - प्रोटेक्शन ऑव प्लांट वेरायटीज अंडर दि डब्ल्यूटीओ एग्रीमेंट ऑव ट्रेड रिलेटेड आस्पेक्ट्स ऑव इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स (रोम : आईपीजीआरआई, १९९६)

लूसर्ने डिक्लरेशन एंड एक्शन प्रोग्राम इन रिन्यूअल ऑव दि सीजीआईएआर सस्टेनेबल एग्रीकल्चर फॉर फूड सिक्योरिटी इन डिवेलपिंग कंट्रीज - मिनिस्टीरियल लेवल मीटिंग - समरी ऑव प्रोसिडिंग्स एंड डिसिजंस (१९९५)

प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑन आईपीआर मैटर्स एंड प्रॉपोजल फॉर रिव्यू ऑव प्लांट ब्रीडिंग, मिड टर्म मीटिंग, बीजिंग, सीजीआईएआर डॉक एमटीएम / ६६ / २० (१९९६)

### (४) यूरोपियन रीजन

अमेंडेड प्रॉपोजल फॉर ए यूरोपियन पार्लियामेंट एंड काउंसिल डायरेक्टिव एप्रोक्सिमेटिंग दि लीगल एरेंजमेंट फॉर दि प्रोटेक्शन ऑव इनवेंशंस बाय यूटीलिटी मॉडल, ओजे सी २४८ ई, २६ / ०८ / २०००, पृष्ठ ५६

काउंसिल डायरेक्टिव ६८ / ४४ ऑन दि लीगल प्रोटेक्शन ऑव बायोटेक्नोलॉजिकल इनवेंशंस, १९६८ ओजे एल २१३ / २१३

काउंसिल ऑव यूरोप - पार्लियामेंटरी असेम्बली, रेकमेंडेशन १४२५ (१९९६) - बायोटेक्नोलॉजी एंड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी.

काउंसिल रेगुलेशन (ईसी) नं. २१०० / ९४ ऑन कम्युनिटी प्लांट वेराइटी राइट्स, २७ जुलाई १९९४, १९९४ ओजे एल २२७ / १

कार्जिसिल रेगुलेशन (ईसी) नं. २५०१ / २००१ ऑव १० दिसंबर २००१ एपलाइंग ए स्कीम ऑव जेनरलाइज्ड टेरिफ प्रेफरेंस फॉर दि पीरियड फ्रॉम १ जनवरी २००२ टु ३१ दिसंबर २००४, ओजे एल / ३४६ (३१ दिसंबर २००१) पृष्ठ १

कार्जिसिल रेगुलेशन (ईसी) नं. ६५३ / २००३ ऑव २६ मई २००३ टु अवाइड ट्रेड डायवर्जेंस इनटू दि यूरोपियन यूनियन ऑव सर्टन की मेडीसिंस, २६ मई २००३, ओजे एल १३५ / ५, ३ जून २००३

डायरेक्टिव ६८ / ४४ / इसी ऑव दि यूरोपियन पार्लियामेंट एंड दि कार्जिसिल ऑव दि यूरोपियन यूनियन ऑन दि लीगल प्रोटेक्शन ऑव बायोटेक्निकल इनवेंशन, ६ जुलाई १९६८, १९६८, ओजे एल २१३

डाइरेक्टिव २००४ / ३५ / सीई ऑव दि यूरोपियन पार्लियामेंट एंड कार्जिसिल ऑव दि २१ अप्रैल २००४ ऑन एन्वायर्नमेंटल लायबिलिटी विद रिगार्ड टु दि प्रिवेंशन एंड रिमेडींग ऑव एन्वायर्नमेंटल डैमेज, ऑफिशियल जर्नल एल १४३ / ५६ (३० अप्रैल २००४)

## (५) एफएओ

कमीशन ऑन जेनेटिक रिसोर्सेज फॉर फूड एंड एग्रीकल्चर, पॉसिबल फॉर्मूलाज फॉर दि शेयरिंग ऑव बेनीफिट्स बेस्ड ऑन डिफरेंट बेनीफिट इंडीकेटर्स, रोम, आठवां सेशन १६-२३ अप्रैल १९९६, डॉक सीजीआरएफए - ८ / ६६ / ८

कमीशन ऑन प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज, रिवीजन ऑव दि इंटरनैशनल अंडरटेकिंग - एनालिसिस ऑव सम टेक्निकल, इकनॉमिक एंड लीगल आस्पेक्ट्स फॉर कंसिडरेशन इन स्टेज २ : एक्सेस टु प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज एंड फार्मर्स राइट्स, डॉक सीजीआरए - ६ / ६५ / ८ सपलीमेंट्री (१९९५)

एफएओ, दि स्टेट ऑव फूड इनसिक्योरिटी इन दि वर्ल्ड २००४ (रोम : एफएओ, २००४)

एफएओ वर्ल्ड एग्रीकल्चर - टुवर्ड्स २०१५ / २०३० (लंदन, अर्थस्केन, २००३)

एफएओ एग्रीकल्चरल बायोटेक्नोलॉजी - मीटिंग दि नीड्स ऑव दि पूअर? (रोम : एफएओ २००४)

इंटरनैशनल अंडरटेकिंग फॉर प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज, रेजल्यूशन ८ / ८३, रिपोर्ट ऑव दि कांफ्रेंस ऑव एफएओ, २२वां सत्र, रोम, ५-२३ नवंबर १९८३, डॉक सी८३ / आरईपी

प्रिलिमनरी ड्राफ्ट इंटरनैशनल कोड ऑव कंडक्ट ऑन प्लांट जेनेटिक इंजीनियरिंग एज इट अफेक्ट्स दि कंजर्वेशन एंड यूटीलाइजेशन ऑव प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज इन कमीशन ऑन जेनेटिक रिसोर्सेज फॉर फूड एंड एग्रीकल्चर, टुवर्ड्स ए कोड ऑव कंडक्ट फॉर प्लांट जेनेटिक इंजीनियरिंग एज इट अफेक्ट्स दि कंजर्वेशन एंड यूटीलाइजेशन ऑव प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज, ६वां सत्र, रोम, १४-१८ अक्टूबर २००२, डॉक सीजीआरएफए - ६ / ०२ / १८ / परिशिष्ट

रेजल्यूशन ३ / ६१, रिपोर्ट ऑव दि कांफ्रेंस ऑव एफएओ, २६वां सत्र, रोम, ६ / २७ नवंबर १९९१ डॉक सी ६१ / आरईपी

रेजल्यूशन ४ / ८६, एग्रीड इंटरप्रेटेशन ऑव दि इंटरनैशनल अंडरटेकिंग, रिपोर्ट ऑव दि कांफ्रेंस ऑव एफएओ, २५वां सत्र, रोम, ११-२६ नवंबर १९८६, डॉक सी ८६ / आरईपी

रेजल्यूशन ५ / ८६ फॉर्मर्स राइट्स, रिपोर्ट ऑव दि कांफ्रेंस ऑव एफएओ २५वां सत्र, रोम, ११-२६ नवंबर १९८६, डॉक सी ८६ / आरईपी

रेजल्यूशन ७ / ६३ रिवीजन ऑव दि इंटरनैशनल अंडरटेकिंग ऑन प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज, रिपोर्ट ऑव दि कांफ्रेंस ऑव एफएओ, २७वां सत्र, रोम, ६-२४ नवंबर १९८६, डॉक सी ६३ / आरईपी

वर्ल्ड फूड समिट, प्लान ऑव एक्शन, रोम, १७ नवंबर, १९९६

## (६) यूनाइटेड नेशंस

एजेंडा २१, इन रिपोर्ट ऑव दि यूनाइटेड नेशंस कांफ्रेंस ऑन एन्वायर्नमेंट एंड डेवलपमेंट, रिओ दे जेनेरियो, ३-१४ जून १९९२, यूएन डॉक ए / सीओएनएफ १५१ / २६ / रेव १ (वॉल्यूम १), परिशिष्ट २

कमीशन ऑन ह्यूमन राइट्स, रेजल्यूशन २००१ / ३३, एक्सेस टु मेडिकेशन इन दि कॉन्टेक्ट ऑव पेनडेमिक्स सच एज एचआईवी / एड्स, २३ अप्रैल २००१, यूएन डॉक ई / २००१ / २३-ई / सीएन ४ / २००१ / १६७.

कमेटी ऑन इकॉनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स, ड्राफ्ट जनरल कमेंट नं. १८, दि राइट ऑव एवरी वन टु बेनीफिट फ्रॉम दि प्रोटेक्शन ऑव दि मोरल एंड मेटिरियल इंटेस्ट रिजल्टिंग फ्रॉम एनी साइंटिफिक, लिटरेरी और आर्टिस्टिक प्रोडक्शन ऑव विच हि इज दि ऑथर, आर्टिकल १५ (१) (सी) ऑव दि इंटरनैशनल कन्वेंशन ऑन इकॉनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स (ऑन फाइल विद दि ऑथर, २००४).

कमेटी ऑन इकॉनॉमिक इकॉनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स जनरल कमेंट नं. ३, 'दि नेचर ऑव स्टेट पार्टीज ऑब्लिगेशन (आर्टिकल २, पैरा १ ऑव दि कोवनेंट)', इन कम्पाइलेशन ऑव जनरल कमेंट्स एंड जनरल रेकमंडेशंस एडॉप्टेड बाय ह्यूमन राइट्स ट्रीटी बॉडीज, यूएन डॉक एचआरआई / जीई / १ / रिब्यू ७.

कमेटी ऑन इकॉनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स, जनरल कमेंट्स नं. १४, दि राइट टु दि हाइएस्ट अटेनेबल स्टैंडर्स ऑव हेल्थ, यूएन डॉक ई / सी १२ / २००० / ४ (२०००)

कमेटी ऑन इकॉनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स रिपोर्ट ऑन दि ट्वेंटी सेकंड, ट्वेंटी थर्ड, एंड ट्वेंटी फोर्थ सेशंस, यूएन डॉक ई / २००१ / २२ - ई / सी १२ / २००० / २१

कमेटी ऑन इकॉनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स, स्टेटमेंट ऑन ह्यूमन राइट्स एंड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी, नवंबर २००१ एनेक्शचर १३, कमेटी ऑन इकॉनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स रिपोर्ट ऑन दि ट्वेंटी फिफ्थ, ट्वेंटी सिक्स्थ एंड ट्वेंटी सेवथ सेशंस, यूएन डॉक ई / २००२ / २२ - ई / सी १२ / २००१ / १७

डिक्लरेशन ऑव अल्मा अता, १२ सितंबर १९७८, इन रिपोर्ट ऑव दि इंटरनैशनल कांफ्रेंस ऑन प्राइमरी हेल्थ केयर (जिनेवा : वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन, १९७८)

डिक्लरेशन ऑव दि यूनाइटेड नेशंस कांफ्रेंस ऑन दि ह्यूमन एन्वायर्नमेंट, स्टॉकहोम, १६ जून, १९७२, ११ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स १४१६ (१९७२)

डिक्लरेशन ऑन दि राइट टु डेवलपमेंट, ४ दिसंबर १९८६, यूएन जनरल असेम्बली रेजल्यूशन ४१ / १२८, यूएन डॉक ए / आरईएस / ४१ / ५३

ड्राफ्ट कोवनेंट ऑन इकॉनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स, कमीशन ऑन ह्यूमन राइट्स, रिपोर्ट ऑव दि टैथ सेशन, ईसीओएसओसी, १८वां सत्र, सप्लीमेंट्री ७, डॉक ई २५७३ - ई / सीएन ४ / ७०५ (१९५४)

ड्राफ्ट डिक्लरेशन ऑन दि राइट्स ऑव दि इंडीजिनस पिपुल्स, यूएन सब कमीशन ऑन प्रिवेंशन ऑव डिस्क्रिमिनेशन एंड प्रोटेक्शन ऑव माइनॉरिटीज, ४६वां सत्र, १९९४, यूएन डॉक ई / सीएन ४ / एसयूवी २ / १९९४ / २ / एड १

ड्राफ्ट इंटरनैशनल कोवनेंट ऑन दि ह्यूमन राइट्स, रिपोर्ट ऑव दि थर्ड कमेटी, यूएन डॉक ए / ३७६४ (१९५७)

ड्राफ्ट इंटरनैशनल डिक्लरेशन ऑन दि ह्यूमन राइट्स - मैक्सिको : अमेंडमेंट टु आर्टिकल २५ ऑव दि ड्राफ्ट डिक्लरेशन, यूएन डॉक ए / सी ३ / २६६ (१९४८)

ड्राफ्ट रेजल्यूशन : दि रोल ऑव पेटेंट्स इन दि ट्रांसफर ऑव टेक्नोलॉजी टु अंडर डेवलपड कंट्रीज, जनरल असेम्बली, सेकंड कमेटी, १६वां सत्र, यूएन डॉक, ए / सी २ / एल ५६५ (१९६१)

जनरल असेम्बली रेजल्यूशन १७१३ (१६), दि रोल ऑव पेटेंट इन दि ट्रांसफर ऑव टेक्नोलॉजी टु अंडर डेवलपड कंट्रीज, १९ दिसंबर १९६१

जनरल असेम्बली रेजल्यूशन, १८०३ (१७), परमानेंट सॉवरेंटी ओवर नेचुरल रिसोर्सेज, १४ दिसंबर १९६२, २ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स २२३ (१९६३)

जनरल असेम्बली रेजल्यूशन, २६२५ (२५), डिक्लरेशन ऑन प्रिंसिपल्स ऑव इंटरनैशनल लॉ कंसर्निंग फ्रेंडली रिलेशंस एंड कोऑपरेशन अमंग स्टेट्स इन एकाडेंस विद दि चार्टर ऑव दि यूनाइटेड नेशंस, २४ अक्टूबर १९७०, ६ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स १२९२ (१९७०)

जनरल असेम्बली रेजल्यूशन, ३२०१ (एस-६), डिक्लरेशन ऑन दि एस्टेब्लिशमेंट ऑव ए न्यू इंटरनैशनल इकॉनॉमिक ऑर्डर, १ मई १९७४, १३ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ७१५ (१९७४)

जनरल असेम्बली रेजल्यूशन, ४२ / १८७, रिपोर्ट ऑव दि वर्ल्ड कमीशन ऑन एन्वायर्नमेंट एंड डेवलपमेंट, ११ दिसंबर १९८७, यूएन डॉक ए / आरईएस / ४२ / १८७

जनरल असेम्बली रेजल्यूशन, एस - १८ / ३, डिक्लरेशन ऑन इंटरनैशनल इकॉनॉमिक कोऑपरेशन, इन पर्टीक्यूलर दि रिवाइटलाइजेशन ऑव इकॉनॉमिक ग्रोथ एंड डेवलपमेंट ऑव दि डेवलपिंग कंट्रीज, १ मई १९६०, यूएन डॉक ए / एस - १८१५

जनरल असेम्बली रेजल्यूशन, ४७ / १९१, इंस्टीट्यूशनल अरेंजमेंट टु फॉलोअप दि यूनाइटेड नेशंस कांफ्रेंस ऑन एन्वायर्नमेंट डेवलपमेंट, २२ दिसंबर १९६२, यूएन डॉक ए / आरईएस / ४७ / १९१

जनरल असेम्बली रेजल्यूशन, ५५ / २, यूनाइटेड नेशंस मिलेनियम डिक्लरेशन, १८ सितंबर २०००, यूएन डॉक ए / आरईएस / ५५ / २

जनरल असेम्बली रेजल्यूशन, ५८ / १ बी, स्केल ऑव असेसमेंट्स फॉर दि अपोर्शनमेंट ऑव दि एक्सपेंसेज ऑव दि यूनाइटेड नेशंस, २३ दिसंबर २००३, यूएन डॉक ए / आरईएस / ५८ / १बी

इंटरनैशनल लॉ कमीशन, ड्राफ्ट आर्टिकल ऑन दि रिस्पॉसिबिलिटी ऑव स्टेट्स फॉर इंटरनैशनली राँगफुल एक्ट्स, रिपोर्ट ऑन दि वर्क ऑव इट्स फिफ्टी थर्ड सेशन, यूएन डॉक ए / ५६ / १०, पृष्ठ ४३ (२००१)

जोहानेसबर्ग डिक्लरेशन ऑन सस्टेनेबल डेवलपमेंट, ४ सितंबर २००२, यूएन डॉक / कांफ्रेंस १९१ / २०



नों लीगली बाईडिंग अथॉरिटेटिव स्टेटमेंट ऑव प्रिंसिपल फॉर ए ग्लोबल कन्सेस ऑन दि मैनेजमेंट, कंजर्वेशन एंड सस्टेनेबल डेवलेपमेंट ऑव ऑल टाइप्स ऑव फॉरेस्ट्स, रिओ डे जिनेरियो, १४ जून १९९२, ३१ इंटरनेशनल लीगल मैटर्स ८८१ (१९९२)

रिपोर्ट ऑव दि थर्ड सेशन ऑव दि कमीशन ऑन ह्यूमन राइट्स, यूएन डॉक ई / ८०० (१९४८)

रिओ डिक्लेरेशन ऑन एन्वायर्नमेंट एंड डेवलेपमेंट, १४ जून, १९९२, यूएन डॉक ए / कांफ्रेंस १५१ / २६ / आरईवी १ (वॉल्यूम १), एनेक्शर १

रोल ऑव पेटेंट इन दि ट्रांसफर ऑव टेक्नोलॉजी २ अंडर डेवलपड कंट्रीज, रिपोर्ट बाय दि सेक्रेट्री जनरल, यूएन डॉक ई / ३८६१ - ई / सी ५ / ५२ / आरईवी १ (१९६४)

सब कमीशन ऑन दि प्रमोशन एंड प्रोटेक्शन ऑव ह्यूमन राइट्स, रेजल्यूशन २००० / ७, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड ह्यूमन राइट्स, १७ अगस्त २०००, यूएन डॉक ई / सीएन ४ / एसयूबी २ / २००० / ७

थर्ड कमेटी समरी रिकॉर्ड ऑव मीटिंग्स, यूएन डॉक ए / सी ३ / एसआर १५० (१९४८)

थर्ड कमेटी समरी रिकॉर्ड ऑव मीटिंग्स, यूएन डॉक ए / सी ३ / एसआर १५१ (१९४८)

थर्ड कमेटी समरी रिकॉर्ड ऑव मीटिंग्स, यूएन डॉक ए / सी ३ / एसआर ७६६ (१९५७)

थर्ड कमेटी समरी रिकॉर्ड ऑव मीटिंग्स, यूएन डॉक ए / सी ३ / एसआर ७६७ (१९५७)

थर्ड कमेटी समरी रिकॉर्ड ऑव मीटिंग्स, यूएन डॉक ए / सी ३ / एसआर ७६८ (१९५७)

यूएन चार्टर, सान फ्रांसिस्को, २६ जून १९४५

अंकटाड, ए केस स्टडी ऑव दि फार्मास्यूटिकल इंडस्ट्री इन इंडिया, इन अंकटाड, ट्रांसफर ऑव टेक्नोलॉजी फॉर सक्सेसफुल इंटीग्रेशन इनटू दि ग्लोबल इकोनॉमी ८७ (जिनेवा : अंकटाड, २००३)

अंकटाड, दि रोल ऑव दि पेटेंट सिस्टम इन दि ट्रांसफर ऑव टेक्नोलॉजी टु दि डेवलपिंग कंट्रीज, यूएन डॉक टीडी / बी / एसी ११ / १९ (१९७४)

अंकटाड, दि लीस्ट डेवलपड कंट्रीज रिपोर्ट २००४, यूएन डॉक अंकटाड / एलडीसी / २००४ (२००४)

यूएनडीपी ह्यूमन डेवलेपमेंट रिपोर्ट (न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, २०००, २००३, २००४)

यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑव ह्यूमन राइट्स, १० दिसंबर १९४८, यूएन जनरल असेम्बली रेजल्यूशन २१७ (३) ए, ऑफिशियल रिकॉर्ड्स ऑव दि थर्ड सेशन ऑव दि जनरल असेम्बली, पार्ट १, २१ सितम्बर-१२ दिसम्बर १९४८ (रेजल्यूशंस)

वर्ल्ड हेल्थ असेम्बली, एचआईवी / एड्स : कन्फ्रंटिंग दि एपीडेमिक, रेजल्यूशन डब्ल्यूएचए ५२ : १४ (२० मई २०००)

वर्ल्ड समिट ऑन सस्टेनेबल डेवलपमेंट, प्लान ऑव इम्प्लीमेंटेशन, ४ सितंबर २००२, यूएन डॉक ए / सीओएनएफ १९९ / २०

### (७) डब्ल्यूआईपीओ

कम्पोजिट स्टडी ऑन दि प्रोटेक्शन ऑव ट्रेडिशनल नॉलेज, इंटरगवर्नमेंटल कमेटी ऑन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एंड जेनेटिक रिसोर्सेज, ट्रेडिशनल नॉलेज एंड फोकलोर, डॉक डब्ल्यूआईपीओ / जीआरटीकेएफ / आईसी / ५ / ८ (२००३)

ड्राफ्ट सबस्टेटिव पेटेंट लॉ ट्रीटी, स्टैंडिंग कमेटी ऑन दि लॉ ऑव पेटेंट्स, टेंथ सेशन, जिनेवा, मई २००४, डब्ल्यूआईपीओ डॉक एससीपी / १० / ४

ड्राफ्ट टेक्निकल स्टडी ऑन डिस्कलोजर रिक्वायरमेंट रिलेटेड टु जेनेटिक रिसोर्सेज एंड ट्रेडिशनल नॉलेज, इंटरगवर्नमेंटल कमेटी ऑन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एंड जेनेटिक रिसोर्सेज, ५वां सत्र, डॉक डब्ल्यूआईपीओ / जीआरटीकेएफ / आईसी / ५ / १० (२००३)

इंटरनेशनल कमेटी ऑन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एंड जेनेटिक रिसोर्सेज, ओवरव्यू ऑव एक्टिविटीज एंड आउटकम ऑव दि इंटरगवर्नमेंटल कमेटी, डॉक डब्ल्यूआईपीओ / जीआरटीकेएफ / आईसी / ५ / १२ (२००३)

मैटर्स कंसर्निंग इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एंड जेनेटिक रिसोर्सेज, ट्रेडिशनल नॉलेज एंड फोकलोर, डब्ल्यूआईपीओ जनरल असेम्बली, २६वां सत्र, डॉक डब्ल्यूओ / जीए / २६ / ६ (२०००)

प्रोपोजल बाय अर्जेटीना एंड ब्राजील फॉर दि एस्टेब्लिशमेंट ऑव ए डेवलेपमेंट एजेंडा फॉर डब्ल्यूआईपीओ, डब्ल्यूआईपीओ जनरल असेम्बली, ३१वां (१५वां एक्सट्राऑर्डिनरी) सेशन, डॉक डब्ल्यूओ / जीए / ३१ / ११ (२००४)

स्टैंडिंग कमेटी ऑन दि लॉ ऑव पेटेंट्स, इनफॉर्मेशन प्रोवाइडेड बाय मेंबर्स ऑव दि स्टैंडिंग कमेटी ऑन दि लॉ ऑव पेटेंट्स (एससीपी) कन्सर्निंग दि डेफिनीशन ऑव प्रायर आर्ट, डब्ल्यूआईपीओ डॉक एससीपी / ६ / आईएनएफ / २ (२००१)

स्टेटमेंट्स बाय न्यूजीलैंड, नॉर्वे एंड दि यूनाइटेड स्टेट्स, इन रिपोर्ट, इंटरगवर्नमेंटल कमेटी ऑन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एंड जेनेटिक रिसोर्सेज, ट्रेडिशनल नॉलेज एंड फोकलोर, फोर्थ सेशन, डॉक डब्ल्यूआईपीओ / जीओरटीकेएफ! आईसी / ४ / १५ (२००२)

स्टेटमेंट ऑव दि ब्राजीलियन डेलीगेशन, इन रिपोर्ट, इंटरगवर्नमेंटल कमेटी ऑन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एंड जेनेटिक रिसोर्सेज, ट्रेडिशनल नॉलेज एंड फोकलोर, सिक्स्थ सेशन, डॉक डब्ल्यूआईपीओ / जीओरटीकेएफ / आईसी / ६ / १४ (२००४)

सजेशंस फॉर दि फर्दर डेवलेपमेंट ऑव इंटरनैशनल पेटेंट लॉ, स्टैंडिंग कमेटी ऑन दि लॉ ऑव पेटेंट्स, फोर्थ सेशन, जिनेवा, नवंबर २०००, डब्ल्यूआईपीओ डॉकएससीपी / ४ / २

डब्ल्यूआईपीओ / यूएनईपी, दि रोल ऑफ इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स इन दि शेयरिंग ऑव बेनीफिट्स अराइजिंग फ्रॉम दि यूज ऑव बायोलॉजिकल रिसोर्सेज एंड एसोसिएटेड ट्रेडिशनल नॉलेज - सेलेक्टिड केस स्टडीज (जिनेवा : डब्ल्यूआईपीओ / यूएनईपी, २००२)

### (८) डब्ल्यूटीओ / गैट

कमेटी ऑन ट्रेड एंड डेवलेपमेंट - स्पेशल सेशन, रिपोर्ट ऑन दि जनरल काउंसिल, डब्ल्यूटीओ डॉक टीएन / सीटीडी / ३ (२००३)

कम्युनिकेशंस फ्रॉम स्विट्जरलैंड - आर्टिकल २७.३ (बी), दि रिलेशनशिप बिटवीन दि ट्रिप्स एग्रीमेंट एंड दि कनवर्जन ऑफ बायोलॉजिकल डायवर्सिटी, एंड दि प्रोटेक्शन ऑव ट्रेडिशनल नॉलेज, डब्ल्यूटीओ डॉक आईपी / सी / डब्ल्यू / ४०० / रेव १ (२००३)

डिसिजन ऑव दि काउंसिल फॉर ट्रिप्स, इम्प्लिमेंटेशन ऑव आर्टिकल ६६.२ ऑव दि ट्रिप्स एग्रीमेंट, १६ फरवरी २००३, डब्ल्यूटीओ डॉक आईपी / सी / २८

डिक्लेरेशन ऑन दि ट्रिप्स एग्रीमेंट एंड पब्लिक हेल्थ, मिनिस्टीरियल काँफ्रेंस - चौथा सत्र, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / एमआईएन (०१) / डीईसी / २ (२००१)

डिफरेंशियल एंड मोर फेवरेबल ट्रीटमेंट, रेसीप्रोसिटी एंड फुलर पार्टिसिपेशन ऑव डेवलपिंग कंट्रीज (इनेबलिंग क्लॉज), डिसिजन ऑव दि कांफ्रेकिंग पार्टीज २८ नवंबर १९७६, गेट डॉक एल / ४६०३

दोहा वर्क प्रोग्राम ऑन स्पेशल एंड डिफरेंशियल ट्रीटमेंट एंड आउटस्टैंडिंग इम्प्लीमेंटेशन इशूज, कम्युनिकेशन फ्रॉम बंगलादेश (ऑन बिहाफ ऑव दि एलडीसी ग्रुप), इंडिया, इंडोनेशिया, मॉरिशस (ऑन बिहाफ ऑव दि अफ्रीकन ग्रुप) एंड ट्रिनिडाड एंड टोबेगो (ऑन बिहाफ ऑव दि एसीपी ग्रुप), ३१ मार्च २००४, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / जीसी / डब्ल्यू / ५२८-टीएन / सी / डब्ल्यू / १६

दोहा वर्क प्रोग्राम डिसिजन ऑव दि जनरल काउंसिल, १ अगस्त २००४, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / एल / ५७६

एक्सटेंशन ऑव दि ट्रांजीशन पीरियड अंडर आर्टिकल ६६.१ ऑव दि ट्रिप्स एग्रीमेंट फॉर लीस्ट डेवलपिंग कंट्री मेंबर्स फॉर सर्टेन ऑब्लिवेशंस विद रेस्पेक्ट ऑफ फार्मास्यूटिकल प्रॉडक्ट्स, डिसिजन ऑव दि काउंसिल फॉर ट्रिप्स, २७ जून २००२, डब्ल्यूटीओ डॉक आईपी / सी / २५

जनरल काउंसिल, इम्प्लीमेंटेशन ऑव पैराग्राफ ६ ऑव दि दोहा डिक्लेरेशन ऑन दि ट्रिप्स एग्रीमेंट एंड पब्लिक हेल्थ, डिसिजन ऑव ३० अगस्त, २००३, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / एल / ५४० (२००३)

जनरलाइज्ड सिस्टम ऑव प्रेफरेंसेज, डिसिजन ऑव दि कॉन्फ्रेकिंग पार्टीज, २५ जून १९७१, गेट डॉक एल / ३५४५

इम्प्लीमेंटेशन ऑव पैराग्राफ ६ ऑव दि दोहा डिक्लेरेशन ऑन दि ट्रिप्स एग्रीमेंट एंड पब्लिक हेल्थ, काउंसिल फॉर ट्रिप्स, १६ दिसंबर २००२, डब्ल्यूटीओ डॉक जेओबी (२) / २१७.

इम्प्लीमेंटेशन-रिलेटेड इश्यूज एंड कंसर्न्स, डब्ल्यूटीओ मिनिस्टीरियल काँफ्रेंस, फोर्थ सेशन, दोहा, नवंबर २००१, डॉक डब्ल्यूटी / एमआईएन (०१) / १७.

लीस्ट-डेवलपिंग कंट्री मेंबर्स - ऑब्लिवेशंस अंडर आर्टिकल ७०.६ ऑव दि ट्रिप्स एग्रीमेंट विद रेस्पेक्ट टु फार्मास्यूटिकल प्रॉडक्ट्स, डिसिजन ऑव दि जनरल काउंसिल, ८ जुलाई २००२, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / एल / ४७८.

मिनिस्टीरियल डेक्लेरेशन ऑन दि उरुवे राउंड, २० सितंबर, १९८६, मल्टीलेटरल ट्रेड निगोसिएशंस, डॉक एमआईएन डीईसी

मिनिस्टीरियल डेक्लेरेशन, डब्ल्यूटीओ मिनिस्टीरियल काँफ्रेंस, फोर्थ सेशन, दोहा, १४ नवंबर २००१, डॉक डब्ल्यू टी / एमआईएन (०१) / डीईसी / १.

रिव्यू अंडर आर्टिकल २४.२ ऑव दि एप्लीकेशन ऑव दि प्रोविजन ऑव दि सेक्शन ऑव दि ट्रिप्स एग्रीमेंट ऑन ज्योग्राफिकल इंडीकेशंस, डब्ल्यूटीओ डॉक आईपी / सी / डब्ल्यू / २५३ (२००१)

दि रिलेशनशिप बिटवीन दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी (सीबीडी) एंड दि एग्रीमेंट ऑन दि ट्रेड-रिलेटेड आस्पेक्ट्स ऑव इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स (ट्रिप्स); विद ए फोकस ऑन आर्टिकल २७.३ (बी), डब्ल्यूटीओ डॉक आईपी / सी / डब्ल्यू / १७५ (२०००)

## (६) क्षेत्रीय एवं द्विपक्षीय संधियाँ व समझौते

अफ्रीकन मॉडल लेजिस्लेशन फॉर दि प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स ऑफ लोकल कम्युनिटीज, फार्मर्स, ब्रीडर्स एंड फॉर दि रेग्यूलेशन ऑफ एक्सेस टु बायोलॉजिकल रिसोर्सेज, २०००.

एग्रीमेंट बिटवीन दि ईएफटीए, स्टेट्स एंड दि हाशेमाइट किंगडम ऑव जॉर्डन, वादूज, २१ जून २००१

एग्रीमेंट बिटवीन दि ईएफटीए स्टेट्स एंड सिंगापुर, एगिल्सतादिर, २६ जून २००२

एग्रीमेंट बिटवीन दि गवर्नमेंट ऑव दि यूनाइटेड स्टेट्स ऑव अमेरिका एंड दि गवर्नमेंट ऑव दि किंगडम ऑव बहरीन ऑन दि एस्टेब्लिशमेंट ऑफ ए फ्री ट्रेड एरिया, वाशिंगटन, डीसी, १४ सितम्बर २००४

एग्रीमेंट बिटवीन दि गवर्नमेंट ऑव दि यूनाइटेड स्टेट्स ऑव अमेरिका एंड दि हाशेमाइट किंगडम ऑव जॉर्डन ऑन दि एस्टेब्लिशमेंट ऑफ ए फ्री ट्रेड एरिया, वाशिंगटन, २४ अक्टूबर २०००, ४१ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ६३ (२००२)

एग्रीमेंट बिटवीन दि यूनाइटेड स्टेट्स ऑव अमेरिका एंड दि लाओ पीपुल्स डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑन ट्रेड रिलेशंस, सितम्बर २००३

अमेरिकन डेक्लरेशन ऑव दि राइट्स एंड ड्यूटीज ऑव मैन, इन यूनाइटेड नेशंस, ह्यूमन राइट्स - ए कम्पाइलेशन ऑव इंटरनैशनल इंस्ट्रूमेंट्स - वाल्यूम २ - रीजनल इंस्ट्रूमेंट्स, यूएन डॉक एसटी / एचआर / १ / रीविजन ५ (वाल्यूम २) (१९९७)

यूनाइटेड स्टेट्स - मोरक्को फ्री ट्रेड एग्रीमेंट, वाशिंगटन, डीसी, १५ जून २००४

## मुकदमे

कनाडा, मोन्सांटो कनाडा इंक वर्सेज श्माइजर, सुप्रीम कोर्ट ऑव कनाडा, जजमेंट ऑव २१ मई २००४, (२००४) एससीसी ३४

कनाडा, हॉवर्ड कॉलेज वर्सेज कनाडा (कमिश्नर ऑव पेटेंट्स), सुप्रीम कोर्ट ऑव कनाडा, जजमेंट ऑव ५ दिसंबर २००२ (२००२) ४ एससीआर ४५

यूरोपियन कोर्ट ऑव जस्टिस, नीदरलैंड्स वर्सेज यूरोपियन पार्लियामेंट, यूरोपियन कोर्ट ऑव जस्टिस, जजमेंट ऑव ६ अक्टूबर २००१ (केस सी ३७७ / ९८), (२००१) ३ सीएमएलआर ४६ (ईसीजे)

यूरोपियन कोर्ट ऑव जस्टिस, विंडसफिंग्ग चिमनीज वर्सेज ह्यूबर, केसेज सी-१०८ / ९७, सी-१०९ / ९७, जजमेंट ऑव दि यूरोपियन कोर्ट ऑव जस्टिस, ४ मई १९९६, (१९९६) ईसीआर आई-२७७६

यूरोपियन पेटेंट ऑफिस, सीबा-जीगे / प्रोपेगोटिंग मैटीरियल, यूरोपियन पेटेंट ऑफिस टेक्नीकल बोर्ड ऑव अपील, १० नवंबर १९८८ (टी ३५६ / ९३)

यूरोपियन पेटेंट ऑफिस, ल्यूब्रिजोल / हाईब्रिड प्लांट्स यूरोपियन पेटेंट ऑफिस टेक्नीकल बोर्ड ऑव अपील, १० नवंबर १९८८ (टी ३२० / ८३)

यूरोपियन पेटेंट ऑफिस, प्लांट जेनेटिक सिस्टम्स वर्सेज ग्रीनपीस, यूरोपियन पेटेंट ऑफिस, टेक्नीकल बोर्ड ऑव अपील, २१ फरवरी १९९५ (जी ०००१ / ९८), (२०००) ईपीओआर ३०३

यूरोपियन पेटेंट ऑफिस, ऑपोजिशन डिवीजन, डिसिजन रिवोकिंग दि यूरोपियन पेटेंट ०४३२५७, १० मई २०००

गैट, ट्यूना / डॉल्फिन १, रेस्ट्रिक्शन ऑन इम्पोर्ट्स ऑव ट्यूना (मेक्सिको वर्सेज यूएसए), गैट पैनेल रिपोर्ट, ३० इंटरनैशनल लीगल मैटर्स १५६४ (१९९१)

गैट, ट्यूना / डॉल्फिन २, रेस्ट्रिक्शन ऑन इम्पोर्ट्स ऑव ट्यूना (ईसी एंड नीदरलैंड्स वर्सेज यूएसए), गैट पैनेल रिपोर्ट, ३३ इंटरनैशनल लीगल मैटर्स ८३६ (१९९४)

इंडिया, स्कॉच व्हिस्की एसोसिएशन वर्सेज प्रावारा सहाकार शकार कारखाना एआईआर १९९२ बंबई २६४

इंटरनैशनल कोर्ट ऑव जस्टिस, केस कंसर्निंग दि गैबचिकोवा-नागोमारोस प्रॉजेक्ट (हंगरी / स्लोवाकिया), इंटरनैशनल कोर्ट ऑव जस्टिस, जजमेंट, २५ सितंबर १९९७, आईसीजे रिपोर्ट्स, १९९७, पृष्ठ ७

इंटरनैशनल कोर्ट ऑव जस्टिस, सेपरेट ओपिनियन ऑव वाइस-प्रेजिडेंट वीरामंत्री, केस कंसर्निंग दि गैबचिकोवा-नागोमारोस प्रॉजेक्ट, इंटरनैशनल कोर्ट ऑव जस्टिस, जजमेंट, २५ सितंबर १९९७, आईसीजे रिपोर्ट्स, १९९७, पृष्ठ ८८

साउथ अफ्रीका, दि फार्मास्यूटिकल मैनुफैक्चरर्स एसोसिएशन ऑव साउथ अफ्रीका एट ऑल, नोटिस ऑव मोशन, हाई कोर्ट ऑव साउथ अफ्रीका (ट्रांसवाल प्रोविंशियल डिवीजन), १८ फरवरी १९९८

साउथ अफ्रीका, दि फार्मास्यूटिकल मैनुफैक्चरर्स एसोसिएशन ऑव साउथ अफ्रीका एट ऑल वर्सेज दि प्रेजीडेंट ऑव दि रिपब्लिक ऑव साउथ अफ्रीका एट ऑल, ज्वाइंट स्टेटमेंट ऑव अंडरस्टैंडिंग (२००१)

यूनाइटेड किंगडम, केम्ब्रिज वॉटर कंपनी वर्सेज ईस्टर्न काउंटीज लैदर, हाउस ऑव लाइर्स, ६ दिसंबर १९९३, (१९९४) २ एसी २६४

यूनाइटेड स्टेट्स, एसग्रो सीड कंपनी वर्सेज डेनी विंटरबोर एंड बेकी विंटरबोर, देबा डिवीज, सुप्रीम कोर्ट ऑव दि यूनाइटेड स्टेट्स, १८ जनवरी १९९५, ११५ एस सीटी ७८८

यूनाइटेड स्टेट्स, डायमंड वर्सेज चक्रवर्ती, सुप्रीम कोर्ट ऑव दि यूनाइटेड स्टेट्स, १६ जून १९८०, १०० एस सीटी २२०८

यूनाइटेड स्टेट्स, एथीकॉन वर्सेज यूनाइटेड स्टेट्स सर्जिकल कॉरपोरेशन, यूनाइटेड स्टेट्स डिस्ट्रिक्ट कोर्ट - डी कनेक्टिकट, ६ सितंबर १९९६, ६३७ एफ सप्लीमेंटरी १०१५

यूनाइटेड स्टेट्स, एक्स पार्ट हिबर्ड, पेटेंट एंड ट्रेडमार्क ऑफिस बोर्ड ऑव पेटेंट अपीलस एंड इंटरफेरेंसेज, १८ सितंबर १९८५, २२७ यूएसपीक्यू ४४३

यूनाइटेड स्टेट्स, हर्लबट वर्सेज शिलिंजर, सुप्रीम कोर्ट ऑव दि यूनाइटेड स्टेट्स, २२ अप्रैल १८८६, ६ एस सीटी ५८४

यूनाइटेड स्टेट्स, जेईम एजी सप्लाय वर्सेज पायनियर हाई-ब्रेड इंटरनेशनल, सुप्रीम कोर्ट ऑव दि यूनाइटेड स्टेट्स, १० दिसंबर २००, १२२ एस सीटी ५८४

यूनाइटेड स्टेट्स, मोन्सांटो वर्सेज कैम्प, यूनाइटेड स्टेट्स डिस्ट्रिक्ट कोर्ट - डिस्ट्रिक्ट ऑव कोलंबिया, १५ जून १९६७, २६६ एफ सप्लीमेंटरी ८१८

यूनाइटेड स्टेट्स, मोन्सांटो वर्सेज मेक्फालिंग, यूनाइटेड स्टेट्स कोर्ट ऑव अपीलस - फेडरल सर्किट, २३ अगस्त २००२, ३०२ एफ ३ डी १२६१

यूनाइटेड स्टेट्स, शीलड्स वर्सेज हालीबर्टन, यूनाइटेड स्टेट्स कोर्ट ऑव अपीलस - फिफथ सर्किट, १६ फरवरी १९८२, ६६७, एफ २ डी १२३२

डब्ल्यूटीओ, कनाडा - पेटेंट प्रोटेक्शन ऑव फार्मास्यूटिकल प्रॉडक्ट्स, रिपोर्ट ऑव दि पैनल, रिपोर्ट ऑव दि पैनल, १७ मार्च २०००, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / डीएस११४ / आर

डब्ल्यूटीओ, यूरोपियन कम्युनिटीज - कंडीशंस फॉर दि ग्रांटिंग ऑव टैरिफ प्रेफरेंसेज टु डेवलपिंग कंट्रीज, रिपोर्ट ऑव दि पैनल, २८ अक्टूबर २००३, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / डीएस२४६ / आर

डब्ल्यूटीओ, यूरोपियन कम्युनिटीज - कंडीशंस फॉर दि ग्रांटिंग ऑव टैरिफ प्रेफरेंसेज टु डेवलपिंग कंट्रीज, रिपोर्ट ऑव दि एपेलेट बॉडी, १८ मार्च २००४, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / डीएस२४६ / एबी / आर

डब्ल्यूटीओ, यूरोपियन कम्युनिटीज - मैजर्स अफेक्टिंग दि अप्रूवल एंड मार्केटिंग ऑव बायोटेक प्रॉडक्ट्स, रिक्वेस्ट फॉर कंसल्टेशंस बाई दि यूनाइटेड स्टेट्स, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / डीएस२६१ / १(२००३)

डब्ल्यूटीओ, इंडिया - पेटेंट प्रोटेक्शन फॉर फार्मास्यूटिकल एंड एग्रीकल्चरल केमिकल प्रॉडक्ट्स (यूएस कंपलेंट), रिपोर्ट ऑव दि पैनल, ५ सितंबर १९९७, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / डीएस५० / आर

डब्ल्यूटीओ, इंडिया - पेटेंट प्रोटेक्शन फॉर फार्मास्यूटिकल एंड एग्रीकल्चरल केमिकल प्रॉडक्ट्स (यूएस कंपलेंट), रिपोर्ट ऑव दि एपेलेट बॉडी, १६ दिसंबर १९९७, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / डीएस५० / एबी / आर

डब्ल्यूटीओ, इंडिया - पेटेंट प्रोटेक्शन फॉर फार्मास्यूटिकल एंड एग्रीकल्चरल केमिकल प्रॉडक्ट्स (ईसी कंपलेंट), रिपोर्ट ऑव दि पैनल, २४ अगस्त १९९८, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / डीएस७६ / आर

डब्ल्यूटीओ, यूनाइटेड स्टेट्स - इम्पोर्ट प्रोहिबिशन ऑव सर्तेन थ्रिम्प एंड थ्रिम्प प्रॉडक्ट्स (इंडिया, मलेशिया, पाकिस्तान एंड थाईलैंड वर्सेज यूएसए), रिपोर्ट ऑव दि एपेलेट बॉडी, १२ अक्टूबर १९९८, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / डीएस५८ / एबी / आर

डब्ल्यूटीओ, यूनाइटेड स्टेट्स - सेक्शंस ३०१-३१० ऑव दि ट्रेड ऐक्ट ऑव १९७४, रिपोर्ट ऑव दि पैनल, ८ नवंबर १९९६, डब्ल्यूटीओ डॉक डब्ल्यूटी / डीएस१५२ / आर (१९९६)

## राष्ट्रीय दस्तावेज

एन्डियन कम्युनिटी, डिसेजन ४८६ - कॉमन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी रेजीम, १४ सितंबर २०००

ब्राजील, इंडस्ट्रियल प्रॉपर्टी लॉ, लॉ नं. ६.२७६ ऑव १४ मई १९६६

ब्राजील, प्रेजीडेंशियल डिक्री ऑन कमप्लसरी लाइसेंसिंग, डिक्री नं. ३,२०१, ६ अक्टूबर १९६६

कनाडा, रेग्युलेटरी डायरेक्टिव डीआईआर ६४.०८ : असेसमेंट क्राइटीरिया फॉर डिटरमिनिंग एनवायर्नमेंटल सेफ्टी ऑव प्लांट्स विद नॉवल ट्रेट्स कोस्टा रिका, बायोडायवर्सिटी लॉ १९९८

इंडिया, बायोलॉजिकल डायवर्सिटी रूल्स २००३

इंडिया, डिपार्टमेंट ऑव केमिकल्स एंड पैट्रोकेमिकल्स, वार्षिक रिपोर्ट १९९६-२०००

इंडिया, ड्रग (प्राइस कंट्रोल) ऑर्डर १९९५

इंडिया, ज्योग्राफिकल इंडीकेशंस ऑव गुड्स (रजिस्ट्रेशन एंड प्रोटेक्शन) ऐक्ट १९९६, ऐक्ट ४६ ऑव १९९६

इंडिया, इंडियन कार्गिसिल ऑव एग्रीकल्चरल रिसर्च, वार्षिक रिपोर्ट २००२-२००३

इंडिया, ज्वाइंट कमेटी ऑन दि प्रोटेक्शन ऑव प्लांट वेरायटीज एंड फार्मर्स राइट्स बिल १९९६, रिपोर्ट ऑव दि ज्वाइंट कमेटी (२०००)

इंडिया, मिनिस्ट्री ऑव फाइनेंस, इकॉनॉमिक सर्वे २००३-२००४

इंडिया, पार्लियामेंट ऑव इंडिया, दि पेटेंट्स (सेकेंड अमेंडमेंट) बिल १९९६ - रिपोर्ट ऑव दि ज्वाइंट कमेटी, नोट्स ऑव डिसेंट (२००१)

इंडिया, पेटेंट्स ऐक्ट १९७०

इंडिया, पेटेंट्स (अमेंडमेंट) ऐक्ट १९९६, गजेट ऑव इंडिया, २६ मार्च १९९६

इंडिया, प्रोटेक्शन ऑव प्लांट वेरायटीज एंड फार्मर्स राइट्स ऐक्ट २००१

इंडिया, प्रोटेक्शन ऑव प्लांट वेरायटीज एंड फार्मर्स राइट्स रूल्स २००३

इंडिया, रूल्स फॉर दि मैनुफेक्चर, यूज, इम्पोर्ट, एक्सपोर्ट एंड स्टोरेज ऑव हैज़ार्डस माइक्रोऑर्गेनिज्म्स जेनेटिकली इंजीनियर्ड आर्गेनिज्म्स ऑर सैल्स १९८६

इंडिया, ट्रेड मार्क्स ऐक्ट १९९६

कीनिया, सीड्स एंड प्लांट वेरायटीज ऐक्ट, लॉज ऑव कीनिया, चैप्टर ३२६

नॉर्वे, ऐक्ट रिलेटिंग टु दि प्रोडक्शन एंड यूज ऑव जेनेटिकली मॉडिफाइड आर्गेनिज्म्स १९९३

पनामा, ले नं. २० (डेल रेजीमेन स्पेशल दे प्रोपीदाद इंटेलेक्चुअल सोबर लोस देरेचोस कोलेक्तीवोस दे लोस पूएब्लोस इंडीजेनास) २०००

पनामा, मिनिस्तेरियो कोमर्सियो ई इंदस्त्रियास, देक्रेतो एजेक्यूतिवो नं. १२ (पोर ला कुआल से रेग्लामेंटा ला ले नं. २० दे २६ दे जूनियो दे २०००) २००१.

फिलीपींस, एन ऐक्ट टु रेकग्नाइज, प्रोटेक्ट एंड प्रोमोट दि राइट्स ऑव इंजीनियर्स कल्चरल कम्प्युनिटीज / इंजीनियर्स पीपुल्स, स्टब्लिशिंग इम्प्लीमेंटिंग मैकेनिज्म्स, एप्रोप्रिएटिंग फंड्स देयरफॉर, एंड फॉर अदर पर्पजेज, २८ जुलाई १९९७, डॉक एस नं. १७२८ / एच नं. ६१२५

फिलीपींस, एग्जीक्यूटिव ऑर्डर नं. २४७ प्रेस्क्राइबिंग गाइडलाईस एंड स्टब्लिशिंग ए रेग्युलेटरी फ्रेमवर्क फॉर दि प्रॉस्पेक्टिंग ऑव बायोलॉजिकल एंड जेनेटिक रिसोर्सेज, देयर बाई-प्रॉडक्ट्स एंड डेरिवेटिव्स, फॉर साइंटिफिक एंड कमर्शियल पर्पजेज, एंड फॉर अदर पर्पजेज, १८ मई १९९५

पेरू, लॉ इंद्रोड्यूसिंग ए प्रोटेक्शन रेजीम फॉर दि कलेक्टिव नॉलेज ऑव इंजीनियर्स पीपुल्स डिस्टाइव्ड फ्रॉम बायोलॉजिकल रिसोर्सेज, लॉ नं. २७८११, ऑफिशियल जर्नल, १० अगस्त २००२

पुर्तगाल, डिक्री-लॉ नं. ११८ / २००२, २० अप्रैल २००२

साउथ अफ्रीका, मेडीसिंस एंड रिलेटेड सबस्टान्सेज कंट्रोल अमेंडमेंट ऐक्ट १९९७, रिपब्लिक ऑव साउथ अफ्रीका, गवर्नमेंट गजेट, १२ दिसंबर १९९७

साउथ अफ्रीका, नैशनल एनवायर्नमेंटल मैनेजमेंट : बायोडायवर्सिटी ऐक्ट २००४

स्विट्जरलैंड, फेडरल लॉ रिलेटिंग टु नॉन-ह्यूमन जीन टेक्नोलॉजी २००३, रिक्वूअल सिस्टेमाॅटिक ८१४.६१

स्विट्जरलैंड, फेडरल लॉ रिलेटिंग टु प्रोटेक्शन ऑव दि एनवायर्नमेंट, ७ अक्टूबर १९८३, रिक्वूअल सिस्टेमाॅटिक ८१४.०१

स्विट्जरलैंड, लॉई फेडरल स्युर लेस ब्रेवेट्स दे इन्वेंशन, २५ जून १९५४, रिक्वूअल ऑफिसियल देस लॉइस फेडरलेस, १९५५ ८६३



स्विट्जरलैंड, साइंस, एजुकेशन एंड कल्चर कमीशन - काउंसिल ऑव स्टेट्स, ००.००८ ई मोडिफिकेशन दे ला लोई सुर ला प्रोटेक्शन दे ले एनवायनमेंट (एलपीई) (लोई सुर ले जेनी जेनेटीक, एलजीजी), रिपोर्ट ऑव ३० अप्रैल २००१

स्विट्जरलैंड, साइंस, एजुकेशन एंड कल्चर कमीशन - काउंसिल ऑव स्टेट्स (स्विट्जरलैंड), ००.००८ ई प्रॉजेक्ट जेन-लेक्स (ड्राईट दे ला रिस्पॉसिबिलिटे सिविले), रिपोर्ट ऑव २७ अगस्त २००१

थाईलैंड, प्लांट वेराइटीज प्रोटेक्शन ऐक्ट, बीई २५४२ (१९९९)

यूनाइटेड स्टेट्स, फेडरल फूड, ड्रग, एंड कॉस्मेटिक ऐक्ट, पीएल ९८-४१७ (एस १५३८) (१९८४)

यूनाइटेड स्टेट्स, जनरलाइज्ड सिस्टम ऑव प्रेफरेंसेज रिन्यूअल ऐक्ट ऑव १९८४, ९८ स्टेट २९४८ (१९८४)

यूनाइटेड स्टेट्स, ओम्निबस ट्रेड एंड कम्पेटिटिवेनस ऐक्ट ऑव १९८८, पीएल १००-४१८, २३ अगस्त १९८८

यूनाइटेड स्टेट्स, पेटेंट एंड ट्रेडमार्क ऑफिस, यूटिलिटी एग्जामिनेशन गाइडलाइंस, ६६ / ४ फेडरल रजिस्टर १०९२ (२००१)

यूनाइटेड स्टेट्स, प्लांट पेटेंट ऐक्ट ऑव १९३०, ३५ यूएससी १६१ ईटी एसईक्यू

यूनाइटेड स्टेट्स, उरुवे राउंड एग्रीमेंट्स ऐक्ट, पीएल १०३-४६५, ८ दिसंबर १९९४

यूनाइटेड स्टेट्स, ट्रेड रेप्रेजेंटेटिव्ज़, स्पेशल ३०१ रिपोर्ट (२००१-२००४)

वेनेजुएला, ले दे डाइवरसिदाद बायोलॉजिका १९९९

## संकलित संदर्भ

### पुस्तकें

अग्रवाल, बीना, ए फील्ड ऑव वनस ओन - जेंडर एंड लैंड राइट्स इन साउथ एशिया (केम्ब्रिज : केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, १९९४)

बारनम, सूजेन आर बायोटेक्नोलॉजी - एन इंट्रोडक्शन (बेलमॉंट, सीए : वाड्सवर्थ, १९९८)

बलसार, केमाल दि कॉन्सेप्ट ऑव दि कॉमन हैरिटेज ऑव मेनकाइंड इन इंटरनेशनल लॉ (दि हेग : क्लूवर लॉ इंटरनेशनल, १९९८)

बेनेडिक, रिचर्ड इलियट, ओजोन डिप्लोमेसी - न्यू डायरेक्शंस इन सेफगार्डिंग दि प्लैनेट (केम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स : हॉर्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, एनलार्ज्ड एडिशन १९९८)

बर्कस, फीक्रेट सं. कॉमन प्रॉपर्टी रिसोर्सेज - इकोलॉजी एंड कम्युनिटी-बेस्ड सस्टेनेबल डेवलपमेंट (लंदन : बेलहेवन प्रेस, १९८९)

कार्यू, डोमिनीक, ड्राईट इंटरनेशनल (पेरिस : पेडोने, ७वाँ संस्करण २००१)

कारवल्लो, न्यूनो पिरेस दे, दि ट्रिप्स रेजीम ऑव पेटेंट राइट्स (लंदन : क्यल्यूवेर लॉ इंटरनेशनल, २००२)

कासेसे, एन्टोनियो, इंटरनेशनल लॉ इन दि डिवाइडेड वर्ल्ड (ऑक्सफोर्ड : क्लेयरडेन, १९८६)

चर्चिल आर आर एवं एवी लोवे, दि लॉ ऑव दि सी (मैनचेस्टर : मैनचेस्टर युनिवर्सिटी प्रेस, तीसरा संस्करण १९९९)

क्लेवियर, ज्याँ-पीयरे, लेस कटेगरीज दे ला प्रोपियेट इंटेलेक्चुअल अ लैपूर्वे देस क्रिएशंस जेनेटीक्स (पेरिस : एल' हारमडन, १९९८)

कानवे, गोर्डन आर, एवं एडवर्ड बी बारबीयर, आफ्टर दि ग्रीन रेवोल्यूशन - सस्टेनेबल एग्रीकल्चर फॉर डेवलपमेंट (लंदन : अर्थस्कैन, १९९०)

कोर्निश, डब्ल्यू आर, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी : पेटेंट्स, कॉपीराइट्स, ट्रेड मार्क्स, एंड एलाइड राइट्स (लंदन : स्वीट एंड मैक्सवेल, ५वाँ संस्करण २००३)

कॉट, ज्याँ-पीयरे, एवं एलेन पेलेट सं., ला चार्टे देस नेशंस यूनीस - कामंटेयरे आर्टिकल पार आर्टिकल (पेरिस : इकोनोमिका, २रा संस्करण १९९१)

क्रूसिबल ग्रुप, पीपुल, प्लांट्स एंड पेटेंट्स - दि इम्पेक्ट्स ऑव इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी ऑन बायोडायवर्सिटी, कंजर्वेशन, ट्रेड एंड रुरल सोसायटी (ओटावा : इंटरनेशनल डेवलपमेंट रिसर्च सेंटर, १९९४)

- कृसिबल २ गुप, सीडिंग सॉल्यूशंस - वाल्यूम २ (ओटावा : इंटरनैशनल डेवलपमेंट रिसर्च सेंटर, २००१)
- क्यूलेट, फिलिपे, डिफरेंशियल ट्रीटमेंट इन इंटरनैशनल लॉ (एल्डरशॉट : ऐशगाते, २००३)
- ड्यूटफील्ड, ग्राहम, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड दि लाइफ साइकिल इंडस्ट्रीज (एल्डरशॉट : ऐशगाते, २००३)
- ड्यूटफील्ड, ग्राहम, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी, बायोजेनेटिक रिसोर्सेज एंड ट्रेडिशनल नॉलेज (लंदन : अर्थस्कैन, २००४)
- फ्रीडलर, डेविड पी., इंटरनैशनल लॉ एंड इन्फेक्शस डिजीजेज (ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस १९९६)
- गेरवाइस, डेनियल, दि ट्रिप्स एग्रीमेंट - ड्राफ्टिंग हिस्ट्री एंड एनालिसिस (लंदन : स्वीट एंड मैक्सवेल, २००३)
- हन्ना, सूजेन एस, कार्ल फोक एवं कार्ल-गोरान मालेर सं., राइट्स टु नेचर - इकोलॉजिकल, इकॉनॉमिक, कल्चरल एंड पॉलिटिकल प्रिंसिपल्स ऑव इंस्टीट्यूशंस फॉर दि एनवायरनमेंट (वाशिंगटन, डीसी : आइसलैंड प्रेस, १९९६)
- हन्निकाइनेन, लॉरी, पेरेम्प्टरी नॉर्म्स (जूस कोगेन्स) इन इंटरनैशनल लॉ - हिस्टॉरिकल डेवलपमेंट, क्राइटीरिया, प्रेजेंट स्टेटस (हेलसिंकी : फिनिश लॉयर्स पब्लिशिंग, १९८६)
- केट, कैरी टेन, एवं साराह अ लायर्ड, दि कमर्शियल यूज ऑव बायोडायवर्सिटी - एक्सेस टु जेनेटिक रिसोर्सेज एंड बेनीफिट-शेयरिंग (लंदन : अर्थस्कैन, १९९६)
- लेविंस्की, सिल्के वॉन सं., इंडीजिनस हैरीटेज एंड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी - जेनेटिक रिसोर्सेज, ट्रेडिशनल नॉलेज एंड फोकलोर (दि हेग : क्लूवर लॉ इंटरनैशनल, २००४)
- महबूब उल हक, ह्यूमन डेवलपमेंट सेंटर, ह्यूमन डेवलपमेंट इन साउथ एशिया २००२ - एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट (कराची : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, २००३)
- मारिन, पेद्रिशिया लूसिया कांतूआरिया, प्रोवाइडिंग प्रोटेक्शन फॉर प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज - पेटेंट्स, सुई जेनेरिस सिस्टम्स, एंड बायोपार्टनरशिप्स (लंदन : क्लूवर लॉ इंटरनैशनल, २००२)
- मैथ्यूज, डंकन, ग्लोबलाइजिंग इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स - दि ट्रिप्स एग्रीमेंट (लंदन : रटलेज, २००२)
- मे, क्रिस्टोफर, ए ग्लोबल पॉलिटिकल इकॉनॉमी ऑव इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स - दि न्यू एन्क्लोजर्स? (लंदन : रटलेज, २०००)
- नारायण, पी., पेटेंट लॉ (कलकत्ता : ईस्टर्न लॉ हाउस, ३रा संस्करण १९९८)
- नीसन, जे एम, कॉमनर्स - कॉमन राइट्स, एन्क्लोजर्स एंड सोशल चेंज इन इंग्लैंड, १७००-१८२० (केम्ब्रिज : केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, १९९३)
- ओपेनहेम, एल. इंटरनैशनल लॉ - ए ट्रीटाइज (रोनाल्ड एफ रॉक्सबर्ग सं., ३सरा संस्करण खंड १, लंदन : लॉगमेंस, १९२०)
- ऑस्ट्रम, एलिनॉर, गवर्निंग दि कॉमन्स - दि इवॉल्यूशन ऑव इंस्टीट्यूशंस फॉर क्लेक्टिव एक्शन (केम्ब्रिज : केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, १९९०)
- पॉवेलान, जूस्ट, कॉन्फ्लिक्ट ऑव नॉर्म्स इन पब्लिक इंटरनैशनल लॉ - हाउ डब्ल्यूटीओ लॉ रिलेट्स टु अदर रूल्स ऑव इंटरनैशनल लॉ (केम्ब्रिज : केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, २००३)
- राडिन, मार्ग्रेट जेन, कॉन्स्टेड कॉमोडिटीज (केम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स : हॉवर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, १९९६)
- रोस्तोव, डब्ल्यू डब्ल्यू, दि स्टेज ऑव इकॉनॉमिक ग्रोथ - ए नॉन-कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो (केम्ब्रिज : केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, ३सरा संस्करण १९९०)
- श्रिजवेर, नीको, सॉवरेंटी ओवर नेचुरल रिसोर्सेज - बैलेंसिंग राइट्स एंड ड्यूटीज (केम्ब्रिज : केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, १९९७)
- शर्मा, रीता, एवं थॉमस टी पोलेमान, दि न्यू इकॉनॉमिक्स ऑव इंडियाज़ ग्रीन रेवोल्यूशन - इनकम एंड एम्प्लॉयमेंट डिफ्यूजन इन उत्तर प्रदेश (नई दिल्ली : विकास, १९९४)
- शॉ, मैल्कम एन., इंटरनैशनल लॉ (केम्ब्रिज : केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, ५वां संस्करण २००३)
- शिवा, वन्दना, दि वॉयलेंस ऑव दि ग्रीन रेवोल्यूशन (लंदन : जेड, १९९१)
- सिंह, आभा लक्ष्मी, एवं शहाब फजल, एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट, (नई दिल्ली : बी आर पब्लिशिंग, १९९८)
- सिंह, भूपिंदर, एवं नीति माहंती सं., इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड दि ट्राइबल्स (नई दिल्ली : इंटर-इंडिया पब्लिकेशंस, १९९७)

सिंह, गुरुदेव एवं एस आर अशोकन, *सीड रिप्लेसमेंट रेट्स - परफोर्मेंस एंड प्रॉब्लम्स* (नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड एंड आईबीएच, १९९४)

थॉमस, जैफ्री एस, एवं माइकल ए मेयर, *दि न्यू रूल्स ऑव ग्लोबल ट्रेड - ए गाइड टु दि वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइजेशन* (स्कारबोरो, ओएनटी. : कार्सवेल, १९९७)

टोबेस, ब्रिजित सी ए, *दि राइट टु हेल्थ ऐज ए ह्यूमन राइट इन इंटरनेशनल लॉ* (ऑटवर्पेन : इंटरसेन्टिया, १९९९)

वॉग्लर, जॉन, *दि ग्लोबल कॉमर्स - ए रेजीम एनालिसिस* (सिचेस्टर : जॉन विले, १९९५)

वडल, जयश्री, *इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स इन दि डब्ल्यूटीओ एंड डेवलपिंग कंट्रीज* (नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, २००१)

वर्ल्ड कमीशन ऑन एनवायर्नमेंट एंड डेवलपमेंट, *आवर कॉमन फ्यूचर* (ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, १९८७)

## लेख, अध्याय एवं अन्य दस्तावेज

एबट, फ्रेडरिक एम. 'प्रोटेक्टिंग फर्स्ट वर्ल्ड असेट्स इन दि थर्ड वर्ल्ड : इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी निगोसिएशंस इन दि गैट मल्टीलेटरल फ्रेमवर्क', २२ *वेंड जर्नल ऑव ट्रांसनेशनल एल* ६८६ (१९८६)

एबट, फ्रेडरिक एम. 'फर्स्ट रिपोर्ट (फाइनल) टु दि कमेटी ऑन इंटरनेशनल ट्रेड लॉ ऑव दि इंटरनेशनल लॉ एसोसिएशन ऑन दि सब्जेक्ट ऑव पैरेलल इम्पोर्टेशन', १ *जर्नल ऑव इंटरनेशनल इकोन एल* ६०७ (१९९८)

एबट, फ्रेडरिक एम. 'दि ट्रिप्स एग्रीमेंट, एक्सेस टु मेडिसिंस, एंड दि डब्ल्यूटीओ दोहा मिनिस्टीरियल कॉन्फ्रेंस', ५ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रोप १५* (२००२)

एडेलमेन, मार्टिन जे, एवं सोनिया बालदिया, 'प्रोस्पेक्ट्स एंड लिमिट्स ऑव दि पेटेंट प्रॉविजन इन दि ट्रिप्स एग्रीमेंट : दि केस ऑव इंडिया', २९ *वांड जर्नल ऑव ट्रांसनेशनल एल* ५०७ (१९९६)

अग्रवाल, बीना, जेंडर, एनवायर्नमेंट एंड पॉवर्टी इंटरलिंक्स इन रूरल इंडिया (जिनेवा : यूएनआरआईएसडी, १९९५)

अग्रवाल, प्रदीप, एवं पी साईबाबा, 'ट्रिप्स एंड इंडियाज़ फार्मास्यूटिकल इंडस्ट्री' ३६ *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* ३७८७ (२००१)

अग्रवाल, प्रमोद के, 'सीड इंडस्ट्री रेग्यूलेशंस इन रिलेशन टु सीड इंडस्ट्री डेवलपमेंट इन इंडिया', डेविड गिसेलग्यूस्ट एवं जितेंद्र श्रीवास्तव सं. *ईज़िंग बैरियर्स टु मूलवमेंट ऑव प्लांट वैराइटीज फॉर एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट में*, १०३ (वाशिंगटन, डीसी : वर्ल्ड बैंक, १९९७)

एग्रीकल्चर एंड एनवायर्नमेंट बायोटेक्नोलॉजी कमीशन, *जेनेटीकली मॉडिफाइड क्रॉप्स - कोएग्जिस्टेंस एंड लायबिलिटी* (लंदन : बायोटेक्नोलॉजी कमीशन, २००३)

आल्टमेन, डेविड डब्ल्यू, 'इश्यूज एंड प्रॉब्लम्स इन दि ट्रांसफर ऑव बायोटेक्नोलॉजी', इन डेविड आल्टमेन एंड काजुओ एन वाटानाबे सं. *प्लांट बायोटेक्नोलॉजी ट्रांसफर टु डेवलपिंग कंट्रीज* २१ (ऑस्टिन, टेक्सास : आरजी लैंडिस, १९९५)

अनुराधा, आर वी, शेयरिंग विद दि कानिस - ए केस स्टडी फ्रॉम केरला, इंडिया (मॉट्रियाल : कन्वेंशन ऑन बायोडायवर्सिटी, १९९८)

आओकी, कीथ, 'नियोकॉलोनियलिज्म, एंटीकॉमन्स प्रॉपर्टी, एंड बायोपायरेसी इन दि (नॉट-सो-ब्रेव) न्यू वर्ल्ड ऑर्डर ऑव इंटरनेशनल इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी प्रोटेक्शन', *इंड जर्नल ऑव ग्लोबल लीगल स्टडीज़* ११ (१९९८)

अरूप, क्रिस्टोफर, 'ट्रिप्स : अक्रॉस दि ग्लोबल फील्ड ऑव इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी', २६ / १ *युरोपियन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी रिवीजन* ७ (२००४)

अत्तारन, अमीर, 'हाऊ डू पेटेंट्स एंड इकॉनॉमिक पॉलिसीज़ अफेक्ट एक्सेस टु एसेशियल मेडिसिंस इन डेवलपिंग कंट्रीज?' २३ / ३ *हेल्थ अफेयर्स* १५५ (२००४)

अय्यंगर, जस्टिस एन राजगोपाला, रिपोर्ट ऑन दि रिवीजन ऑव दि पेटेंट्स लॉ (सितंबर १९५६)

आज़मी, इदा मदीहा, एवं रुकैया अलवी, 'ट्रिप्स, पेटेंट्स, टेक्नोलॉजी ट्रांसफर, फॉरिन डायरेक्ट इनवेस्टमेंट एंड दि फार्मास्यूटिकल इंडस्ट्री इन मलेशिया', ४ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ६४८ (२००१)

बालासुब्रमण्यम, कुमारीया, 'एक्सेस टु मेडिसिंस - पेटेंट्स, प्राइसेज एंड पब्लिक पॉलिसी - कंज्यूमर पर्स्पेक्टिवज़', पीटर दारहोस एवं रूथ मायने संपादित *ग्लोबल इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स - नॉलेज, एक्सेस एंड डेवलपमेंट* ६० (बासिंगस्टोक : पालग्रेव मैकमिलन, २००२) में।

बालगणेश, श्यामकृष्ण, 'सिस्टम्स ऑव प्रोटेक्शन फॉर ज्योग्राफिकल इंडीकेशंस ऑव ओरिजिन - अ रिब्यू ऑव दि इंडियन रेग्यूलेटरी फ्रेमवर्क', ६ / १ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* १९१ (२००३)

बैरॉन, नेडाइन, एवं ऐड कॉर्जेस, 'इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड प्लांट वेराइटी प्रोटेक्शन इन साउथ अफ्रीका : एन इंटरनैशनल परस्पेक्टिव', १६ / १ जे एनवितल एल १६ २००४)

बार्श, रसेल लॉरेंस, 'अ स्पेशल सीजन ऑव दि यूएन जनरल असेंबली रीथिंक्स दि इकॉनॉमिक राइट्स एंड इयूटीज ऑव स्टेट्स', ८५ एम जे इंटेलेक्चुअल एल १६२ (१९९१)

बार्टन, जॉन एच, 'दि बायोडायवर्सिटी कन्वेंशन एंड दि फ्लो ऑव साइंटिफिक इन्फॉर्मेशन' के ई हॉगलैंड, एवं ए वाई रॉसमेन संपादित ग्लोबल जेनेटिक रिसोर्सेज : एक्सेस, ओनरशिप एंड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स ५१ (वाशिंगटन, डीसी : एसोसिएशन ऑव सिस्टमेटिक कलेक्शंस (१९९७) में।

बार्टन, जॉन एच, 'इंटरनैशनल इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एंड जेनेटिक रिसोर्सेज इश्यूज अफेक्टिंग एग्रीकल्चरल जेनेटिक इंजीनियरिंग', सी एल इक्स एवं बी एम बेडफोर्ड संपादित एग्रीकल्चरल जेनेटिक इंजीनियरिंग इन इंटरनैशनल डेवलपमेंट्स २७३ (वालिंगफोर्ड : सीएबीआई, १९९८) में।

बार्टन, जॉन एच, डिफरेंशिएटेड प्राइसिंग ऑव पेटेंटेड प्रॉडक्ट्स (सीएमएच वर्किंग पेपर सीरीज पेपर नं. डब्ल्यूजी ४:२, २००१)

बार्टन, जॉन एच, न्यूट्रीशन एंड टेक्नोलॉजी ट्रांसफर पॉलिसीज (जिनेवा : यूएनसीटीएडी / आईसीटीएसडी, ड्राफ्ट पेपर, २००३)

बार्टन, जॉन एच, 'इश्यूज पोन्ड बाई ए वर्ल्ड पेटेंट सिस्टम', ७ / २ जर्नल ऑव इंटरनैशनल इकोन एल ३४१ (२००४)

बार्टन, जॉन एच, एवं पीटर बर्गर, 'पेटेंटिंग एग्रीकल्चर', इश्यूज इन साइंस एंड टेक्नोलॉजी ऑनलाइन (ग्रीष्म २००१, [http://www.nap.edu/issues/17.4/p\\_barton.htm](http://www.nap.edu/issues/17.4/p_barton.htm) पर उपलब्ध)

बीसीआईएल / एमओईएफ / डीबीटी, बायोसेफ्टी इश्यूज रिलेटेड टु जेनेटिकली मॉडिफाइड ऑर्गेनिज्म्स (नई दिल्ली : बायोटेक कंसोर्टियम इंडिया, २००२)

बेकरमेन-रोडायू, एंड्रयू, 'पेटेंट लॉ - बैलेंसिंग प्रॉफिट मैक्सिमाइजेशन एंड पब्लिक एक्सेस टु टेक्नोलॉजी', ४ कॉलम साइंस एंड टेक्नोलॉजी एल रिव्यू १ (२००२)

बेल, जैनेट, एंड माइकल पिंबर्ट, 'इंट्रोडक्शन', मिगेस बाऊमन एवं अन्य सं. दि लाइफ इंडस्ट्री - बायोडायवर्सिटी, पीपुल एंड प्रॉफिट्स १ (लंदन : इंटरमीडिएट टेक्नोलॉजी पब्लिकेशंस, १९९६) में।

भूटानी, शालिनी, 'पेटेंट्स ऑन प्लांट्स - प्रोटेक्शन ऑर प्राइवेटाइजेशन', दि हिन्दू सर्वे ऑव दि एनवायर्नमेंट ८५ (२००४)

ब्लेकनी, माइकेल, 'इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी आस्पेक्ट्स ऑव ट्रेडिशनल नॉलेज', पीटर दराहोस एवं माइकल ब्लेकनी संपादित आईपी इन बायोडायवर्सिटी एंड एग्रीकल्चर - रेग्युलेटिंग दि बायोस्फीयर २६ (लंदन : स्वीट एंड मैक्सवेल, २००१) में।

ब्लेकनी, माइकेल, ज्योग्राफिकल इंडिकेशंस एंड ट्रिप्स (जिनेवा : क्वेकर यूनाइटेड नेशंस ऑफिस, ओकेजनल पेपर नं. ८, २००१)

ब्लेकनी, माइकेल, 'एग्रीकल्चरल रिसर्च : इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एंड दि सीजीआईएआर सिस्टम', पीटर दराहोस एवं रूथ मायने संपादित ग्लोबल इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स - नॉलेज, एक्सेस एंड डेवलपमेंट १०८ (बासिंगस्टोके : पालग्रेव मैकमिलन, २००२) में।

बोडेकर, जेराई, 'ट्रेडिशनल मेडिकल नॉलेज, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड बेनीफिट शेयरिंग', ११ कारडोजो जर्नल ऑव इंटेलेक्चुअल एंड कोम्प एल ७८५ (२००३)

बॉंड, पेट्रिक, 'ग्लोबलाइजेशन, फार्मास्युटिकल प्राइसिंग एंड साउथ अफ्रीकन हेल्थ पॉलिसी - मैनेजिंग कन्फ्रंटेशन विद यूएस फर्म्स एंड पॉलिटिशियंस', २६ / ४ इंटेलेक्चुअल जर्नल ऑव हेल्थ सर्विसेज (१९९९)

बॉयले, जेम्स, 'दि सेकेंड एनक्लोजर मूवमेंट एंड दि कंस्ट्रक्शन ऑव दि पब्लिक डोमेन', ६६-एसपीजी लॉ एंड कंटेम्प प्रॉब्लम्स ३३ (२००३)

ब्रेगडन, सूजेन, 'रीसेंट इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स कंट्रोवर्सीज एंड इश्यूज एट दि सीजीआईएआर', वी सेंटानिएलो एवं अन्य संपादित एग्रीकल्चर एंड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स - इकॉनॉमिक, इंस्टीट्यूशनल एंड इम्प्लिमेंटेशन इश्यूज इन बायोटेक्नोलॉजी ७७ (वालिंगफोर्ड, सीएबीआई, २०००) में।

ब्राह्मी, प्रतिभा, संजीव सक्सेना एवं बी एस ढिल्लों, 'दि प्रोटेक्शन ऑव प्लांट वेराइटीज एंड फार्मर्स राइट्स ऐक्ट ऑव इंडिया', ८६ / ३ करंट साइंस ३६२ (२००४)

ब्रांस्टेटर, ली जी., 'डू स्ट्रॉंगर पेटेंट्स इनड्यूस मोर लोकल इन्वोवेशन?', ७ / २ जर्नल ऑव इंटरनैशनल इकोनॉमी एल ३५९ (२००४)

ब्रॉमले, डेनियल डब्ल्यू., एवं माइकल एम सर्निया, दि मैनेजमेंट ऑव कॉमन प्रॉपर्टी नेचुरल रिसोर्सेज - सम कॉस्पेक्चुअल एंड ऑपरेशनल फेलेसीज (वाशिंगटन, डीसी : वर्ल्ड बैंक, १९८९)

बर्क, मारिया, जेनेटिकली मॉडिफाइड क्रॉप्स - इफेक्ट्स ऑन फार्मलैंड वाइल्डलाइफ (लंदन : फार्मस्केल इवैल्यूएशंस रिसर्च टीम एवं दि साइंटिफिक स्टीयरिंग कमेटी, २००३)

बर्नेट-हॉल, रिचर्ड, 'लायबिलिटी फॉर डैमेज कॉज़्ड बाई जेनेटिकली मॉडीफाइड ऑर्गेनिज्म : दि एक्साइटिंग लॉ'; एग्रीकल्चर एंड एनवायर्नमेंट बायोटेक्नोलॉजी कमीशन, *जेनेटिकली माडिफाइड क्रोप्स - काएक्सीटेंस एंड लायबिलिटी में परिशिष्ट डी पर* (लंदन : बायोटेक्नोलॉजी कमीशन, २००३)

बुश, नाथन ए, 'जैक एंड दि बीन्सटॉक : प्रॉपर्टी राइट्स इन जेनेटिकली मॉडीफाइड प्लांट्स', ३ *मिन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी रिव्यू* १ (२००२)

बायर्ली, डेरेक, एवं केन फिशर, 'एक्सेसिंग मॉडर्न साइंस : पॉलिसी एंड इंस्टीट्यूशनल आफ्शंस फॉर एग्रीकल्चरल जेनेटिक इंजीनियरिंग इन डेवलपिंग कंट्रीज', ३० *वर्ल्ड डेवलपमेंट* ६३१ (२००२)

कायनेजेम, विलियम वान, 'दि पब्लिक डोमेन : साइंटिया नलियस', २४(६) *यूरोपियन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी रिव्यू* ३२४ (२००२)

कायनेजेम, विलियम वान, 'रजिस्टर्ड ज्योग्राफिकल इंडिकेशंस : बिटवीन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एंड रूरल पॉलिसी - पार्ट १', ६ / ५ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ६६६ (२००३)

कालाब्रेसी, गाइडो, एवं ए. डगलस मेलामेड, 'प्रॉपर्टी रूल्स, लायबिलिटी रूल्स, एंड इनएलियेनेबिलिटी : वन च्यू ऑव दि कैथेड्रल', ८५ *हार्वर्ड एल रिव्यू* १०८६ (१९७२)

कारवाल्हो, न्यूनो पिरस दे, 'रिक्वायरिंग डिस्कलोजर ऑव दि ओरिजिन ऑव जेनेटिक रिसोर्सेज एंड प्रायर इन्फॉर्मड कन्सेंट इन पेटेंट एप्लीकेशंस विदाउट इनफ्रिजिंग दि ट्रिप्स अरेंजमेंट : दि प्रॉब्लम एंड दि सॉल्यूशन', २ *वाश यू जेएल एंड पॉलिसी* ३७१ (२०००)

कारवाल्हो, न्यूनो पिरस दे, फ्रॉम दि शमांस हट टु दि पेटेंट ऑफिस - इन सर्व ऑव इफेक्टिव प्रोटेक्शन फॉर ट्रेडिशनल नॉलेज (२००३), <http://law.wustl.edu/centeris/Confpapers/PDFWrdDoc/Fromshaman2.pdf> पर उपलब्ध।

चेम्बर्स, डब्ल्यू ब्रेडनी, 'डब्ल्यूएसएसडी एंड एन इंटरनेशनल रेजीम ऑन एक्सेस एंड बेनीफिट शेयरिंग - इज ए प्रोटोकॉल दि एप्रोप्रिएट लीगल इंस्ट्रूमेंट?', १२ / ३ *रिव्यू यूरोपियन कम्युनिटी एंड इंटेलेक्चुअल एनवायर्नमेंटल एल* ३१० (२००३)।

चतुर्वेदी, सचिन, 'एग्रीकल्चरल जेनेटिक इंजीनियरिंग एंड न्यू ट्रेड्स इन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स रेजीम - चैलेंजिज बिफोर डेवलपिंग कंट्रीज', ३७ *इकॉनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली* १२१२ (२००२)

चौधरी, शेखर, 'दि इवोल्यूशन ऑव दि इंडियन फार्मास्यूटिकल इंडस्ट्री', ग्रेग फेल्कर एवं अन्य *दि फार्मास्यूटिकल इंडस्ट्री इन इंडिया एंड हंगरी - पॉलिसीज, इंस्टीट्यूशंस, एंड टेक्नोलॉजिकल डेवलपमेंट्स* ६ (वाशिंगटन, डीसी : वर्ल्ड बैंक, १९९७)

चौधरी, सुदीप, 'ट्रिप्स एग्रीमेंट एंड अमेंडमेंट ऑव पेटेंट्स ऐक्ट इन इंडिया', ३७ / ३२ *इकॉनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली* ३३५४ (२००२)

चेरेंस्की, स्टीवन, 'ए पेनी फॉर देयर थॉट्स : एम्प्लॉयी-इन्वेंटर्स, प्रिवेंशन असाइनमेंट एग्रीमेंट्स, प्रॉपर्टी, एंड पर्सनहुड', ८१ *काल एल रिव्यू* ५६७ (१९९३)

चोपड़ा, वी एल, 'गुड कॉम्पिटेस बेस', *दि हिंदू सर्वे ऑव दि एग्रीकल्चर* १८१ (२००४)

कोहेन जी एवं सी एस पॉटर, 'कन्जर्वेशन ऑव बायोडायवर्सिटी इन नेचुरल हेबिटेट्स एंड दि कॉनसेप्ट ऑव जेनेटिक पोर्टेशियल', क्रिस्टोफर एस पॉटर एवं अन्य *संपादित परस्पेक्टिवज ऑन बायोडायवर्सिटी : केस स्टडीज ऑव जेनेटिक रिसोर्सेज कनजर्वेशन एंड डेवलपमेंट* १५ (वाविशंगटन, डीसी : एएएएस, १९९३)

कमीशन ऑन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स, इंटीग्रेटिंग इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड डेवलपमेंट पॉलिसी (लंदन : सीआईपीआर, २००२)

कोरिया, कालॉस एम, 'दि एक्सेस रेजीम एंड दि इम्प्लीमेंटेशन ऑव दि एफएओ इंटरनेशनल ट्रीटी ऑन प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज फॉर फूड एंड एग्रीकल्चर इन दि एन्डियन ग्रुप कंट्रीज', ६ / ३ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ७६५ (२००३)

कोटियर, थॉमस, 'इम्प्लीकेशंस फॉर ट्रेड लॉ एंड पॉलिसी : टुवर्ड्स कनवर्जेस एंड इंटीग्रेशन', क्रिस्टोफ बेल, रॉबर्ट फाकरन एवं हेलेन मरकर्ड *संपादित दि कार्टाजेना प्रोटोकॉल ऑन बायोसेफ्टी - रिफॉन्सादलिंग ट्रेड इन बायोटेक्नोलॉजी विद एनवायर्नमेंट एंड डेवलपमेंट?* ४६७ (लंदन : अर्थस्कैन, २००२)

कोटियर, थॉमस एवं मेरीऑन पानीजोन, 'लीगल परस्पेक्टिवज ऑन ट्रेडिशनल नॉलेज : दि केस फॉर इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी प्रोटेक्शन', ७ / २ *जर्नल ऑव इंटरनेशनल इकोन एल* ३७१-३६६ (२००४)

कोटियर, थॉमस एवं अन्य, 'इंटरनेशनल ट्रेड रेग्यूलेशंस फॉर प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज एंड रिलेटेड प्रॉडक्ट्स', एस बिबेर-क्लेम एवं टी कोटियर *संपादित राइट्स टु प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज एंड ट्रेडिशनल नॉलेज : बेसिक इश्यूज एंड परस्पेक्टिवज* (वालिंगफोर्ड : सीएबीआई, प्रकाशनाधीन २००५) में।

दामोदरन, ए, 'इकॉनॉमिक्स एंड पॉलिसी इम्प्लीकेशंस ऑव नेशनल बायोडायवर्सिटी लेजिस्लेशन', ३८ / ४६, *इकॉनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली* ५२०१ (२००३)

दामोदरन, ए, 'एग्रीकल्चरल बायोटेक्नोलॉजी सेक्टर इन इंडिया : इश्यूज इम्पेक्टिंग इनोवेशंस', ६ / २ *एशियन बायोटेक्नोलॉजी एंड डेवलपमेंट रिव्यू* ४१ (२००४)



डैनजून, पी, डिफरेंशियल प्राइसिंग फॉर फार्मास्यूटिकल : रिकॉन्साइलिंग एक्सेस, आर एंड डी, एंड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी (सीएमएच वर्किंग पेपर सीरीज, पेपर नं. डब्ल्यूजी २ : १०, २००१)

ड्यूटशे गेसेलशाफ्ट फुर टेक्नीशचे जुसानामारबिट, प्राइवेटाइजेशन ऑव दि सीड इंडस्ट्री इन दि वेस्ट एशिया एंड नॉर्थ अफ्रीकन रीजन (१९९७)

धालीवाल, जी एस, एवं वी के दिलावरी, 'इम्पेक्ट ऑव ग्रीन रेवोल्यूशन ऑन एनवायर्नमेंट', बी एस हंसारा एवं ए एन शुक्ला संपादित *सोशल इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल इम्प्लीकेशंस ऑव ग्रीन रेवोल्यूशन इन इंडिया* (नई दिल्ली : क्लासिकल पब्लिशिंग, १९९१) में।

धर, विश्वजीत, एवं सचिन चतुर्वेदी, 'इंद्रोड्यूसिंग प्लांट ब्रीडर्स राइट्स इन इंडिया - ए क्रिटिकल इवोल्यूशन ऑव दि प्रोपोज्ड लेजिस्लेशन', १ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* २४५ (१९९८)

धर, विश्वजीत, एवं आर वी अनुराधा, 'एक्सेस, बेनीफिट-शेयरिंग एंड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स', ७ / ५ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ५९७ (२००४)

धवन, राजीव एवं अन्य, 'पावर विदाउट रिस्पॉसिबिलिटी ऑन आस्पेक्ट्स ऑव दि इंडियन पेटेंट्स लेजिस्लेशन', ३३ *जर्नल ऑव इंडियन एल इंस्टीट्यूट* १ (१९९१)

धवन, राजीव एवं माया प्रभु, 'पेटेंट मोनोपॉलीज एंड फ्री ट्रेड : बेसिक कॉन्ट्राडिक्शन इन डंकल ड्राफ्ट', ३७ *जर्नल ऑव इंडियन एल इंस्टीट्यूट* १९४ (१९९५)

डायज-बोनिता यूजेनियो एवं शर्मन रॉबिन्सन 'जेनेटिक इंजीनियरिंग, ट्रेड एंड हंगर', फिलिप जी पारडे एवं बोनवू कू संपादित *जेनेटिक इंजीनियरिंग एंड जेनेटिक रिसोर्स पॉलिसीज* (वाशिंगटन, डीसी : आईएफपीआरआई, २००३) में।

डिएज़, एम सी एफ, 'दि इम्पेक्ट ऑव प्लांट वेराइटीज राइट्स ऑन रिसर्च - दि केस ऑव स्पेन', २७ *फूड पॉलिसी* १७१ (२००२)

दिनवूडी, ग्रीम बी, एवं रोशेले कूपर ड्रेफस, 'इंटरनेशनल इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी लॉ एंड दि पब्लिक डोमेन ऑव साइंस', ७ / २ *जर्नल ऑव इंटरनेशनल इकॉनॉमी एल* ४३१ (२००४)

डिओफ, जेक्स, 'वेनक्रे ला फेम', ५७९ *ले मॉडे डिपलोमेटीक* २३ (२००२)

डाउनेस, डेविड आर, 'हाऊ इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी कुड बी ए टूल टु प्रोटेक्ट ट्रेडीशनल नॉलेज', २५ *कॉलम जे एनवितेल एल* २५३ (२०००)

द्राहोस, पीटर, बाइलेटरलिज्म इन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी (पेपर प्रीपयर्ड फॉर ऑक्सफेम जीबी, २००१)

द्राहोस, पीटर, 'नेगोसिएटिंग इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स : बिटवीन कोअर्शियन एंड डायलॉग', पीटर द्राहोस एवं रूथ मायने संपादित *ग्लोबल इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स - नॉलेज, एक्सेस एंड डेवलपमेंट* १६१ (बेसिंगस्टोक : पालग्रेव मैकमिलन, २००२) में।

द्राहोस, पीटर, 'दि रेग्यूलेशन ऑव पब्लिक गुड्स', ७ / २ *जर्नल ऑव इंटेलेक्चुअल एल* ३२१ (२००४)

द्राहोस, पीटर, हू ऑन्स दि नॉलेज इकॉनॉमी? - पॉलिटिकल ऑर्गेनाइजिंग बिहाइंड ट्रिप्स (स्टरमिन्स्टर न्यूटन : दि कॉर्नर हाउस, ब्रीफिंग ३२, २००४)

दुमोलिन, जेरोमे, 'लेस ब्रेवेट्स एट ले प्रिक्स देस मेदिकामेन्तेस', *रेव्यू इंटरनेशनेल दे द्राइत इकॉनॉमिक* ४५ (२००१)

डटफील्ड, ग्राहम, 'ट्रिप्स-रिलेटेड आस्पेक्ट्स ऑव ट्रेडिशनल नॉलेज', ३३ *केस डब्ल्यू रेस जे इंटेलेक्चुअल एल* २३३ (२००१)

अर्लिच, पॉल आर एवं एने एच अर्लिच, 'दि वैल्यू ऑव बायोडायवर्सिटी', २१ *एम्बियो* २१९ (१९९२)

एसक्विनास-अलकाज़ार, जोज़, 'दि रीएलाइजेशन ऑव फार्मर्स राइट्स', एम एस स्वामीनाथन संपादित *एग्रोबायोडायवर्सिटी एंड फार्मर्स राइट्स* २ नई दिल्ली : कोनार्क, (१९९६) में।

ईटीसी ग्रुप, फ्रॉम ग्लोबल एन्क्लोजर टु सेल्फ एन्क्लोजर : टेन ईयर्स आफ्टर - ए क्रिटिक ऑव दि सीबीडी एंड दि 'बॉन गाइडलाइंस' ऑन एक्सेस एंड बेनीफिट शेयरिंग (ईटीसी ग्रुप, कम्प्यूनीक रु८३, २००४)

फाल्कन, डब्ल्यू पी एवं सी फाउलर, 'कार्विंग अप दि कॉमंस - इमर्जेंस ऑव न्यू इंटरनेशनल रेजीम फॉर जर्मप्लाज़्म डेवलपमेंट एंड ट्रांसफर', २७ *फूड पॉलिसी* १९७ (२००२)

फाये, डेविड जे, 'बायोप्रॉस्पेक्टिंग, जेनेटिंग पेटेंटिंग एंड इंडीजिनस पॉपुलेशंस - चैलेंजेज़ अंडर ए रीस्ट्रक्चर्ड इन्फॉर्मेशन कॉमंस' ७ / ३ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ४०१ (२००४)

फायेत्ते, लुई दे ला, 'यूनाइटेड स्टेट्स - इम्पोर्ट प्रॉहिबिशन ऑव सरटेन थ्रिम्प एंड थ्रिम्प प्रॉडक्ट्स - रिकोर्स टु आर्टिकल २१.५ ऑव दि डीएसयू बाई मलेशिया', ६६ *एम जे इंटरनेशनल एल* ६५ (२००२)

फ़ॉर्स्टर, मैलकम, एवं डेनियल लॉरेंस, 'दि कार्टाजिना प्रोटोकॉल : मूक्स टुवर्ड्स स्टब्लिशिंग एन इंटरनैशनल लायबिलिटी रिजीम फॉर लिविंग मॉडिफाइड ऑर्गेनिज्म्स', १५ एनवेट एल एंड मैनेजमेंट ५ (२००३)

फाउलर, कैरी, 'प्रोटेक्टिंग फार्मर इनोवेशन : दि सीबीडी एंड दि क्वेश्चन ऑव ओरिजिन्स', *जूरिस्मेट्रिक्स : दि एबीए'ज़ जर्नल ऑव लॉ, साइंस एंड टेक्नोलॉजी* ४८६ (२००१)

फाउलर, कैरी, 'अनईक्वल एक्सचेंज? रीसेंट ट्रान्सफर्स ऑव एग्रीकल्चरल रिसोर्सेज एंड देयर इम्प्लीकेशंस फॉर डेवलपिंग कंट्रीज', १६ *देव पॉलिसी रिव्यू* १८१ (२००१)

फाउलर, कैरी, 'शेयरींग एग्रीकल्चर्स जेनेटिक बाउंडरी', २६७ / ५५६७ *साइंस* १५७ (२००२)

फाउलर, कैरी, एवं अन्य, 'दि क्वेश्चन ऑव डेरिवेटिव्ज़ - प्रोमोटिंग यूज़ एंड एन्शोरिंग अवेलेबिलिटी ऑव नॉन-प्रॉपराइटरी प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज', ७ / ५ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ६४१ (२००४)

फ्रेंच, डंकन, 'डेवलपिंग स्टेट्स एंड इंटरनैशनल एनवायर्नमेंटल लॉ : दि इम्पोर्टेंस ऑव डिफ्रेंशिएटेड रिस्पॉसिबिलिटी', ४६ *इंटरनैशनल एंड काम्य एलक्यू* ३५ (२०००)

फ्रीस-हानसेन, एस्वरन, दि सोशियो-इकॉनॉमिक डायनेमिक ऑव फार्मर्स मैनेजमेंट ऑव लोकल प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज (कोपेनहेगन : सेंटर फॉर डेवलपमेंट रिसर्च, १९९६)

गाडगिल, माधव एवं अन्य, 'पीपुल्स बायोडायवर्सिटी रजिस्टर', *एमरूथ* २ (अक्टूबर १९९६)

घनोटाकिस, एलीना, 'हाऊ दि यूएस इंटरप्रिटेसन ऑव फ्लेक्सिबिलिटीज़ इनहेरेंट इन ट्रिप्स अफेक्ट्स एक्सेस टु मेडिसिंस फॉर डेवलपिंग कंट्रीज', ७ / ४ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ५६३ (२००४)

ग्लेन, जेन मैथ्यूज, 'फुटलूज : सिविल रिस्पॉसिबिलिटी फॉर जीएमओ जीन वांडरिंग इन कनाडा', ४३ *वाशबर्न एल जे* ५४७ (२००४)

गोपाकुमार, के एम, 'दि डब्ल्यूटीओ डील ऑन चीप इम्स - ए क्रिटीक' ७ / १ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ६६ (२००४)

गोपालकृष्णनन, एन एस, 'इम्पेक्ट ऑव पेटेंट सिस्टम ऑन ट्रेडिशनल नॉलेज', २२ *कोचीन यू एल रिव्यू* २१६ (१९९८)

गोपालकृष्णनन, एनएस, 'प्रोटेक्शन ऑव ट्रेडिशनल नॉलेज - दि नीड फॉर ए सूई जेनेरिस लॉ इन इंडिया', ५ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ७२५ (२००२)

ग्रेन एवं कल्पवृक्ष, ट्रेडिशनल नॉलेज ऑव बायोडायवर्सिटी इन एशिया-पेसिफिक : प्रॉब्लम्स ऑव पायरेसी एंड प्रोटेक्शन (नई दिल्ली : ग्रेन, २००२)

ग्रीनलैंड, डी जे, 'इंटरनैशनल एग्रीकल्चरल रिसर्च एंड दि सीजीआईएआर सिस्टम - पास्ट, प्रेजेंट एंड फ्यूचर', ६ / ४ *जर्नल ऑव इंटेलेक्चुअल डेवलपमेंट* ४५६ (१९९७)

गुलाटी, अशोक, 'ट्रेड लिबरलाइजेशन एंड फूड सिक्योरिटी', अनवरुल होदा संपादित *डब्ल्यूटीओ एग्रीमेंट एंड इंडियन एग्रीकल्चर* ३५ (नई दिल्ली : सोशल साइंस प्रेस, २००२) में।

हेमिल्टन, नील डी, 'लीगल इश्यूज शोपिंग सोसायटीज एक्सेप्टेंस ऑव बायोटेक्नोलॉजी एंड जेनेटिकली मॉडिफाइड ऑर्गेनिज्म्स', ६ *ड्रेक जर्नल ऑव एग्रीकल्चर एल* ८१ (२००१)

हार्डिन, गैरेट, 'दि ट्रेजडी ऑव दि कॉमंस', गैरेट हार्डिन एवं जॉन बाडेन संपादित *मैनेजिंग दि कॉमंस* १६ (सान फ्रांसिस्को : डब्ल्यूएच फ्रीमेन, १९७७) में।

हीथ, क्रिस्टोफर एवं सबीने विडलिच, 'इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी - सूटेबल फॉर प्रोटेक्टिंग ट्रेडिशनल मेडिसिन?', *इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी क्यू* ६६ (२००३ / १)

हेलफेर, लॉरेंस आर, 'ह्यूमन राइट्स एंड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी : कॉन्फ्लिक्ट ऑर को-एग्जिस्टेंस?', २२ / २ *नीदरलैंड्स क्यू ह्यूमन राइट्स* १६७ (२००४)

हाउसे, रॉबर्ट, 'बैंक टु कोर्ट आफ्टर थ्रिम्प / टर्टल? ऑलमोस्ट बट नॉट क्वाइट येत : इंडियाज़ शॉर्ट लिब्ड चैलेंज टु लेबर एंड एनवायर्नमेंटल एक्सेप्शंस इन दि यूरोपियन यूनियन्स जनरलाइज्ड सिस्टम ऑव प्रेफरेंसेज', १८ *एम यू इंटेलेक्चुअल एल रिव्यू* १३३३ (२००३)

ह्यूज, जस्टिन, 'दि फिलॉसफी ऑव इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी', ७७ *ज्योग्राफी एलजे* २८७ (१९८८)

हफ्ट, माइकेल जे, 'इंडीजिनस पीपुल्स एंड इग डिस्कवरी रिसर्च - ए क्वेश्चन ऑव इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स', ८६ *नॉर्थवेस्टर्न यूएल रिव्यू* १६७८ (१९९५)

आइज़ेक, ग्रांट, एवं विलियम ए केर, 'बायोप्रॉस्पेक्टिंग ऑर बायोपायरेसी? - इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एंड ट्रेडिशनल नॉलेज इन बायोटेक्नोलॉजी इनोवेशन', ७ / १ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ३५ (२००४)

इस्लाम, एम रफीकुल, 'दि जेनेरिक ड्रग डील ऑव दि डब्ल्यूटीओ फ्रॉम दोहा टु कैंकून - ए पेरीफेरल रिस्पॉस टु पेरेनियल कॉन्न्ड्रम', ७ / ५ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ६७५ (२००४)

अय्यर, वी आर कृष्णा, पीपुल्स कमीशन ऑन गैट ऑन दि कॉन्स्टिट्यूशनल इम्प्लीकेशंस ऑव दि फाइनेल ऐक्ट एमबॉडींग दि रिजल्ट्स ऑव दि उरुग्वे राउंड ऑव मल्टीलेटरल ट्रेड निगोसिएशंस (नई दिल्ली : सेंटर फॉर स्टडी ऑव ग्लोबल ट्रेड सिस्टम्स एंड डेवलपमेंट, १९९६)

जैक्सन, लॉरा एल, 'एग्रीकल्चरल इंडस्ट्रियलाइजेशन एंड दि लॉस ऑव बायोडायवर्सिटी', लक्ष्मण डी गुरुस्वामी एवं जैफ्री ए मैकनील संपादित *प्रोटेक्शन ऑव ग्लोबल डायवर्सिटी : कनवर्जिंग स्ट्रेटेजीज* ६६ (दरहम, एनसी : ड्यूक युनिवर्सिटी प्रेस, १९९८) में।

जैनिंग, गुंटर, 'दि यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन ऑन दि ला ऑव दि सी एंड दि एग्रीमेंट रिलेटिंग टु दि इम्प्लीमेंटेशन ऑव पार्ट ११ ऑव दि कन्वेंशन', अर्लिच बर्लिन एवं अन्य संपादित *रेख्त जविश्चेन अमब्रूच अंड बीमाहरूग* १२१ (बर्लिन : स्प्रिंगर, १९९५)

जेनिस, मार्क डी, 'सेकेंड टीयर पेटेंट प्रोटेक्शन', ४० *हार्व इंटरनैशनल एलजे* १५१ (१९९९)

जेनिस, एम डब्ल्यू, 'दि एमबिग्यूटी दि इक्विटी इन इंटरनैशनल लॉ', ६ *ब्रुकलिन जर्नल ऑव इंटेलेक्चुअल एल* ७ (१९८३)

जयगोविंद, ए, 'दि इंटरनैशनल पेटेंट सिस्टम एंड दि डेवलपिंग कंट्रीज', २० *इंडियन जर्नल ऑव इंटेलेक्चुअल एल* ४७ (१९८०)

जॉर्डन, कार्ल एफ, 'जेनेटिक इंजीनियरिंग, दि फार्म क्राइसिस एंड वर्ल्ड हंगर', ५२ *बायोसाइंस* ५२३ (२००२)

केट, कैरी टैन, एवं सारा ए लायर्ड, 'बायोप्रॉस्पेक्टिंग एग्रीमेंट्स एंड बेनीफिट शेयरिंग विद लोकल कम्युनिटीज' माइकल फिंगर एवं फिलिप शुलर संपादित *पूजर पीपुल्स नॉलेज - प्रोमोटिंग इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी इन डेवलपिंग कंट्रीज* १३१ (ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, २००४) में।

कात्याल, के.सी., 'इंडिया', *सीरियल सीड इंडस्ट्री इन एशिया एंड दि पेरिफेरिक* (टोकियो : एशियन प्रोडक्टिविटी ऑर्गनाइजेशन, १९८७) में।

कियेला, बी.के. ट्रिप्स पेटेंट सिस्टम एंड दोहा डिक्लोरेशन - इम्प्लीमेंटेशन प्रोसेस बाई इंडिया (नई दिल्ली : राजीव गांधी समकालीन अध्ययन संस्थान, वर्किंग पेपर सं. ४५, २००४)।

केसी, एडविनि, 'एन्फोर्सिबिलिटी ऑव दि लीगल प्रोविजन्स रिलेटिंग टु स्पेशल एंड डिफ्रेंशियल ट्रीटमेंट अंडर दि डब्ल्यूटीओ एग्रीमेंट', ३ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ६५५ (२०००)

खोर, मार्टिन, 'दि रिलेशनशिप बिटवीन ट्रिप्स एंड सीबीडी', मार्टिन खोर, *इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी, बायोडायवर्सिटी एंड सस्टेनेबल डेवलपमेंट* ५१ (लंदन : जेड बुक्स, २००२) में।

कोफेले-काले, एनडिया, 'दि प्रिंसिपल ऑव प्रेफ्रेंशियल ट्रीटमेंट इन दि लॉ ऑव गैट : टूवर्ड्स अचीविंग दि ऑब्जेक्टिव ऑव एन इक्विटेबल वर्ल्ड ट्रेडिंग सिस्टम', १८ *कैलिफोर्निया डब्ल्यू इंटरनैशनल एल* जे २९१ (१९८७ / ८८)।

कोजी, तेराया, 'इमर्जिंग हायराकी इन इंटरनैशनल ह्यूमन राइट्स एंड बिबांड : फ्रॉम दि पर्सपेक्टिव ऑव नॉन-डेरोगेबल राइट्स', १२ *यूरोपियन जर्नल ऑव इंटरनैशनल लॉ* ६१७ (२००१)

कोंगोलो, द्दिमांगा, 'कंपल्सरी लाइसेंस इश्यूज इन अफ्रीकन अरब कंट्रीज', ७ / २ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* १८५ (२००४)

क्राइडर, आर डेविड एवं अन्य, दि इंटेलेक्चुअल एंड टेक्निकल प्रॉपर्टी कम्पोनेंट्स ऑव प्रो-विटामिन ए राइस (गोल्डन राइस) : ए प्रीलिमिनरी फ्रीडम टु ऑपरेट रिब्यू (इथाका, न्यूयॉर्क : आइएसएएए, २०००)

कुमार, नागेश, 'इंडिया, पेरिस कन्वेंशन एंड ट्रिप्स', ३३ / ३६-३७ *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* २३३४ (१९९८)

कुमार, नागेश, 'इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स, टेक्नोलॉजी एंड इकॉनॉमिक डेवलपमेंट : एक्सपीरियेंसेज ऑव एशियन कंट्रीज', ३८ / ३ *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* २०६ (२००३)

कुरुक, पॉल, 'ब्रिजिंग दि गैप बिटवीन ट्रेडीशनल नॉलेज एंड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स - इज रेसिप्रोसिटी एन आन्सर?', ७ / ३ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ४२६ (२००४)

कुयेक, डेवलिन, स्टोलन सीड्स : दि प्राइवेटाइजेशन ऑव कनाडाज एग्रीकल्चरल बायोडायवर्सिटी (सोरेन्टो, बीसी : दि राम्स हॉर्न, २००४)

लीस्टरन, मथायस, 'एनालिसिस ऑव डिफ्रेंट एरियाज ऑव इंडीजिनस रिसोर्सोज़', सिल्क वॉन लेविंस्की संपादित *इंडीजिनस हैरिटेज एंड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी - जैनेटिक रिसोर्सोज़, ट्रेडीशनल नॉलेज, एंड फोकलोर* ४६ (दि हेग : क्लवर लॉ इंटरनैशनल, २००४) में।

लेस्किनन, डान एवं माइकल फिल्टनर, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड प्लांट जैनेटिक रिसोर्सोज़ : ऑप्शनस फॉर ए *सूई जेनेरिस* सिस्टम (रोम : इंटरनैशनल प्लांट जैनेटिक रिसोर्सोज़ इंस्टीट्यूट, १९९७)।

लेटिंगटन, रॉबर्ट जेएल, स्मॉल-स्केल एग्रीकल्चर एंड दि न्यूट्रीशनल सेफगाई अंडर आर्टिकल ८(१) ऑव दि उरुग्वे राउंड एग्रीमेंट ऑन ट्रेड रिलेटेड आस्पेक्ट ऑव इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स : केस स्टडीज फ्रॉम कीनिया एंड पेरू (जिनेवा : अंकटाड / आईसीटीएसडी, २००३)

लाइटवॉर्न, मूरियेल, 'ऑव राइस एंड मेन - एन अटैम्प्ट टु असैस दि बासमती अफेयर', ६ / ३ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ८७५ (२००३)

मैक्डोनाल्ड आर एसटी जे, 'दि कॉमन हैरिटेज ऑव मेनकाइंड', उलरिच बेयरलिन एवं अन्य संपादित *रेख्त ज्वीस्केन उन्ब्रूख उंड बेवाहरंग* १५३ (बर्लिन : स्प्रिंगर, १९९५)

मैक्डोनाल्ड, स्टुवर्ट, 'एक्सप्लोरिंग दि हिडेन कॉस्ट्स ऑव पेटेंट्स', पीटर द्राहोस एवं रूथ मायने संपादित *ग्लोबल इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स - नॉलेज, एक्सेस एंड डेवलपमेंट* १३ (बेसिंगस्टॉक : पालग्रेव मैकमिलन, २००२) में।

मार्टिनेज-एलियेर, जोन, 'इकोलॉजी ऑव दि पूअर - ए नेगलेक्टेड डायमेशन ऑव लैटिन अमेरिकन हिस्ट्री', २३ *जर्नल ऑव लैटिन अमेरिकन स्टडीज* ६२१ (१९९१)

माशेलकर, आर ए, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड दि थर्ड वर्ल्ड, (नई दिल्ली : सीएसआईआर, २००३)

मैथ्यूज, डंकन, 'डब्ल्यूटीओ डिसेजन ऑन इम्प्लीमेंटेशन ऑव पैराग्राफ ६ ऑव दि दोहा डिक्लरेशन ऑन दि ट्रिप्स एग्रीमेंट एंड पब्लिक हेल्थ : ए सॉल्यूशन टु दि एक्सेस टु दि एसेंशियल मेडिसिन्स प्रॉब्लम?', ७ / १ *इंटरनेशनल इकॉनॉमिक लॉ* ७३ (२००४)

मोज़ोलेनी, रॉबर्ट एवं रिचर्ड आर नेलसन, 'इकॉनॉमिक थ्योरीज अबाउट दि बेनीफिट्स एंड कॉस्ट्स ऑव पेटेंट्स', ३२ *जर्नल ऑव इकॉनॉमिक इश्यूज* १०३१ (१९९१)

मगबियोजी, इकेची, 'पेटेंट्स एंड ट्रेडिशनल नॉलेज ऑव दि यूजेज ऑव प्लांट्स : इज ए कम्युनल पेटेंट रेजीम पार्ट ऑव दि सॉल्यूशन टु दि स्कूर्ज ऑव बायोपाइरेसी?', ६ *इंडियन जर्नल ऑव ग्लोबल लीगल स्टडीज* १६३ (२००१)

मगबियोजी, इकेची, 'दि ज्यूरिडिकल ऑरिजन ऑव दि इंटरनेशनल पेटेंट सिस्टम : टुवर्ड्स ए हिस्टोरियोग्राफी ऑव दि रोल ऑव पेटेंट्स इन इंडस्ट्रीयलाइजेशन', ५ *जर्नल ऑव हिस्ट्री ऑव इंटरनेशनल लॉ* ४०३ (२००३)

मिकेलोपूलस, कॉन्स्टेंटाइन, रोल ऑव स्पेशल एंड डिफ्रेंशियल ट्रीटमेंट फॉर डेवलपिंग कन्ट्रीज इन गैट एंड दि वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइजेशन (वाशिंगटन, डीसी : वर्ल्ड बैंक, वर्किंग पेपर नंबर २३८८, २०००)

मिकेलोपूलस, कॉन्स्टेंटाइन, स्पेशल एंड डिफ्रेंशियल ट्रीटमेंट आफव डेवलपिंग कन्ट्रीज इन ट्रिप्स, (जिनेवा : क्वेकर यूनाइटेड नेशंस ऑफिस, २००३)

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय तथा कल्पवृक्ष, सिक्कोरिंग इंडियाज फ़्यूचर : नैशनल बायोडायवर्सिटी स्ट्रेटजी एंड ऐक्शन प्लान (नई दिल्ली / पुणे, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार, एवं कल्पवृक्ष, २००३)

मुखर्जी, शांतनु, 'दि जर्नी ऑव इंडियन पेटेंट लॉ टुवर्ड्स ट्रिप्स कम्प्लायन्स', ३५ *आईआईसी* १२५ (२००४)

नीजर, गुरदयाल सिंह, एवं ची योक लिंग, 'दि इम्प्लीकेशन्स ऑव दि इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स रेजीम ऑव दि कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी एंड गैट ऑन बायोडायवर्सिटी कन्जर्वेशन : ए थर्ड वर्ल्ड पर्सपेक्टिव', ऐनाटोले एफ क्राटीगेर एवं अन्य संपादित *वाइडनिंग पर्सपेक्टिवज ऑन बायोडायवर्सिटी* २७७ (जिनेवा : इंटरनेशनल एकेडेमी ऑव दि एन्वायनमेंट, १९९४) में।

नॉटज, हंटर, 'ट्रेड एंड कम्पीटिशन इन दि डब्ल्यूटीओ - पॉन्डरिंग ऑव दि एप्लिकेबिलिटी ऑव स्पेशल एंड डिफ्रेंशियल ट्रीटमेंट', ६ / १ *जर्नल ऑव इंटरनेशनल इकॉनॉमिक लॉ* २३ (२००३)

ओडेक, ए सेमुअल, 'दि इंटरनेशनल पेटेंट सिस्टम एंड थर्ड वर्ल्ड डेवलपमेंट : रिएलिटी ऑर मिथ?', १९८७ *इयूक एल जे* ८३१ (१९८७)

ओडेक, जेम्स ओ, 'बायोपाइरेसी : क्रियेटिंग प्रॉपराइटरी राइट्स इन प्लांट जैनेटिक रिसोर्सेज', २ *जर्नल ऑव इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी लॉ* १४१ (१९९४)

ओवरवेल, गीयत्रूई वान, 'पेटेंट प्रोटेक्शन फॉर प्लांट्स : ए कम्पेरिजन ऑव यूरोपियन एंड अमेरिकन अप्रोचेज', ३६ *आइडिया : जे एल एंड टेक* १४३ (१९९६)

ऑक्समेन, बर्नार्ड एच, 'दि १९९४ एग्रीमेंट एंड दि कन्वेंशन', ८८ *अमेरिकन जर्नल ऑव इंटरनेशनल लॉ* ६८७ (१९९४)

पार्लबर्ग, रॉबर्ट एल, 'दि रियल थ्रैट टु जैनेटिकली मॉडीफाइड क्रॉप्स इन पूअर कन्ट्रीज : कंज्यूर एंड पॉलिसी रेजिस्टेंस टु जैनेटिकली मॉडीफाइड फूड्स इन रिच कन्ट्रीज', २७ *फूड पॉलिसी* २४७ (२००२)

पाल, सुरेश, एवं रॉबर्ट ट्रिप, 'इंडियाज सीड इंडस्ट्री रिफॉर्म - प्रॉस्पेक्ट्स एंड इश्यूज', ५७ *इंडियन जर्नल ऑव एग्रीकल्चरल इकॉनॉमिक्स* ४४३ (२००२)

पेलेसियस, जिमेना फ्लोरेस, कन्ट्रीब्यूशन टु दि ऐस्टीमेशन ऑव कन्ट्रीज इंडिपेंडेंस इन दि एरिया ऑव प्लांट जैनेटिक रिसोर्सेज (रोम : कमीशन ऑन जैनेटिक रिसोर्सेज फॉर फूड एंड एग्रीकल्चर, १९९७)

पारिक, ज्योति के, 'नॉर्थ-साउथ कोऑपरेशन फॉर ज्वाइंट इम्प्लीमेंटेशन', जे के पारिक एवं अन्य संपादित *क्लाइमेट चेंज एंड नॉर्थ-साउथ कोऑपरेशन - इंडो-कनाडियन कोऑपरेशन इन ज्वाइंट इम्प्लीमेंटेशन* १६२ (नई दिल्ली : टाटा मैक्ग्रा-हिल, १६६७) में।

पॉवेलिन, जूस्ट, 'दि रोल ऑव पब्लिक इंटरनैशनल लॉ इन दि डब्ल्यूटीओ : हाउ फार कैन वी गो?', ६५ *अमेरिकन जर्नल ऑव इंटरनैशनल लॉ* ५३५ (२००२)

पिसिओटो, सोल, 'डिफेंडिंग दि पब्लिक इन्ट्रेस्ट इन ट्रिप्स एंड दि डब्ल्यूटीओ', पीटर द्राहोस एवं रूथ मायने संपादित *ग्लोबल इंटेलिक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स - नॉलेज, एक्सेस एंड डेवलपमेंट*, २२४ (बेसिंगस्टॉक : पालग्रेव मैक्मिलन, २००२) में।

पिंगाली, पी एल, एवं जी ट्रेक्सलर, 'चेंजिंग लोकस ऑव एग्रीकल्चरल रिसर्च, विल दि पुअर बेनीफिट फ्रॉम जैनेटिक इंजीनियरिंग एंड प्राइवेटाइजेशन ट्रेड?', २७ *फूड पॉलिसी* २२३ (२००२)

पिन्स्ट्रप-एंडर्सन, पेर, राजुल पांड्या-लॉक एवं मार्क डब्ल्यू रोजग्रान्ट, *वर्ल्ड फूड प्रॉस्पेक्ट्स : क्रिटिकल इश्यूज फॉर दि अर्ली २१स्ट सेंचुरी* (वाशिंगटन, डीसी : इंटरनैशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट, १६६६)

प्लेंडरलीथ, क्रिस्टीना, 'ट्रेडीशनल एग्रीकल्चर एंड सॉइल मैनेजमेंट', डैरेल एडिसन पोसे एवं अन्य संपादित *कल्चरल एंड स्पीरिचुअल वैल्यूज ऑव बायोडायवर्सिटी* २८७ (लंदन : इंटरमिडिएट टेक्नोलॉजी, १६६६) में।

प्रेसकॉट-ऐलन रॉबर्ट एवं क्रिस्टीन प्रेसकॉट-ऐलन, 'हाऊ मैनी प्लांट्स फीड दि वर्ल्ड?', ४ *कन्जर्वेशन बायोलॉजी* ३६५ (१६६०)

प्राइस, डेविड, 'दि यूएस - बहरीन फ्री ट्रेड एंड इंटेलिक्चुअल प्रॉपर्टी प्रोटेक्शन', ७ / ६ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलिक्चुअल प्रॉपर्टी* ८२६ (२००४)

कायम, मेटिन, 'बीटी कॉटन इन इंडिया : फील्ड ट्रायल रिजल्ट्स एंड इकॉनॉमिक प्रॉजेक्शंस', ३१ / १२ *वर्ल्ड डेवलपमेंट* २११५ (२००३)

क्यूम, अब्दुल, एवं किरन सखारी, 'डिड बीटी कॉटन सेव फार्मर्स इन वारंगल? - ए सीज़न लॉग इम्पैक्ट स्टडी ऑव बीटी कॉटन - खरीफ २००२ इन वारंगल डिस्ट्रिक्ट ऑव आंध्र प्रदेश (हैदराबाद - डेकन डेवलपमेंट सोसायटी, २००३)

राघवन श्रीविधा, 'प्रोटेक्शन ऑव ट्रेडीशनल नॉलेज', २ *मिन इंटेलिक्चुअल प्रॉपर्टी रिव्यू* १ (२००१)

रामन्ना, अनीता, 'पॉलिसी इम्प्लीकेशंस ऑव इंडियाज़ पेटेंट रिफॉर्म - पेटेंट एप्लीकेशंस इन दि पोस्ट-१६६५ इरा', ३७ *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* २०६५ (२००२)

राने, टेरी, एवं प्रभु पिंगाली, प्राइवेट रिसर्च एंड पब्लिक गुड्स, इम्प्लीकेशंस ऑव बायोटेक्नोलॉजी फॉर बायोडायवर्सिटी (रोम : एफएओ, ईएसए वर्किंग पेपर नं. ०४-०७, २००४)

रंगनेकर, द्विजेन, इंटेलिक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड एग्रीकल्चर, एन एनालिसिस ऑव दि इकॉनॉमिक इम्पैक्ट ऑव प्लांट ब्रीडर्स राइट्स (एक्शन एड यूके, २०००)

राव, सी निरंजन, 'इंडियन सीड सिस्टम एंड प्लांट वेरायटी प्रोटेक्शन', ३६ / ८ *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* ८४५ (२००४)

राव, सी निरंजन, एवं सुमन सहाय, 'व्हाट इज़ बीटी एंड व्हाट इज़ टर्मिनेटर?', ३४ / ३-४ *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* ८४ (१६६६)

राव, एम वी, 'व्यूचाइंट ऑव पब्लिक सेक्टर प्लांट ब्रीडिंग इंस्टीट्यूशंस', एम एस स्वामीनाथन संपादित, *एग्रोबायोडायवर्सिटी एंड फार्मर्स राइट्स* १३६ (नई दिल्ली : कोणार्क, १६६६) में।

रेडक्लिफ्ट, माइकेल, 'दि मीनिंग ऑव सस्टेनेबल डेवलपमेंट', २३ *जियोफोरम*, ३६५ (१६६२)

रीशमान, जे एच, 'लीगल हाइब्रिड्स बिटवीन दि पेटेंट एंड कॉपीराइट पेराडाइम्स', ६४ *कॉलंबिया लॉ रिव्यू* २४३२ (१६६४)

रीशमान, जे एच, 'ऑव ग्रीन ट्यूलिप्स एंड लीगल कुडूजू : रीपैकेजिंग राइट्स इन सब-पेटेनेबल इनोवेशन', ५३ *वेंड लॉ रिव्यू* १७४३ (२०००)

रिटर, डोमीनीक एस, 'स्वीट्जरलैंड्स पेटेंट लॉ हिस्ट्री', १४ *फोर्डहेम इंटेलिक्चुअल प्रॉपर्टी मीडिया एंड इंटरप्राइज लॉ जर्नल* ४६३ (२००४)

रोज, ग्रेगरी, 'इंटरनैशनल लॉ ऑव सस्टेनेबल एग्रीकल्चर इन दि २१स्ट सेंचुरी : दि इंटरनैशनल ट्रीटी ऑन प्लांट जैनेटिक रिसोर्सेज फॉर फूड एंड एग्रीकल्चर', १५ *जियो इंटरनैशनल एनवायर्नमेंटल लॉ रिव्यू* ५५३ (२००३)

रोज़नेगर, पीटर, 'वेलकम टु पार्टिसिपेंट्स', एम एस स्वामीनाथन संपादित, *एग्रोबायोडायवर्सिटी एंड फार्मर्स राइट्स* ३१ (नई दिल्ली : कोणार्क, १६६६)

रूज, सी फोर्ड, 'एन्व्लोजर, इंटेलिक्चुअल प्रॉपर्टी एंड लाइफ साइसेज रिसर्च', ७ / ६ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलिक्चुअल प्रॉपर्टी* ८०७ (२००४)

सहाय, सुमन, 'इंडियन पेटेंट ऐक्ट एंड ट्रिप्स', २८ *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* १४६५ (१६६३)



सहाय, सुमन, एवं शकीलुर रहमान, 'बीटी-कॉटन, २००३-२००४ - फील्ड्स स्वेम्ड विद इल्लीगल वेरियेंट्स', ३६ / २६ इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली २६७३ (२००४)

संपत, पद्मश्री गहल, 'इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स ऑन ट्रेडीशनल मेडिसिनल नॉलेज - ए प्रोसेस ओरियेंटेड पर्स्पेक्टिव', ७ / ५ जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी ७११ (२००४)

श्रेर, फ्रेड्रिक एम, 'ले सिस्तेमे देस ब्रेवेत्स एट ले'इनोवेशन दांस ले दोमाइन फार्मास्यूटीक', रेव्यू इंटरनैशनल दे द्राइट इकोनोमीक ११० (२००० / १)

शर्टनलीव, डेनिस, 'दि पेटेंटेबिलिटी एंड प्रोटेक्शन ऑव लिविंग ऑर्गेनिज्म्स इन दि यूरोपियन यूनियन', २६ / ५ यूरोपियन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी रिव्यू २०३ (२००४)

श्रीजवेर, नीको, 'दि डायनेमिक्स ऑव सॉवरेंटी इन ए चेंजिंग वर्ल्ड', कॉनरॉड गिंथर एवं अन्य संपादित सस्टेनेबल डेवलपमेंट एंड गुड गवर्नेंस ८० (दोद्रेख : नीजोफ १६६५) में।

शुलर, फिलिप, 'बायोपाइरेसी एंड कमर्शियलाइजेशन ऑव ऐथनोबॉटैनिकल नॉलेज', माइकल फिंगर एवं फिलिप शुलर संपादित पूअर पीपुल्स नॉलेज - प्रोमोटिंग इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी इन डेवलपिंग कन्ट्रीज १५६ (ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, २००४) में।

शेफर, ग्रेगरी, 'रिकोगनाइजिंग पब्लिक गुड्स इन डब्ल्यूटीओ डिस्प्यूट सेटलमेंट : हू पार्टिसिपेट्स? हू डिसाइड्स? : दि केस ऑव ट्रिप्स एंड फार्मास्युटिकल पेटेंट प्रोटेक्शन', ७ / २ जर्नल ऑव इंटरनैशनल इकॉनॉमिक लॉ ४५६ (२००४)

शेंड, होप, ह्यूमन नेचर - एग्रीकल्चरल बायोडायवर्सिटी एंड फार्म-वेल्ड फूड सिक्योरिटी (ओटावा : आरएएफआई, १६६७)

शंकर, दया, 'दि पैराग्राफ ६ सॉल्यूशन ऑव दि दोहा पब्लिक हेल्थ डिक्लोरेशन ऑव एक्सपोर्ट अंडर दि ट्रिप्स एग्रीमेंट', ७ / ३ जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी ३६५ (२००४)

शिवा, वंदना, 'फार्मर्स राइट्स एंड दि कन्वेंशन ऑन दि बायोलॉजिकल डायवर्सिटी', विसेंट साचेंज एवं कलेस्तूज जूमा संपादित बायोडिप्लोमेसी - जैनेटिक रिसोर्सेज एंड इंटरनैशनल रिलेशंस १०७ (नैरोबी : अफ्रीकन सेंटर फॉर टेक्नोलॉजिकल स्टडीज, १६६४) में।

शिवा, वंदना, 'ट्रिप्स, ह्यूमन राइट्स एंड दि पब्लिक डोमेन', ७ / ५ जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी ६६५ (२००५)

शिवा, वंदना, एवं टॉम क्रॉम्टन, 'मोनोपॉली एंड मोनोकल्चर - ट्रेड्स इन इंडियन सीड इंडस्ट्री', ३३ / ३६ इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली ए-१३७ (१६६८)

शू, हेनरी, 'ग्लोबल एन्वयर्नमेंट एंड इंटरनैशनल इनिक्वैलिटी', ७५ इंटरनैशनल अफेयर्स ५३१ (१६६५)

सिकीन्ची, इवांस, एक्सपीरियेंसेज इन प्लांट वेरायटी प्रोटेक्शन अंडर दि यूपीओवी कन्वेंशन, डॉक डब्ल्यूआईपीओ-यूपीओवी / एसवाईएम / ०३ / ६ (२००३)

सिंह, आर पी, 'एन इंटरफेस इन पब्लिक एंड प्राइवेट मेज रिसर्च इन इंडिया', रॉबर्टा वी गेरपासियो संपादित इम्पैक्ट ऑव पब्लिक एंड प्राइवेट सेक्टर मेज ब्रीडिंग रिसर्च इन एशिया, १६६६-१६६७ / ६८ (मेक्सिको, डीओ : इंटरनैशनल मेज एंड व्हीट इम्प्रूवमेंट सेंटर, २००१) में ४४ पर।

सिटेनफेल्ड, ऐना, एवं रोद्रिगो गामेज, 'बायोडायवर्सिटी प्रॉस्पेक्टिंग बाई आईएनबायो', वाल्टर वी रीड एवं अन्य संपादित बायोडायवर्सिटी प्रॉस्पेक्टिंग - यूजिंग जैनेटिक रिसोर्सेज फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट ६६ (वाशिंगटन, डीसी : वर्ल्ड रिसोर्सेज इंस्टीट्यूट, १६६३) में।

स्मेल, एम, एवं के डे-रूबेंस्टीन, 'दि डिमांड फॉर क्रॉप जैनेटिक रिसोर्सेज : इंटरनैशनल यूज ऑव दि यूएस नैशनल प्लांट जर्मप्लाज्म सिस्टम', ३० / ६ वर्ल्ड डेवलपमेंट १६३६ (२००२)

स्नाइडर, डेविड बेंजामिन, 'साउथ अफ्रीकाज मेडीसिन्स एंड रिलेटेड सबस्टेंसेज कन्ट्रोल अमेंडमेंट ऐक्ट : ए स्पूनफुल ऑव शुगर ऑर ए बिटर पिल टु स्वैलो?', १८ डिंक जर्नल ऑव इंटरनैशनल लॉ १७५ (१६६६)

स्पीलेन, चार्ल्स, 'एग्रीकल्चरल जैनेटिक इंजीनियरिंग एंड डेवलपिंग कन्ट्रीज : प्रॉपराइटरी नॉलेज एंड डिफ्यूजन ऑव बेनीफिट्स', टिमोथी स्वेसन संपादित जैनेटिक इंजीनियरिंग, एग्रीकल्चर एंड दि डेवलपिंग वर्ल्ड - दि डिस्ट्रीब्यूशनल इम्प्लीकेशंस ऑव टेक्नोलॉजिकल चेंज, ६७ (शेल्डनहेम : एडवर्ड एल्गर, २००२)

श्रीनिवास, के रवि, 'इंटरप्रेटिंग पेरा ६ : डील ऑन पेटेंट्स एंड एक्सेस टु ड्रग्स', ३८ / ३८ इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली ३६७५ (२००३)

श्रीनिवास, सी एस, 'करंट स्टेटस ऑव प्लांट वेरायटी प्रोटेक्शन इन इंडिया', एम एस स्वामीनाथन संपादित, एग्रोबायोडायवर्सिटी एंड फार्मर्स राइट्स ७७ (नई दिल्ली : कोणार्क, १६६६) में।

श्रीनिवास, सी एस, 'कॉन्सर्वेशन इन ऑनरशिप ऑव प्लांट वेरायटी राइट्स : सम इम्प्लीकेशन्स फॉर डेवलपिंग कन्ट्रीज', २८ फूड पॉलिसी ५१६ (२००३)

श्रीनिवास, सी एस, 'एक्स्लोरिंग दि फिजीबिलिटी ऑव फार्मर्स राइट्स', २१ / ४ डेवलपमेंट पॉलिसी रिव्यू ४१६ (२००३)

श्रीनिवास, सी एस, इंटरनेशनल ट्रेड्स इन प्लांट वेरायटी प्रोटेक्शन (ऑन फाइल विद दि ऑथर, २००४)

श्रीनिवास, सी एस, एवं कॉलिन थर्टल, 'अंडरस्टैंडिंग दि इमरजेंस ऑव टर्मिनेटर टेक्नोलॉजीज़', १२ *जर्नल ऑव इंटरनेशनल डेवलपमेंट*, ११४७ (२०००)

श्रीवास्तव, सुरेश सी, 'ज्योग्राफिकल इंडिकेशन्स एंड लीगल फ्रेमवर्क इन इंडिया', ३८ / ३८ *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* ४०२२ (२००३)

स्टेंन गोविन, 'बायोपाइरेसी विदिन दि फार्मास्युटिकल इंडस्ट्री : ए स्टार्क इलस्ट्रेशन ऑव हाऊ एब्यूसिव, मेनिपुलेटिव एंड पर्वस दि पेटेंटिंग प्राइसेज केन बी टुवर्ड्स कन्ट्रीज ऑव दि साउथ', २६ / १ *यूरोपियन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी रिव्यू* १७ (२००४)

स्टेर्क्स, सिग्रिड, 'यूरोपियन पेटेंट लॉ एंड बायोटेक्नोलॉजिकल इनवेंशन्स', सिग्रिड स्टेर्क्स संपादित *बायोटेक्नोलॉजी पेटेंट्स एंड मोरेलिटी* १ (एल्डरशॉट : एशगेट, १९९७) में।

स्टर्न, रिचर्ड एच, 'सॉल्विंग दि एलगोरिदम कोनन्ड्रम आफ्टर १९९४ इन दि फेडरल सर्किट पेटेंट लॉ नीड्स ए रेडिकल एलगोरिदमेक्वॉमी', २२ *एआईपीएलए क्यूजे* १६७ (१९९४)

सुन, एन्डी वार्ड, 'फ्रॉम पाइरेट किंग टु जंगल किंग : ट्रांसफॉर्मेशन ऑव ताइवान्स इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी प्रोटेक्शन', ९ *फोर्डहेम इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी मीडिया एंड इंटरप्राइज लॉ जर्नल* ६७ (१९९८)

सुदर्शनन, उमा, 'इनक्रीमेंटल इनवेंशन इन यूरोप : ए लीगल एंड इकॉनॉमिक एप्रेजल ऑव सेकेंड टीयर पेटेंट', *जर्नल ऑव बिजनेस एल* ३१९ (२००१)

स्वामीनाथन, एम एस, 'फ्लोरवर्ड', डेविड आल्टमान एवं काजुओ एन वाटानेब संपादित *प्लांट बायोटेक्नोलॉजी ट्रांसफर टु डेवलपिंग कन्ट्रीज* (ऑस्टिन, टैक्स : आरजी लैंड्स, १९९५) में।

स्वामीनाथन, एम एस, 'एथिक्स एंड इक्विटी इन दि कलेक्शन एंड यूज ऑव प्लांट जैनेटिक रिसोर्सेज : सम इश्यूज एंड एप्रोचेज' आईपीजीआरआई, *एथिक्स एंड इक्विटी इन कन्जर्वेशन एंड यूज ऑव जैनेटिक रिसोर्सेज फॉर सस्टेनेबल फूड सिक्योरिटी* ७ (रोम : इंटरनेशनल प्लांट जैनेटिक रिसोर्सेज इंस्टीट्यूट, १९९७) में।

ताकेनाका, तोशिको, 'दि बैस्ट पेटेंट प्रैक्टिस ऑर मेयर कंप्रोमाइज - ए रिव्यू ऑव दि करंट ड्राफ्ट ऑव दि सबस्टेंटिव पेटेंट लॉ ट्रीटी एंड ए प्रॉपोजल फॉर ए 'फर्स्ट-टू-इन्वेंट' एक्सेप्शन फॉर डोमेस्टिक एप्लीकेंट्स', ११ *टैक्स इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी एल जे* २५९ (२००३)

थॉमस, डेविड एवं जॉर्जिना ए रिचर्ड्स, 'दि इम्पोर्टेंस ऑव दि मॉरलिटी एक्सेप्शन अंडर दि यूरोपियन पेटेंट कन्वेंशन : दि ऑकोमाउस केस कॉन्ट्रिब्यूट', २६ / ३ *यूरोपियन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी रिव्यू* ६७ (२००४)

थूप, लॉरी एन, 'लिकिंग एग्रीकल्चरल बायोडायवर्सिटी एंड फूड सिक्योरिटी : दि वैल्यूएबल रोल ऑव एग्रोबायोडायवर्सिटी फॉर सस्टेनेबल एग्रीकल्चर', ७६ *इंटरनेशनल अफेयर्स* २६५ (२०००)

वांदोरेन, पॉल, 'मेडिकामेंट्स सांस फ्रॉतेरास? क्लेरीफिकेशन ऑव दि रिलेशनशिप बिटवीन ट्रिप्स एंड पब्लिक हैल्थ रिज़ल्टिंग फ्रॉम दि डब्ल्यूटीओ दोहा मिनिस्टीरियल डिक्लरेशन', ५ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ४ (२००२)

वारेला, मारसेलो दियास, 'दि डब्ल्यूटीओ इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स एंड एड्स : दि केस स्टडीज फ्रॉम ब्राजील एंड साउथ अफ्रीका', ७ / ४ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ५२३ (२००४)

वेलास्केज़, जर्मान, एवं पास्केल बुलेट, 'ग्लोबलाइजेशन एंड एक्सेस टु ड्रग्स : इम्प्लीकेशन्स ऑव दि डब्ल्यूटीओ / ट्रिप्स एग्रीमेंट', ग्लोबलाइजेशन एंड एक्सेस टु ड्रग्स - पर्सपेक्टिव ऑन दि डब्ल्यूटीओ / ट्रिप्स एग्री. २, डब्ल्यूएचओ डॉक डब्ल्यूएचओ / डीएपी / ९८.९ (१९९८)

वेलास्केज़, जर्मान, 'मेडिकामेंट्स एसेंशिल्स एत माँदियालिसेशन', *रेव्यू इंटरनेशनल दे ड्राइव इकोनोमीक* ३७ (२००० / १)

वर्मा, सुरिंदर कौर, 'प्रोटेक्टिंग ट्रेडीशनल नॉलेज - इज़ ए सूर्ई जेनेरिस सिस्टम एन आन्सर?', ७ / ६ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ७६५ (२००४)

वीरा, भास्कर, 'क्लेमिंग लेजिटीमिटी : एनालाइजिंग कॉन्फ्लिक्ट इन दि एन्वयर्नमेंटल पॉलिसी प्रोसेस', १९ *एन्वयर्नमेंट एंड प्लानिंग सी : गवर्नमेंट एंड पॉलिसी* ६३७ (२००१)

विश्वनाथन, अपर्णा, 'स्पेशल ३०१ : एनालिसिस ऑव इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी डिस्प्यूट बिटवीन इंडिया एंड यूएसए', ३५ *जर्नल ऑव इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट*, १२७ (१९९३)

विसेर, कोयनराड जे, 'मेकिंग इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी लॉज वर्क फॉर ट्रेडीशनल नॉलेज', माइकल फिंगर एवं फिलिप शुलर संपादित *पूर पीपुल्स नॉलेज - प्रोमोटिंग इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी इन डेवलपिंग कन्ट्रीज* २०७ (ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, २००४) में।

वाइनबर्ग, रैशेल, 'रेटॉरिक, रिएलिज्म एंड बेनीफिट-शेयरिंग - यूज़ ऑव ट्रेडीशनल नॉलेज ऑव हृदिया स्पीशीज़ इन दि डेवलपमेंट ऑव एन एपेटाइट सप्रेसेंट', ७ / ६ *जर्नल ऑव वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी* ८५१ (२००४)

वाइनबर्ग, रैशेल, 'बायोप्रोस्पेक्टिंग डिलीवर्स लिमिटेड बेनीफिट्स इन साउथ अफ्रीका', २६ / ६ *यूरोपियन इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी रिव्यू* २३६ (२००४)

यामीन, एलीसिया एली, 'नॉट जस्ट ए ट्रेजेडी : एक्सेस टु मेडिकेशंस एज़ ए राइट अंडर इंटरनेशनल लॉ', २१ *बी यू इंटरनेशनल एल जे* ३२६ (२००३)

[www.ielrc.org](http://www.ielrc.org)